Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2348-0076**

JIFE Impact Factor – 5.21

Samajiki Sandarsh

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 3** **(July – Sept. 2025)**

(Part – II)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Samajiki Sandarsh - *A Refereed Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, U.P.-221001
Mobile No. :- 09336924396
Email- samajikisandarsh@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Samajiki Sandarsh" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2348-0076

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. Sarswati Singh**, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. Suresh Prasad Rai,** Former-Head, Department of English, S.Sinha College Aurangabad, Bihar
- **Left. Dr. Munna Singh,** Head, Physical Education Department, Handia P.G. College, Handia, Allahabad, U.P.
- **Dr. Bindeshwar Prasad Mandal,** Head, Department of Sociology, B.N. College, Patna University, Patna (Bihar)
- **Dr. Achchelal Yadav,** Head, Physical Education Department, PDU Rajkiya P.G.College, Saidpur, Ghazipur, U.P.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Somu Singh,** Assistant Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur

- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Samajiki Sandarsh,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Samajiki Sandarsh"

➲	बिहार के सामाजिक विकास में क्षेत्रीय दलों की भूमिका (1990–2020) में एक अध्ययन ***विपूल कुमार***	01-05
➲	ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों में प्रेरणा स्तर एवं भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण का अध्ययन ***डॉ. अच्छे लाल यादव***	06-11
➲	उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में डिजिटल आत्म–छवि और आत्म–सम्मान का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव ***आलोक आनन्द***	12-17
➲	ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का भौगोलिक विश्लेषण ***डॉ. अभिषेक कुमार सिंह***	18-21
➲	आचार्य राधावल्लभत्रिपाठिनः काव्यशास्त्रे योगदानम् ***अनुज कुमार मिश्रा***	22-24
➲	कॉलेज छात्रों की विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य संबंध का अध्ययन ***डॉ. ज्योति कुमारी***	25-29
➲	स्त्री विमर्शः एक अनुशीलन (बौद्ध साहित्य के सन्दर्भ में) ***डॉ. मीना परस्ते***	30-38
➲	डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन का ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर प्रभाव ***डॉ. विजय लक्ष्मी कुमारी***	39-43
➲	स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनैतिक चिंतन का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ***अस्मिता कुमारी***	44-48
➲	बिहार में वामपंथी उग्रवाद और राज्य क्षमताः सुरक्षा, विकास तथा शासन के अंतर्संबंधों का अध्ययन ***डॉ. राजेश कुमार***	49-56
➲	समकालीन संदर्भों में कृष्णा सोबती का कथा साहित्य ***चेतना सिंह***	57-60
➲	भारतीय समाज में आधुनिक जीवन–मूल्यों का संकट ***ऋतुजा सिंह***	61-66

➲	भारत एवं दक्षिण– पूर्व एशियाई देशों के मध्य संबंधः एक अध्ययन ***डॉ. सत्य प्रकाश सिंह*** ***आनन्द कुमार सिंह***	67-71
➲	नागार्जुन की काव्य चेतना ***भूमिका विक्रम सिंह*** ***विपिन सिंह***	72-77
➲	भारत में दलित चेतना का इतिहास और बिहार की राजनीति में उसका प्रभाव ***विशुनी पासवान***	78-89
➲	हिंदी की स्त्रीवादी आलोचना के विकास में महिला आलोचकों का योगदान ***शिवानी*** ***कल्पना***	90-92
➲	परम्परागत इतिहास लेखन 'भाट की पोथी' में वर्णित चुचैला कलां का स्थानीय इतिहासः एक पुनरावलोकन ***काजल***	93-102
➲	किशोरियों में एनीमिया का कारणः असंतुलित भोजन और जंक फूड का प्रभाव ***डॉ. प्रियादर्शनी कुमारी***	103-108

ꦫ

बिहार के सामाजिक विकास में क्षेत्रीय दलों की भूमिका (1990–2020) में एक अध्ययन

विपूल कुमार*

सार–

1990 से 2020 तक बिहार में क्षेत्रीय दलों ने राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय दलों के लंबे समय तक प्रभुत्व के बाद, RJD, JDU, और स्श्रच जैसे क्षेत्रीय दलों ने राज्य की राजनीति में सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण के मुद्दों को प्राथमिकता दी। इस अध्ययन का उद्देश्य बिहार में क्षेत्रीय दलों की सामाजिक विकास में भूमिका का विश्लेषण करना है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, दलित और पिछड़े वर्गों के लिए नीतियाँ शामिल हैं। अध्ययन से पता चलता है कि RJD ने यादव और पिछड़े वर्गों को राजनीतिक और सामाजिक मंच प्रदान किया, जबकि JDU ने सुशासन और विकास पर बल दिया। LJP ने दलित और पिछड़े वर्गों की समस्याओं को उजागर किया। क्षेत्रीय दलों की नीतियों ने ग्रामीण विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। पंचायतों में महिला आरक्षण और छात्रवृत्ति योजनाओं जैसे उपायों ने सामाजिक समावेशिता को बढ़ावा दिया। हालांकि, जातीय राजनीति और प्रशासनिक कमजोरी ने विकास की गति को प्रभावित किया। कुछ क्षेत्रों में योजनाओं का लाभ नहीं पहुँच पाया। बावजूद इसके, क्षेत्रीय दलों ने बिहार में सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। यह अध्ययन दर्शाता है कि क्षेत्रीय दलों का संतुलित और निष्पक्ष कार्यान्वयन भविष्य में बिहार के समग्र सामाजिक विकास को और बढ़ावा दे सकता है।

मुख्य शब्द– बिहार, क्षेत्रीय दल, सामाजिक विकास, पिछड़े वर्ग, महिला सशक्तिकरण, जातीय राजनीति, शिक्षा, स्वास्थ्य।

बिहार, भारत का एक ऐसा राज्य है जिसकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना अत्यंत जटिल है। यह राज्य ऐतिहासिक रूप से सामाजिक असमानताओं, जातीय विभाजनों और आर्थिक पिछड़ेपन का सामना करता रहा है। 20वीं सदी के अंतिम दशक में राज्य की राजनीति में बड़े बदलाव देखने को मिले, जब राष्ट्रीय दलों के प्रभुत्व के बाद क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ। 1990 के दशक के आसपास बिहार में जातीय और सामाजिक समीकरण ने राजनीति को नई दिशा दी। यह दौर राज्य की राजनीति में सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण की नींव रखने वाला माना जाता है।

कुमार एवं मिश्र (2023) ने बिहार के क्षेत्रीय दलों द्वारा लागू की गई सामाजिक नीतियों और उनके प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि जातीय और क्षेत्रीय राजनीति स्थानीय विकास, पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण और पंचायत स्तर पर महिला भागीदारी को प्रभावित करती है। उन्होंने यह भी पाया कि प्रशासनिक कमजोरियाँ और भ्रष्टाचार योजनाओं के क्रियान्वयन की प्रभावशीलता को सीमित करते हैं।[1]

सिंह एवं कुमारी (2022) ने इस अध्ययन में बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा और सशक्तिकरण में क्षेत्रीय दलों के योगदान का विश्लेषण किया गया। निष्कर्ष में बताया गया कि पंचायतों में महिलाओं के आरक्षण और स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया।[2]

क्षेत्रीय दलों का उदय मुख्य रूप से सामाजिक असमानताओं और पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता के कारण हुआ। लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में RJD ने यादव और अन्य पिछड़े वर्गों को मुख्य राजनीतिक मंच प्रदान किया, जिससे सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण को बढ़ावा मिला। इसके विपरीत, JDU ने सुशासन, पंचायत और स्थानीय प्रशासन में सुधार पर ध्यान केंद्रित किया। LJP ने दलित और पिछड़े वर्गों के मुद्दों को उजागर करते हुए उनकी समस्याओं को राजनीतिक प्राथमिकता दी। इन दलों ने

* शोधार्थी (राजनितिक विज्ञान विभाग), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob. No. 83405 36005, E-mail : bipulyadav7870@gmail.com

न केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त की, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों में विकास और सशक्तिकरण के प्रयासों को भी आगे बढ़ाया।

1990–2020 के दौरान बिहार में शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण और सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में कई पहल देखी गईं। क्षेत्रीय दलों ने ग्रामीण विकास, स्कूलों और कॉलेजों के निर्माण, छात्रवृत्तियों और महिला पंचायत प्रतिनिधित्व जैसी योजनाओं को लागू किया। इससे पिछड़े वर्गों, दलितों और महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ। पंचायतों और स्थानीय प्रशासन में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए आरक्षण लागू किया गया, जिसने सामाजिक समावेशिता और समानता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वर्मा (2021) ने बिहार में स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण योजनाओं पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का मूल्यांकन किया। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि स्वास्थ्य केंद्रों और पोषण योजनाओं का लाभ मुख्यतः ग्रामीण पिछड़े क्षेत्रों में सीमित रहा, जबकि शहरी और जिला मुख्यालयों में अधिक प्रभाव देखा गया।[3]

झा (2020) ने बिहार में शिक्षा और पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण में RJD और JDU के शासनकाल की तुलना की। निष्कर्ष से पता चला कि त्श्रक ने जातीय आधारित राजनीति के माध्यम से पिछड़े वर्गों की भागीदारी बढ़ाई, जबकि JDU ने सुशासन और योजनाओं के बेहतर क्रियान्वयन पर ध्यान दिया।[4]

कुमार, सिंह एवं चौधरी (2019) इस अध्ययन में क्षेत्रीय दलों के आर्थिक और सामाजिक विकास में योगदान का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया। निष्कर्ष में बताया गया कि क्षेत्रीय दलों की नीतियाँ सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों के विकास को बढ़ावा देती हैं, लेकिन विकास की गति और प्रभावशीलता प्रशासनिक क्षमता और स्थानीय राजनीतिक संरचना से प्रभावित होती है।[5]

हालांकि, क्षेत्रीय दलों की राजनीति में जातीय आधार पर वोट बैंक रणनीति का प्रभाव भी देखने को मिला। यह कभी–कभी सामाजिक विकास की प्रक्रिया में बाधा बन गया। कुछ इलाकों में योजनाओं का लाभ पूरी तरह नहीं पहुँच पाया, जबकि कुछ क्षेत्रों में विकास की गति धीमी रही। प्रशासनिक कमजोरी और भ्रष्टाचार ने भी योजनाओं की प्रभावशीलता को प्रभावित किया। इसके बावजूद, यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि क्षेत्रीय दलों ने सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों के विकास में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

वर्मा एवं मिश्रा (2019) ने बिहार में जातीय राजनीति और विकास असमानता पर अध्ययन किया। निष्कर्ष में स्पष्ट किया गया कि जातिगत समीकरण पर आधारित क्षेत्रीय राजनीति ने विकास योजनाओं के लाभ वितरण में असमानता उत्पन्न की, जिससे कुछ पिछड़े जिलों और समुदायों में सामाजिक विकास धीमा रहा।[6]

कुमारी एवं सिंह (2015) ने महिला शिक्षा और रोजगार में क्षेत्रीय दलों की भूमिकापर अध्ययन कर पाया कि पंचायतों में महिला प्रतिनिधित्व और शिक्षा योजनाओं से महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ, लेकिन ग्रामीण रूढ़िवाद और पारिवारिक बाधाओं ने प्रभाव सीमित किया।[7]

वर्मा (2012) ने बिहार में स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण योजनाओं का मूल्यांकन, पर अध्ययन कर पाया कि ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों और पोषण योजनाओं का लाभ मुख्य रूप से ग्रामीण पिछड़े क्षेत्रों में सीमित रहा। प्रशासनिक कमजोरी और भ्रष्टाचार ने योजना प्रभावशीलता को प्रभावित किया।[8]

कुमार एवं मिश्रा (2010) ने शिक्षा और पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण में RJD और JD(U) का योगदान। पर अध्ययन कर पाया कि RJD ने जातीय राजनीति के माध्यम से पिछड़े वर्गों की भागीदारी बढ़ाई, जबकि JD(U) ने सुशासन और योजनाओं के बेहतर क्रियान्वयन पर जोर दिया।[9]

कुमार एवं झा (2000) ने बिहार में पंचायत और ग्रामीण विकास पर अध्ययन कर पाया कि क्षेत्रीय दलों ने पंचायत स्तर पर विकास योजनाओं और सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन बढ़ाया, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे और शिक्षा में सुधार हुआ।[10]

सिंह (2005) ने बिहार में महिला सशक्तिकरण और क्षेत्रीय दल पर अध्ययन कर पाया कि पंचायतों में महिला आरक्षण और महिला स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।[11]

शर्मा (1995) ने अपने अध्ययन में बिहार में क्षेत्रीय दलों के उदय और जातीय राजनीति में 1990 के दशक में RJD और JD(U) जैसे क्षेत्रीय दलों ने यादव और अन्य पिछड़े वर्गों के राजनीतिक सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया। सामाजिक विकास में उनका योगदान शिक्षा और पंचायत प्रतिनिधित्व तक सीमित रहा।[12]

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बिहार में क्षेत्रीय दलों की सामाजिक विकास में भूमिका का समग्र विश्लेषण करना है। यह अध्ययन न केवल उनकी नीतियों और पहलों का मूल्यांकन करेगा, बल्कि उनके

योगदान, सफलताओं और चुनौतियों की भी समीक्षा करेगा। इस प्रकार, बिहार की सामाजिक और राजनीतिक संरचना को समझने के लिए क्षेत्रीय दलों की भूमिका एक महत्वपूर्ण विषय है।

उद्देश्य

1. बिहार में क्षेत्रीय दलों के उदय और उनके सामाजिक विकास पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण और पिछड़े वर्गों के लिए नीतियों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. जातीय राजनीति और प्रशासनिक चुनौतियों का सामाजिक विकास पर प्रभाव पहचानना।

क्षेत्रीय दलों के योगदान और उनके सीमाओं का मूल्यांकन करना।

परिकल्पना

1. क्षेत्रीय दलों के शासनकाल में बिहार के सामाजिक विकास में उल्लेखनीय सुधार हुआ।
2. क्षेत्रीय दलों ने पिछड़े वर्गों, दलितों और महिलाओं के लिए अधिक समावेशी नीतियाँ लागू की।
3. जातीय राजनीति और प्रशासनिक कमजोरी के बावजूद क्षेत्रीय दलों का योगदान सकारात्मक और महत्वपूर्ण था।

परिणाम तथा विवेचना–

1990–2020 के दौरान बिहार में क्षेत्रीय दलों ने सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, हालांकि उनका प्रभाव क्षेत्र, जाति और सामाजिक वर्ग के आधार पर भिन्न रहा।

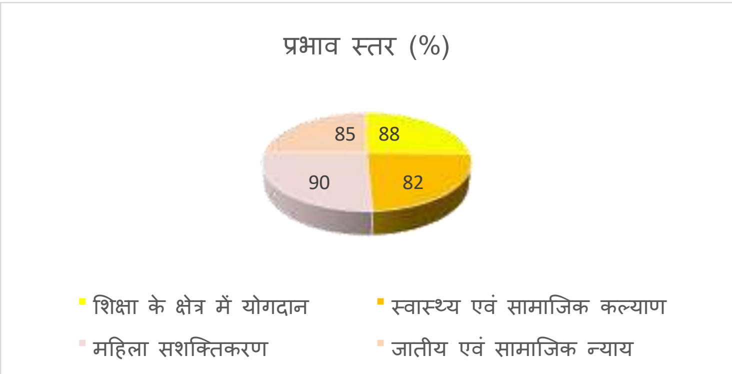

शिक्षा के क्षेत्र में योगदान– RJD और JDU सरकारों ने पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यक समुदायों के लिए छात्रवृत्ति योजनाएँ लागू कीं। JDU के शासनकाल (2005–2020) में स्कूलों और कॉलेजों का विकास हुआ, और लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। शिक्षा क्षेत्र में सुधार से ग्रामीण इलाकों में साक्षरता दर में वृद्धि हुई, हालांकि कुछ पिछड़े जिलों में यह प्रभाव सीमित रहा।

स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण– क्षेत्रीय दलों ने ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों के निर्माण और पोषण कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया। महिला स्वास्थ्य, टीकाकरण और मातृ मृत्यु दर घटाने के लिए योजनाएँ लागू हुईं। JDU और RJD के शासनकाल में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच बढ़ी, लेकिन संसाधनों की कमी और भ्रष्टाचार ने कुछ प्रभाव को सीमित किया।

महिला सशक्तिकरण– पंचायतों में महिलाओं का 33% आरक्षण लागू किया गया, जिससे स्थानीय नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी। स्वयं सहायता समूह और महिला स्वरोजगार योजनाओं के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की गई। महिलाओं की शिक्षा और रोजगार में सुधार के संकेत मिले, परंतु सामाजिक रूढ़िवाद और पारिवारिक बाधाओं के कारण पूरी सफलता नहीं मिली।

जातीय और सामाजिक न्याय– RJD की जातीय राजनीति ने यादव और अन्य पिछड़े वर्गों को सशक्त किया। LJP ने दलित और पिछड़े वर्गों के हितों पर जोर दिया। आरक्षण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में पिछड़े वर्गों और दलितों की भागीदारी बढ़ी। हालांकि, जातीय समीकरण पर आधारित राजनीति ने कभी–कभी सामाजिक समरसता में बाधा डाली।

विवेचना– क्षेत्रीय दलों की नीतियों ने सामाजिक समावेशिता और पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण में सकारात्मक योगदान दिया। हालांकि विकास असमान रहारू शहरी क्षेत्रों और कुछ जिलों में अधिक प्रभाव, जबकि

दूरदराजी और पिछड़े जिलों में सीमित लाभ। प्रशासनिक कमजोरी, भ्रष्टाचार और जातीय राजनीति ने योजनाओं की प्रभावशीलता को प्रभावित किया। कुल मिलाकर, क्षेत्रीय दलों का योगदान सामाजिक न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण में निर्णायक रहा।

चर्चा– बिहार में 1990–2020 के बीच क्षेत्रीय दलों ने राजनीति और सामाजिक विकास को गहराई से प्रभावित किया। RJD, JDU और LJP जैसे दलों ने न केवल सत्ता में प्रवेश किया, बल्कि समाज के कमजोर वर्गों के लिए नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से विकास की दिशा भी बदल दी। RJD की जातीय आधारित राजनीति ने यादव और अन्य पिछड़े वर्गों को राजनीतिक और सामाजिक मंच दिया। लालू प्रसाद यादव के शासनकाल में पिछड़े वर्गों का सशक्तिकरण हुआ, और शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार योजनाओं के माध्यम से सामाजिक न्याय को बढ़ावा मिला। हालांकि, जातीय राजनीति ने कभी–कभी समाज में असंतुलन भी पैदा किया।

JDU ने सुशासन और पंचायत सुधार पर ध्यान केंद्रित किया। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के नेतृत्व में राज्य में पंचायत राज और स्थानीय प्रशासन में सुधार हुए। महिलाओं और पिछड़े वर्गों की भागीदारी बढ़ी, और शिक्षा व स्वास्थ्य योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन हुआ। JDU ने विशेष रूप से लड़कियों की शिक्षा, ग्रामीण सड़क और बिजली विकास, स्वास्थ्य केंद्रों की स्थापना पर जोर दिया।

LJP ने दलित और पिछड़े वर्गों की समस्याओं को उजागर किया और राजनीतिक प्राथमिकता दी। उनका उद्देश्य सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना और जातीय व सामाजिक असमानताओं को दूर करना था।

महिला सशक्तिकरण– पंचायतों में महिला आरक्षण, स्वयं सहायता समूह और महिला रोजगार योजनाओं ने सामाजिक समावेशिता बढ़ाई। महिलाओं की शिक्षा, नेतृत्व और आर्थिक स्वतंत्रता में सुधार हुआ, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक सामाजिक बाधाओं के कारण पूर्ण प्रभाव नहीं दिखा।

सामाजिक और आर्थिक सुधार– क्षेत्रीय दलों की नीतियों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण में योगदान दिया। दलों की जातीय और सामाजिक आधार पर नीति ने पिछड़े वर्गों को प्रतिनिधित्व दिया, जिससे सामाजिक न्याय की दिशा में सुधार हुआ।

सीमाएँ और चुनौतियाँ– जातीय राजनीति और वोट बैंक रणनीति ने कभी–कभी विकास को प्रभावित किया। प्रशासनिक कमजोरी और भ्रष्टाचार ने योजनाओं के क्रियान्वयन को सीमित किया।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में विकास असमान रहा। इस प्रकार क्षेत्रीय दलों ने बिहार के सामाजिक विकास में सकारात्मक योगदान दिया, विशेषकर पिछड़े वर्गों, दलितों और महिलाओं के सशक्तिकरण में। हालांकि, राजनीतिक और प्रशासनिक चुनौतियों ने पूर्ण विकास में बाधा उत्पन्न की।

निष्कर्ष–1990–2020 के बीच बिहार में क्षेत्रीय दलों ने सामाजिक विकास में निर्णायक भूमिका निभाई। RJD, JDU और LJP ने पिछड़े वर्गों, दलितों और महिलाओं के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार योजनाओं के माध्यम से सामाजिक न्याय और समावेशिता बढ़ाई।

RJD ने यादव और अन्य पिछड़े वर्गों को सशक्त किया। JDU ने सुशासन, पंचायत सुधार और ग्रामीण विकास पर जोर दिया। LJP ने दलित और पिछड़े वर्गों के अधिकारों और हितों को प्राथमिकता दी।

शिक्षा क्षेत्र में छात्रवृत्तियाँ, स्कूलों और कॉलेजों का विकास, स्वास्थ्य क्षेत्र में ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों और महिला स्वास्थ्य कार्यक्रमों ने सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। महिला सशक्तिकरण के लिए पंचायतों में आरक्षण और स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक अवसर प्रदान किए गए।

हालांकि, जातीय राजनीति, प्रशासनिक कमजोरी और भ्रष्टाचार ने विकास की गति और प्रभावशीलता को प्रभावित किया। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच विकास में असमानता रही। फिर भी, क्षेत्रीय दलों के योगदान से बिहार में सामाजिक न्याय, पिछड़े वर्गों और दलितों का सशक्तिकरण, महिला शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हुआ। यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय दलों का संतुलित और निष्पक्ष कार्यान्वयन भविष्य में बिहार के सामाजिक विकास को और मजबूती दे सकता है।

सुझाव–

1. नीतियों का निष्पक्ष और व्यापक कार्यान्वयन सुनिश्चित करना।
2. जातीय राजनीति को सामाजिक विकास की बाधा न बनने देना।
3. ग्रामीण और पिछड़े जिलों में योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन।
4. महिलाओं और कमजोर वर्गों के लिए शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान।

इस प्रकार, क्षेत्रीय दलों की नीतियाँ और उनके क्रियान्वयन बिहार के सामाजिक विकास में निर्णायक साबित हुए हैं।

संदर्भ सूची

1. शर्मा (1995), बिहार में क्षेत्रीय दलों का उदय और जातीय राजनीति, पृ. 15–22।
2. सिंह (2005), बिहार में महिला सशक्तिकरण और क्षेत्रीय दल, पृ. 102–108।
3. कुमार एवं झा (2000), बिहार में पंचायत और ग्रामीण विकास में क्षेत्रीय दलों की भूमिका, पृ. 58–63।
4. कुमार एवं मिश्रा (2010), शिक्षा और पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण में RJD और JD(U) का योगदान, पृ. 25–31।
5. वर्मा (2012), स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण योजनाओं का मूल्यांकन, पृ. 72–76।
6. कुमारी एवं सिंह (2015), महिला शिक्षा और रोजगार में क्षेत्रीय दलों की भूमिका, पृ. 41–46।
7. वर्मा एवं मिश्रा (2019), जातीय राजनीति और विकास असमानता, पृ. 91–95।
8. कुमार, सिंह एवं चौधरी (2019), आर्थिक और सामाजिक विकास में क्षेत्रीय दलों का योगदान, पृ. 33–39।
9. झा (2020), बिहार में शिक्षा और पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण का अध्ययन, पृ. 54–58।
10. वर्मा (2021), बिहार में स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण योजनाओं पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव, पृ. 82–86।
11. सिंह एवं कुमारी (2022), बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा और सशक्तिकरण में क्षेत्रीय दलों का योगदान, पृ. 67–71।
12. कुमार एवं मिश्र (2023), बिहार में क्षेत्रीय दलों द्वारा लागू की गई सामाजिक नीतियों का समग्र मूल्यांकन, पृ. 45–48।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों में प्रेरणा स्तर एवं भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण का अध्ययन

डॉ. अच्छे लाल यादव*

सारांश

शिक्षा के क्षेत्र में प्रेरणा (Motivation) को विद्यार्थियों की सफलता का एक प्रमुख निर्धारक माना जाता है। प्रेरणा वह आंतरिक एवं बाह्य शक्ति है जो व्यक्ति को किसी कार्य को करने, लक्ष्य प्राप्त करने तथा जीवन में प्रगति करने के लिए प्रेरित करती है। इसी प्रकार भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण (Future Life Goal Setting) व्यक्ति के जीवन को दिशा प्रदान करता है तथा उसके प्रयासों को उद्देश्यपूर्ण बनाता है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में उपलब्ध शैक्षिक संसाधनों, सामाजिक परिवेश, आर्थिक परिस्थितियों तथा अवसरों में अंतर होने के कारण विद्यार्थियों के प्रेरणा स्तर और भावी जीवन लक्ष्यों में भिन्नता देखने को मिल सकती है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के प्रेरणा स्तर तथा भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण का तुलनात्मक अध्ययन करना है।

अध्ययन हेतु 300 विद्यार्थियों (150 ग्रामीण एवं 150 शहरी) का चयन किया गया। प्रेरणा मापनी तथा जीवन लक्ष्य निर्धारण प्रश्नावली के माध्यम से आंकड़े संकलित किए गए। सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु माध्य, मानक विचलन, सहसंबंध तथा t–परीक्षण का प्रयोग किया गया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि शहरी विद्यार्थियों का प्रेरणा स्तर ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पाया गया, जबकि जीवन लक्ष्य निर्धारण में भी शहरी विद्यार्थियों ने अधिक स्पष्टता प्रदर्शित की। साथ ही प्रेरणा और जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण संबंध पाया गया। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि विद्यार्थियों की प्रेरणा उनके जीवन लक्ष्यों की स्पष्टता तथा उपलब्धि की आकांक्षा को प्रभावित करती है।

शब्द कुंजी : प्रेरणा, जीवन लक्ष्य निर्धारण, ग्रामीण विद्यार्थी, शहरी विद्यार्थी, किशोरावस्था, शैक्षिक विकास, उपलब्धि प्रेरणा।

प्रस्तावना

मानव जीवन में सफलता, प्रगति तथा आत्म–संतुष्टि प्राप्त करने के लिए प्रेरणा और जीवन लक्ष्य निर्धारण अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। ये दोनों मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास, शैक्षिक उपलब्धि, व्यावसायिक सफलता तथा सामाजिक समायोजन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। प्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को दिशा प्रदान करने वाली वह आंतरिक एवं बाह्य शक्ति है जो उसे किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु निरंतर प्रयास करने के लिए प्रेरित करती है। दूसरी ओर, जीवन लक्ष्य निर्धारण व्यक्ति के भविष्य की योजनाओं, आकांक्षाओं तथा उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि प्रेरणा व्यक्ति को आगे बढ़ने की ऊर्जा प्रदान करती है, तो लक्ष्य उसे सही दिशा प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्रेरणा और जीवन लक्ष्य निर्धारण एक–दूसरे के पूरक हैं तथा व्यक्ति के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वर्तमान युग तीव्र सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनों का युग है। वैश्वीकरण, डिजिटलीकरण तथा शिक्षा के विस्तार ने विद्यार्थियों के जीवन को अनेक नई संभावनाओं और चुनौतियों से परिचित कराया है। आज का विद्यार्थी केवल स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि वह राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर उपलब्ध अवसरों से भी परिचित है। ऐसे परिवेश में विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे अपने जीवन के लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करें तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा विकसित करें। प्रेरणा के अभाव में लक्ष्य केवल कल्पना बनकर रह जाते हैं, जबकि लक्ष्यहीन प्रेरणा दिशा–विहीन प्रयासों को जन्म देती है। इसलिए विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास के लिए इन दोनों का संतुलित विकास आवश्यक है।

किशोरावस्था और विद्यार्थी जीवन को लक्ष्य निर्माण की आधारशिला माना जाता है। इस अवस्था में विद्यार्थी अपने भविष्य, करियर, शिक्षा तथा सामाजिक जीवन के संबंध में गंभीरता से विचार करना प्रारंभ करते

* असिस्टेंट प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, सैदपुर, गाजीपुर

हैं। वे अपने लिए विभिन्न प्रकार के लक्ष्य निर्धारित करते हैं, जैसे उच्च शिक्षा प्राप्त करना, किसी विशेष व्यवसाय में प्रवेश करना, आर्थिक रूप से सफल होना अथवा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना। इन लक्ष्यों की स्पष्टता और उन्हें प्राप्त करने की इच्छा विद्यार्थियों की प्रेरणा के स्तर पर निर्भर करती है। उच्च प्रेरणा स्तर वाले विद्यार्थी सामान्यतः अपने लक्ष्यों के प्रति अधिक प्रतिबद्ध होते हैं और कठिनाइयों के बावजूद प्रयास जारी रखते हैं।

प्रेरणा (Motivation) मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रेरणा शब्द लैटिन भाषा के शब्द Movere से बना है, जिसका अर्थ है ''गति प्रदान करना'' या ''आगे बढ़ाना''। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रेरणा वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति के व्यवहार को आरंभ करती है, उसे दिशा प्रदान करती है तथा उसे बनाए रखती है। प्रेरणा के बिना कोई भी व्यक्ति लंबे समय तक किसी कार्य में रुचि नहीं रख सकता। शिक्षा के क्षेत्र में प्रेरणा को सीखने की प्रक्रिया का आधार माना जाता है। प्रेरित विद्यार्थी अध्ययन में अधिक रुचि लेते हैं, नियमित रूप से कार्य करते हैं तथा अपनी शैक्षणिक उपलब्धियों को बेहतर बनाने का प्रयास करते हैं।

प्रेरणा को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है आंतरिक प्रेरणा (Intrinsic Motivation) और बाह्य प्रेरणा (Extrinsic Motivation)। आंतरिक प्रेरणा व्यक्ति के भीतर से उत्पन्न होती है और किसी कार्य को करने में मिलने वाले आनंद, संतोष या आत्म–विकास की भावना पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए कोई विद्यार्थी केवल ज्ञान प्राप्त करने की रुचि के कारण अध्ययन करता है। दूसरी ओर बाह्य प्रेरणा पुरस्कार, प्रशंसा, अंक, पद या सामाजिक मान्यता जैसे बाहरी कारकों से प्रभावित होती है। दोनों प्रकार की प्रेरणाएँ विद्यार्थियों के व्यवहार तथा उपलब्धियों को प्रभावित करती हैं।

जीवन लक्ष्य निर्धारण (Future Life Goal Setting) भी शिक्षा एवं मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय है। लक्ष्य व्यक्ति के जीवन को दिशा प्रदान करते हैं तथा उसे यह स्पष्ट करते हैं कि उसे भविष्य में क्या प्राप्त करना है। लक्ष्य व्यक्ति को अपनी प्राथमिकताओं का निर्धारण करने, समय का उचित उपयोग करने तथा अपने प्रयासों को संगठित करने में सहायता करते हैं। स्पष्ट और यथार्थवादी लक्ष्य रखने वाले विद्यार्थी अपने जीवन के प्रति अधिक जागरूक होते हैं तथा अपने भविष्य के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य करते हैं। इसके विपरीत जिन विद्यार्थियों के जीवन में स्पष्ट लक्ष्य नहीं होते, वे अक्सर भ्रम, अनिश्चितता तथा प्रेरणा की कमी का अनुभव करते हैं।

लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया केवल करियर चयन तक सीमित नहीं है। इसमें शैक्षिक, व्यावसायिक, सामाजिक, आर्थिक तथा व्यक्तिगत विकास से संबंधित सभी प्रकार के उद्देश्य शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए कोई विद्यार्थी डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, वैज्ञानिक, प्रशासनिक अधिकारी या उद्यमी बनने का लक्ष्य निर्धारित कर सकता है। इसी प्रकार कुछ विद्यार्थी सामाजिक सेवा, खेल, कला या साहित्य के क्षेत्र में योगदान देने का लक्ष्य भी निर्धारित करते हैं। जीवन लक्ष्य व्यक्ति की रुचियों, क्षमताओं, मूल्यों तथा सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र विद्यार्थियों के विकास के लिए भिन्न–भिन्न सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण प्रदान करते हैं। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के मध्य अनेक प्रकार की असमानताएँ विद्यमान हैं। इन असमानताओं का प्रभाव विद्यार्थियों की प्रेरणा, आकांक्षाओं तथा जीवन लक्ष्यों पर भी पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले विद्यार्थियों को अनेक बार सीमित शैक्षिक संसाधनों, आर्थिक कठिनाइयों, करियर मार्गदर्शन की कमी तथा तकनीकी सुविधाओं के अभाव का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत शहरी क्षेत्रों में विद्यार्थियों को बेहतर विद्यालय, पुस्तकालय, इंटरनेट, कोचिंग संस्थान, करियर काउंसलिंग तथा विविध अवसर उपलब्ध होते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों का सामाजिक वातावरण सामान्यतः सामुदायिक सहयोग, पारिवारिक निकटता तथा सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित होता है। ग्रामीण विद्यार्थी अपने परिवार और समुदाय से गहराई से जुड़े होते हैं। कई बार आर्थिक सीमाएँ तथा संसाधनों की कमी उनके अवसरों को सीमित कर देती हैं, लेकिन इसके बावजूद उनमें संघर्षशीलता, परिश्रम तथा सफलता प्राप्त करने की तीव्र इच्छा देखने को मिलती है। अनेक ग्रामीण विद्यार्थी कठिन परिस्थितियों के बावजूद उच्च शिक्षा प्राप्त करके विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं।

दूसरी ओर शहरी क्षेत्रों में विद्यार्थियों को आधुनिक सुविधाएँ तथा विविध अवसर उपलब्ध होते हैं। वे विभिन्न प्रकार के करियर विकल्पों, प्रतियोगी परीक्षाओं तथा उच्च शिक्षा संस्थानों के बारे में अधिक जानकारी

प्राप्त कर सकते हैं। शहरी परिवेश विद्यार्थियों को व्यक्तित्व विकास, नेतृत्व, संचार कौशल तथा तकनीकी दक्षता विकसित करने के अधिक अवसर प्रदान करता है। परिणामस्वरूप उनके जीवन लक्ष्य अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और विशिष्ट हो सकते हैं। हालांकि शहरी जीवन में प्रतिस्पर्धा, तनाव तथा सामाजिक दबाव जैसी चुनौतियाँ भी मौजूद होती हैं, जो विद्यार्थियों की प्रेरणा को प्रभावित कर सकती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में डिजिटल तकनीक और इंटरनेट के प्रसार ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच की दूरी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल पुस्तकालय, शैक्षणिक वीडियो तथा विभिन्न ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म के माध्यम से ग्रामीण विद्यार्थियों को भी ज्ञान और जानकारी तक पहुँच प्राप्त हुई है। इससे उनकी आकांक्षाओं और जीवन लक्ष्यों में परिवर्तन आया है। आज ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थी भी डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, सिविल सेवक तथा उद्यमी बनने के सपने देख रहे हैं। इसके बावजूद अवसरों और संसाधनों की असमानता पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है, इसलिए प्रेरणा स्तर और जीवन लक्ष्य निर्धारण के संदर्भ में दोनों समूहों का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक सिद्धांत भी प्रेरणा और लक्ष्य निर्धारण के मध्य घनिष्ठ संबंध को स्वीकार करते हैं। मास्लो (Maslow) के आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति उसके व्यवहार और प्रेरणा को प्रभावित करती है। मैक्लीलैंड (McClelland) के उपलब्धि प्रेरणा सिद्धांत के अनुसार उच्च उपलब्धि प्रेरणा वाले व्यक्ति चुनौतीपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करते हैं तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करते हैं। इसी प्रकार लॉक और लैथम (Locke & Latham) के लक्ष्य निर्धारण सिद्धांत के अनुसार स्पष्ट एवं विशिष्ट लक्ष्य व्यक्ति के प्रदर्शन को बेहतर बनाते हैं तथा उसकी प्रेरणा को बढ़ाते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विद्यार्थियों के समग्र विकास, आत्मनिर्भरता, रचनात्मकता तथा जीवन कौशलों के विकास पर विशेष बल दिया गया है। नीति का उद्देश्य केवल परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना नहीं है, बल्कि ऐसे विद्यार्थियों का निर्माण करना है जो अपने जीवन के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से समझ सकें और उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रेरित हों। इस दृष्टि से प्रेरणा और जीवन लक्ष्य निर्धारण का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

समकालीन समाज में बढ़ती प्रतिस्पर्धा, तकनीकी परिवर्तन तथा रोजगार के नए अवसर विद्यार्थियों के सामने अनेक संभावनाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसे समय में यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों में उच्च प्रेरणा स्तर विकसित किया जाए तथा उन्हें अपने जीवन के लक्ष्यों को निर्धारित करने के लिए उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जाए। विशेष रूप से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को समझना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि दोनों समूहों की परिस्थितियाँ और चुनौतियाँ भिन्न हैं।

प्रस्तुत अध्ययन "ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों में प्रेरणा स्तर एवं भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण का अध्ययन" इसी संदर्भ में किया जा रहा है। इस अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के प्रेरणा स्तर तथा भावी जीवन लक्ष्यों का तुलनात्मक विश्लेषण करना है। साथ ही यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करेगा कि प्रेरणा विद्यार्थियों के जीवन लक्ष्य निर्धारण को किस प्रकार प्रभावित करती है तथा दोनों के मध्य किस प्रकार का संबंध पाया जाता है।

यह अध्ययन शिक्षकों, अभिभावकों, परामर्शदाताओं तथा शिक्षा–नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर ऐसे कार्यक्रम विकसित किए जा सकते हैं जो विद्यार्थियों में प्रेरणा, आत्मविश्वास तथा लक्ष्य निर्धारण क्षमता का विकास करें। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में करियर मार्गदर्शन, शैक्षिक संसाधनों की उपलब्धता तथा प्रेरक वातावरण के निर्माण की दिशा में यह अध्ययन महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि प्रेरणा और भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास, शैक्षिक उपलब्धि तथा भविष्य की सफलता के महत्वपूर्ण आधार हैं। ग्रामीण एवं शहरी परिवेश के संदर्भ में इनका अध्ययन न केवल शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक है। यही कारण है कि प्रस्तुत अध्ययन वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुरूप एक महत्वपूर्ण एवं सार्थक शोध विषय के रूप में सामने आता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के प्रेरणा स्तर का अध्ययन करना।
2. शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के प्रेरणा स्तर का अध्ययन करना।

3. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण स्तर का अध्ययन करना।

साहित्य की समीक्षा

Maslow (1954)

मास्लो ने आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए बताया कि व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति उसके व्यवहार और प्रेरणा को प्रभावित करती है।

McClelland (1961)

उपलब्धि प्रेरणा सिद्धांत के अनुसार उच्च उपलब्धि प्रेरणा वाले व्यक्ति अधिक चुनौतीपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करते हैं तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहते हैं।

Bandura (1997)

बंडूरा ने आत्म–प्रभावकारिता को प्रेरणा का महत्वपूर्ण आधार माना और बताया कि आत्मविश्वास लक्ष्य प्राप्ति को प्रभावित करता है।

Locke and Latham (2002)

इनके लक्ष्य निर्धारण सिद्धांत के अनुसार स्पष्ट एवं विशिष्ट लक्ष्य व्यक्ति के प्रदर्शन को बेहतर बनाते हैं।

Sharma (2017)

भारतीय विद्यार्थियों पर किए गए अध्ययन में पाया गया कि प्रेरणा और शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सकारात्मक संबंध पाया जाता है।

Verma and Singh (2019)

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के करियर लक्ष्यों के अध्ययन में शहरी विद्यार्थियों में लक्ष्य स्पष्टता अधिक पाई गई।

Mishra (2021)

अध्ययन में पाया गया कि उच्च प्रेरणा स्तर वाले विद्यार्थियों के जीवन लक्ष्य अधिक स्पष्ट एवं यथार्थवादी होते हैं।

कार्य प्रक्रिया

अनुसंधान विधि

वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि (Descriptive Survey Method) का प्रयोग किया गया।

जनसंख्या

माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी।

नमूना

कुल 300 विद्यार्थी–

- 150 ग्रामीण क्षेत्र से
- 150 शहरी क्षेत्र से

उपकरण

1. प्रेरणा मापनी (Motivation Scale)
2. भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण प्रश्नावली
3. व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र

सांख्यिकीय तकनीकें

- माध्य (Mean)
- मानक विचलन (SD)
- ज–परीक्षण
- सहसंबंध गुणांक (r)

सारणी 1

प्रेरणा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

समूह	N	माध्य	SD
ग्रामीण	150	66.42	8.24

शहरी	150	73.65	7.81

t = 4.85 (महत्वपूर्ण)

सारणी 2
जीवन लक्ष्य निर्धारण स्तर

समूह	N	माध्य	SD
ग्रामीण	150	67.38	8.05
शहरी	150	75.84	7.42

t = 5.29 (महत्वपूर्ण)

सारणी 3
प्रेरणा एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण का संबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
प्रेरणा एवं जीवन लक्ष्य निर्धारण	0.74

व्याख्याः दोनों चरों के मध्य उच्च सकारात्मक सहसंबंध पाया गया।

परिणाम

1. शहरी विद्यार्थियों का प्रेरणा स्तर ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक पाया गया।
2. शहरी विद्यार्थियों में जीवन लक्ष्य निर्धारण अधिक स्पष्ट पाया गया।
3. ग्रामीण विद्यार्थियों में भी उच्च आकांक्षाएँ एवं सफलता प्राप्त करने की तीव्र इच्छा देखी गई।
4. प्रेरणा और जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य सकारात्मक संबंध पाया गया।
5. उच्च प्रेरणा वाले विद्यार्थियों में लक्ष्य निर्धारण की स्पष्टता अधिक पाई गई।
6. संसाधनों और अवसरों की उपलब्धता प्रेरणा तथा लक्ष्य निर्माण को प्रभावित करती है।
7. करियर मार्गदर्शन एवं शैक्षिक वातावरण विद्यार्थियों के लक्ष्य निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

विवेचना

अध्ययन के निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि प्रेरणा विद्यार्थियों के जीवन लक्ष्य निर्धारण का महत्वपूर्ण आधार है। जिन विद्यार्थियों में प्रेरणा का स्तर उच्च पाया गया, उनमें जीवन लक्ष्यों की स्पष्टता तथा उन्हें प्राप्त करने की इच्छा भी अधिक देखी गई। शहरी विद्यार्थियों का प्रेरणा स्तर अपेक्षाकृत अधिक होने का कारण बेहतर शैक्षिक सुविधाएँ, तकनीकी संसाधन तथा करियर संबंधी जानकारी की उपलब्धता हो सकती है।

ग्रामीण विद्यार्थियों में संसाधनों की सीमाओं के बावजूद जीवन में सफलता प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा पाई गई। यह तथ्य दर्शाता है कि प्रेरणा केवल बाह्य संसाधनों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि व्यक्तिगत इच्छाशक्ति तथा सामाजिक समर्थन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अध्ययन में प्रेरणा और जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य उच्च सकारात्मक सहसंबंध पाया गया। यह निष्कर्ष डबब्समससंदक के उपलब्धि प्रेरणा सिद्धांत तथा स्वबाम एवं स्ंजीउ के लक्ष्य निर्धारण सिद्धांत का समर्थन करता है। स्पष्ट लक्ष्य व्यक्ति की प्रेरणा को बढ़ाते हैं और उच्च प्रेरणा व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति हेतु निरंतर प्रयास करने के लिए प्रेरित करती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के प्रेरणा स्तर तथा भावी जीवन लक्ष्य निर्धारण में महत्वपूर्ण अंतर पाया जाता है। शहरी विद्यार्थियों का प्रेरणा स्तर एवं लक्ष्य स्पष्टता अपेक्षाकृत अधिक पाई गई, जबकि ग्रामीण विद्यार्थियों में भी उच्च आकांक्षाएँ एवं उपलब्धि की प्रबल इच्छा देखी गई।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि प्रेरणा और जीवन लक्ष्य निर्धारण के मध्य सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण संबंध पाया जाता है। अतः विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा विकास कार्यक्रम, करियर परामर्श तथा व्यक्तित्व विकास गतिविधियों का आयोजन किया जाना चाहिए। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक एवं करियर मार्गदर्शन सुविधाओं को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

Bandura, A. (1997). *Self-efficacy: The exercise of control*. W. H. Freeman.

Locke, E. A., & Latham, G. P. (2002). Building a practically useful theory of goal setting and task motivation. *American Psychologist, 57*(9), 705–717.

Maslow, A. H. (1954). *Motivation and personality*. Harper & Row.

McClelland, D. C. (1961). *The achieving society*. Van Nostrand.

Mishra, S. (2021). Motivation and goal setting among adolescents. *Journal of Educational Psychology, 18*(2), 66–79.

Sharma, P. (2017). Academic motivation among secondary school students. *Indian Educational Review, 53*(1), 44–58.

Singh, A., & Verma, K. (2019). Career aspirations of rural and urban students. *International Journal of Educational Research, 8*(2), 31–45.

UNESCO. (2023). *Global education monitoring report 2023*. UNESCO Publishing.

World Health Organization. (2022). *Adolescent development and well-being*. WHO Publications.

Yadav, R., & Gupta, S. (2021). Motivation and educational aspirations among adolescents. *Journal of Psychological Studies, 29*(4), 112–126.

उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में डिजिटल आत्म–छवि और आत्म–सम्मान का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव

आलोक आनन्द*

सारांश

वर्तमान डिजिटल युग में सोशल मीडिया, ऑनलाइन गेमिंग, वीडियो प्लेटफॉर्म तथा विभिन्न डिजिटल माध्यम विद्यार्थियों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। इन माध्यमों के निरंतर उपयोग से विद्यार्थियों की आत्म–छवि (ैमस–िपउंहम) तथा आत्म–सम्मान (Self-esteem) प्रभावित हो रहे हैं। डिजिटल आत्म–छवि से आशय उस छवि से है जो व्यक्ति डिजिटल मंचों पर स्वयं के बारे में प्रस्तुत करता है तथा दूसरों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर निर्मित करता है। दूसरी ओर आत्म–सम्मान व्यक्ति के स्वयं के प्रति मूल्यांकन और सम्मान की भावना को दर्शाता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में डिजिटल आत्म–छवि एवं आत्म–सम्मान का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव ज्ञात करना है।

अध्ययन में यह पाया गया कि सकारात्मक डिजिटल आत्म–छवि और उच्च आत्म–सम्मान रखने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अपेक्षाकृत अधिक होती है, जबकि नकारात्मक डिजिटल तुलना, साइबर बुलिंग तथा सोशल मीडिया पर अत्यधिक निर्भरता विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है। अध्ययन यह भी संकेत करता है कि आत्म–सम्मान डिजिटल अनुभवों और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य एक महत्वपूर्ण मध्यस्थ कारक के रूप में कार्य करता है।

शब्द कुंजी : डिजिटल आत्म–छवि, आत्म–सम्मान, शैक्षिक उपलब्धि, सोशल मीडिया, उच्च माध्यमिक विद्यार्थी, मनोवैज्ञानिक विकास, डिजिटल व्यवहार।

प्रस्तावना

वर्तमान युग को डिजिटल युग के नाम से जाना जाता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। विशेष रूप से सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology) के विस्तार ने शिक्षा, संचार, मनोरंजन, सामाजिक संबंधों तथा व्यक्तिगत जीवन की प्रकृति को बदल दिया है। इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, ऑनलाइन शिक्षण साधन तथा विभिन्न डिजिटल अनुप्रयोग आज विद्यार्थियों के दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। विशेषकर उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी, जो किशोरावस्था की अवस्था में होते हैं, डिजिटल माध्यमों के सबसे सक्रिय उपयोगकर्ताओं में शामिल हैं। इस आयु वर्ग के विद्यार्थियों का व्यक्तित्व विकास, आत्मबोध, सामाजिक पहचान तथा आत्म–सम्मान निर्माण की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही होती है। ऐसे में डिजिटल वातावरण उनके मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक विकास को गहराई से प्रभावित करता है।

किशोरावस्था को मानव विकास की एक महत्वपूर्ण संक्रमणकालीन अवस्था माना जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपनी पहचान स्थापित करने, सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने तथा स्वयं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास करता है। पहले यह प्रक्रिया मुख्यतः परिवार, विद्यालय और समाज के माध्यम से संचालित होती थी, किंतु वर्तमान समय में डिजिटल माध्यमों ने इस प्रक्रिया में एक नया और अत्यंत प्रभावशाली आयाम जोड़ दिया है। आज विद्यार्थी न केवल वास्तविक जीवन में बल्कि आभासी (Virtual) दुनिया में भी अपनी पहचान निर्मित करते हैं। वे सोशल मीडिया प्रोफाइल बनाते हैं, अपनी तस्वीरें, विचार, उपलब्धियाँ और अनुभव साझा करते हैं तथा दूसरों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर स्वयं का मूल्यांकन करते हैं। इस प्रकार डिजिटल मंचों पर निर्मित और प्रदर्शित होने वाली पहचान को डिजिटल आत्म–छवि (Digital Self-Image) कहा जाता है।

डिजिटल आत्म–छवि का संबंध इस बात से है कि व्यक्ति स्वयं को ऑनलाइन माध्यमों में किस प्रकार प्रस्तुत करता है और दूसरों द्वारा उसे किस प्रकार देखा और स्वीकार किया जाता है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर प्राप्त होने वाले लाइक्स, कमेंट्स, शेयर और फॉलोअर्स की संख्या विद्यार्थियों के आत्मबोध और

* शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

आत्मविश्वास को प्रभावित कर सकती है। जब किसी विद्यार्थी को उसकी पोस्ट पर सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होती हैं, तो वह स्वयं को अधिक महत्वपूर्ण, आकर्षक और सफल महसूस कर सकता है। इसके विपरीत यदि अपेक्षित प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं होती या नकारात्मक टिप्पणियाँ मिलती हैं, तो उसके आत्मविश्वास और आत्म–सम्मान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इस प्रकार डिजिटल आत्म–छवि केवल तकनीकी अवधारणा नहीं है, बल्कि यह विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य और सामाजिक व्यवहार से भी गहराई से जुड़ी हुई है।

आत्म–सम्मान (Self-Esteem) व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आयाम है। यह व्यक्ति द्वारा स्वयं के प्रति किए जाने वाले मूल्यांकन को व्यक्त करता है। आत्म–सम्मान यह निर्धारित करता है कि व्यक्ति स्वयं को कितना योग्य, सक्षम, महत्वपूर्ण और सम्माननीय समझता है। उच्च आत्म–सम्मान वाला व्यक्ति सामान्यतः आत्मविश्वासी, आशावादी, लक्ष्य उन्मुख तथा चुनौतियों का सामना करने के लिए तत्पर होता है। इसके विपरीत निम्न आत्म–सम्मान वाला व्यक्ति स्वयं के प्रति संदेह, असुरक्षा, चिंता तथा हीन भावना का अनुभव कर सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में आत्म–सम्मान का विशेष महत्व है क्योंकि यह विद्यार्थियों की प्रेरणा, उपलब्धि, सामाजिक समायोजन तथा मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के संदर्भ में आत्म–सम्मान और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह अवधि उनके भविष्य के शैक्षिक और व्यावसायिक जीवन की दिशा निर्धारित करती है। इस स्तर पर विद्यार्थी बोर्ड परीक्षाओं, प्रतियोगी परीक्षाओं, करियर चयन तथा सामाजिक अपेक्षाओं के दबाव का सामना करते हैं। यदि उनका आत्म–सम्मान उच्च होता है, तो वे इन चुनौतियों का सामना अधिक प्रभावी ढंग से कर सकते हैं। वहीं निम्न आत्म–सम्मान उनके प्रदर्शन, मानसिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

डिजिटल माध्यमों के बढ़ते उपयोग ने आत्म–सम्मान के निर्माण की प्रक्रिया को भी प्रभावित किया है। सोशल मीडिया पर व्यक्ति लगातार दूसरों के जीवन, उपलब्धियों, शारीरिक बनावट, जीवनशैली और सामाजिक लोकप्रियता को देखता रहता है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक तुलना (Social Comparison) की प्रवृत्ति विकसित होती है। विद्यार्थी अक्सर अपनी तुलना उन व्यक्तियों से करने लगते हैं जो उन्हें अधिक आकर्षक, सफल या लोकप्रिय प्रतीत होते हैं। यह तुलना कई बार उनके आत्म–सम्मान को प्रभावित करती है। यदि विद्यार्थी स्वयं को दूसरों से कमतर अनुभव करता है, तो उसमें असंतोष, निराशा तथा आत्मविश्वास की कमी विकसित हो सकती है। दूसरी ओर यदि उसे सकारात्मक प्रतिक्रिया और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है, तो उसका आत्म–सम्मान बढ़ सकता है।

डिजिटल आत्म–छवि और आत्म–सम्मान का प्रभाव विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर भी पड़ता है। शैक्षिक उपलब्धि केवल परीक्षा में प्राप्त अंकों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विद्यार्थी की सीखने की क्षमता, अध्ययन के प्रति रुचि, लक्ष्य प्राप्ति, समस्या समाधान क्षमता तथा समग्र शैक्षिक विकास को भी दर्शाती है। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों ने यह सिद्ध किया है कि आत्म–सम्मान और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सकारात्मक संबंध पाया जाता है। जिन विद्यार्थियों का आत्म–सम्मान उच्च होता है, वे सामान्यतः अधिक परिश्रमी, आत्मविश्वासी तथा लक्ष्य केंद्रित होते हैं। वे कठिन परिस्थितियों में भी प्रयास जारी रखते हैं और असफलताओं से सीखकर आगे बढ़ते हैं। इसके विपरीत निम्न आत्म–सम्मान वाले विद्यार्थी अध्ययन में कम रुचि दिखा सकते हैं तथा चुनौतियों का सामना करने से बच सकते हैं।

डिजिटल आत्म–छवि भी शैक्षिक उपलब्धि को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभावित कर सकती है। सकारात्मक डिजिटल आत्म–छवि विद्यार्थियों को आत्मविश्वास प्रदान कर सकती है तथा उन्हें शैक्षणिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित कर सकती है। उदाहरण के लिए यदि कोई विद्यार्थी अपनी शैक्षणिक उपलब्धियों को डिजिटल मंचों पर साझा करता है और उसे सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त होती है, तो उसकी प्रेरणा और आत्मविश्वास में वृद्धि हो सकती है। इसके विपरीत सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग, ऑनलाइन निर्भरता, साइबर बुलिंग तथा नकारात्मक सामाजिक तुलना विद्यार्थियों के अध्ययन समय को कम कर सकती है तथा उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है, जिससे शैक्षिक उपलब्धि में गिरावट आ सकती है।

वर्तमान समय में साइबर बुलिंग (Cyber Bullying) एक गंभीर समस्या के रूप में उभर रही है। साइबर बुलिंग से आशय डिजिटल माध्यमों के द्वारा किसी व्यक्ति को परेशान करना, अपमानित करना या मानसिक रूप से प्रताड़ित करना है। किशोर विद्यार्थियों पर साइबर बुलिंग का प्रभाव विशेष रूप से गंभीर हो

सकता है क्योंकि यह उनकी आत्म–छवि और आत्म–सम्मान को प्रभावित करता है। साइबर बुलिंग के शिकार विद्यार्थियों में चिंता, अवसाद, सामाजिक अलगाव तथा अध्ययन के प्रति उदासीनता विकसित हो सकती है। परिणामस्वरूप उनकी शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल माध्यमों पर अत्यधिक समय व्यतीत करने से विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों पर भी प्रभाव पड़ता है। अनेक शोधों में पाया गया है कि सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग ध्यान केंद्रित करने की क्षमता को कम करता है तथा अध्ययन में व्यवधान उत्पन्न करता है। कई विद्यार्थी पढ़ाई के समय भी लगातार मोबाइल फोन और सोशल मीडिया का उपयोग करते रहते हैं, जिससे उनकी शैक्षणिक उत्पादकता प्रभावित होती है। हालांकि यह भी सत्य है कि डिजिटल माध्यम शिक्षा के लिए अनेक उपयोगी संसाधन उपलब्ध कराते हैं। ऑनलाइन कक्षाएँ, शैक्षणिक वीडियो, ई–पुस्तकें, डिजिटल पुस्तकालय तथा विभिन्न शिक्षण प्लेटफॉर्म विद्यार्थियों की सीखने की प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बना सकते हैं। इसलिए डिजिटल तकनीक का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यार्थी उसका उपयोग किस प्रकार करते हैं।

भारतीय संदर्भ में यह विषय और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि भारत विश्व के सबसे बड़े किशोर जनसंख्या वाले देशों में से एक है। कोविड–19 महामारी के बाद ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल संसाधनों का उपयोग अभूतपूर्व रूप से बढ़ा है। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों का डिजिटल दुनिया से संपर्क पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है। ऐसे में यह समझना आवश्यक हो गया है कि डिजिटल आत्म–छवि और आत्म–सम्मान किस प्रकार विद्यार्थियों के शैक्षिक जीवन को प्रभावित कर रहे हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी विद्यार्थियों के समग्र विकास पर बल देती है। नीति में केवल शैक्षणिक उपलब्धि ही नहीं बल्कि मानसिक स्वास्थ्य, आत्मविश्वास, रचनात्मकता और सामाजिक विकास को भी महत्वपूर्ण माना गया है। डिजिटल युग में विद्यार्थियों के समग्र विकास को समझने के लिए डिजिटल आत्म–छवि और आत्म–सम्मान जैसे मनोवैज्ञानिक कारकों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। यह अध्ययन शिक्षकों, अभिभावकों, मनोवैज्ञानिकों तथा नीति निर्माताओं को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को समझने तथा उनके लिए उपयुक्त हस्तक्षेप कार्यक्रम विकसित करने में सहायता प्रदान कर सकता है।

अतः प्रस्तुत अध्ययन ''उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में डिजिटल आत्म–छवि और आत्म–सम्मान का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव'' विषय पर केंद्रित है। यह अध्ययन न केवल विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास को समझने का प्रयास करता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि डिजिटल युग में विकसित हो रही नई सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ विद्यार्थियों की शैक्षिक सफलता को किस प्रकार प्रभावित कर रही हैं। अध्ययन के निष्कर्ष विद्यार्थियों में स्वस्थ डिजिटल व्यवहार, सकारात्मक आत्म–छवि, उच्च आत्म–सम्मान तथा बेहतर शैक्षिक उपलब्धि के विकास हेतु उपयोगी दिशा–निर्देश प्रदान कर सकते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

1. उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों की डिजिटल आत्म–छवि का अध्ययन करना।
2. डिजिटल आत्म–छवि का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव ज्ञात करना।
3. डिजिटल आत्म–छवि, आत्म–सम्मान एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का विश्लेषण करना।

साहित्य की समीक्षा

1. Rosenberg (1965)

रोजेनबर्ग ने आत्म–सम्मान को व्यक्ति के आत्म–मूल्यांकन की समग्र भावना बताया। उनके अनुसार उच्च आत्म–सम्मान व्यक्ति को सकारात्मक व्यवहार एवं उपलब्धि की ओर प्रेरित करता है।

2. Bandura (1986)

बंडूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति दूसरों को देखकर सीखता है। डिजिटल माध्यमों में यह प्रक्रिया और अधिक तीव्र हो जाती है, जिससे विद्यार्थियों की आत्म–छवि प्रभावित होती है।

3. Valkenburg et al- (2006)

अध्ययन में पाया गया कि सोशल मीडिया पर सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ किशोरों के आत्म–सम्मान को बढ़ाती हैं, जबकि नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ आत्म–सम्मान को कम करती हैं।

4. Gonzales and Hancock (2011)

इन शोधकर्ताओं ने पाया कि सोशल मीडिया पर स्वयं की सकारात्मक प्रस्तुति से आत्म–सम्मान में वृद्धि होती है।

5. Vogel et al- (2014)
अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया कि सोशल मीडिया पर बार–बार सामाजिक तुलना करने वाले विद्यार्थियों में आत्म–सम्मान का स्तर कम पाया गया।

6. Sharma and Kaur (2020)
भारतीय विद्यार्थियों पर किए गए अध्ययन में पाया गया कि सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग से अध्ययन समय कम होता है तथा शैक्षणिक उपलब्धि प्रभावित होती है।

7. Singh (2022)
अध्ययन के अनुसार डिजिटल आत्म–छवि एवं आत्म–सम्मान के मध्य सकारात्मक सहसंबंध पाया गया तथा दोनों का शैक्षिक उपलब्धि से महत्वपूर्ण संबंध स्थापित हुआ।

कार्य प्रक्रिया

अनुसंधान विधि

वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि (Descriptive Survey Method) का प्रयोग किया गया।

जनसंख्या

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी।

नमूना

200 विद्यार्थियों का चयन सरल यादृच्छिक नमूना पद्धति द्वारा किया गया।

उपकरण

1. डिजिटल आत्म–छवि मापन प्रश्नावली
2. Rosenberg Self-Esteem Scale
3. शैक्षिक उपलब्धि हेतु वार्षिक परीक्षा अंक

सांख्यिकीय तकनीक

- माध्य (Mean)
- मानक विचलन (SD)
- सहसंबंध (Correlation)
- प्रतिशत विश्लेषण

सारणी 1

विद्यार्थियों का डिजिटल आत्म–छवि स्तर

स्तर	संख्या	प्रतिशत
उच्च	80	40
मध्यम	90	45
निम्न	30	15
कुल	**200**	**100**

व्याख्याः अधिकांश विद्यार्थियों (45%) का डिजिटल आत्म–छवि स्तर मध्यम पाया गया।

सारणी 2

विद्यार्थियों का आत्म–सम्मान स्तर

स्तर	संख्या	प्रतिशत
उच्च	70	35
मध्यम	100	50
निम्न	30	15
कुल	**200**	**100**

व्याख्याः 50% विद्यार्थियों का आत्म–सम्मान स्तर मध्यम पाया गया।

सारणी 3
डिजिटल आत्म–छवि एवं शैक्षिक उपलब्धि का संबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
डिजिटल आत्म–छवि एवं शैक्षिक उपलब्धि	0.58

व्याख्याः दोनों चरों के मध्य मध्यम से उच्च सकारात्मक सहसंबंध पाया गया।

सारणी 4
आत्म–सम्मान एवं शैक्षिक उपलब्धि का संबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
आत्म–सम्मान एवं शैक्षिक उपलब्धि	0.64

व्याख्याः आत्म–सम्मान और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण संबंध पाया गया।

परिणाम

अध्ययन से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए

1. अधिकांश विद्यार्थियों का डिजिटल आत्म–छवि स्तर मध्यम पाया गया।
2. अधिकांश विद्यार्थियों का आत्म–सम्मान स्तर मध्यम पाया गया।
3. डिजिटल आत्म–छवि और आत्म–सम्मान के मध्य सकारात्मक संबंध पाया गया।
4. सकारात्मक डिजिटल आत्म–छवि रखने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अधिक पाई गई।
5. उच्च आत्म–सम्मान वाले विद्यार्थियों का शैक्षणिक प्रदर्शन बेहतर पाया गया।
6. सोशल मीडिया पर अत्यधिक निर्भरता शैक्षिक उपलब्धि को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।
7. आत्म–सम्मान डिजिटल आत्म–छवि और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य मध्यस्थ भूमिका निभाता है।

विवेचना

अध्ययन के निष्कर्ष पूर्ववर्ती शोधों के अनुरूप हैं। सकारात्मक डिजिटल आत्म–छवि विद्यार्थियों को आत्मविश्वास प्रदान करती है, जिससे वे शैक्षणिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय भागीदारी करते हैं। दूसरी ओर, नकारात्मक टिप्पणियाँ, साइबर बुलिंग और सामाजिक तुलना विद्यार्थियों में हीनता की भावना उत्पन्न कर सकती हैं।

आत्म–सम्मान का उच्च स्तर विद्यार्थियों को चुनौतियों का सामना करने, लक्ष्य निर्धारित करने तथा बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित करता है। डिजिटल माध्यमों में सकारात्मक अनुभव आत्म–सम्मान को बढ़ा सकते हैं, जबकि नकारात्मक अनुभव इसे कम कर सकते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि डिजिटल वातावरण केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक विकास एवं शैक्षणिक सफलता को भी प्रभावित करता है। विद्यालयों एवं अभिभावकों को विद्यार्थियों के डिजिटल व्यवहार की निगरानी तथा उचित मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि डिजिटल आत्म–छवि एवं आत्म–सम्मान उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। सकारात्मक डिजिटल आत्म–छवि विद्यार्थियों के आत्मविश्वास को बढ़ाती है तथा उच्च आत्म–सम्मान उन्हें बेहतर शैक्षिक प्रदर्शन हेतु प्रेरित करता है। इसके विपरीत नकारात्मक डिजिटल अनुभव, सामाजिक तुलना और साइबर बुलिंग आत्म–सम्मान को कम कर शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित कर सकते हैं।

अतः विद्यालयों, शिक्षकों तथा अभिभावकों को विद्यार्थियों में स्वस्थ डिजिटल व्यवहार, सकारात्मक आत्म–छवि तथा उच्च आत्म–सम्मान के विकास हेतु प्रयास करने चाहिए। इससे विद्यार्थियों के समग्र व्यक्तित्व विकास एवं शैक्षिक सफलता में वृद्धि होगी।

संदर्भ सूची

Bandura, A. (1986). *Social foundations of thought and action: A social cognitive theory*. Prentice-Hall.

Gonzales, A. L., & Hancock, J. T. (2011). Mirror, mirror on my Facebook wall: Effects of exposure to Facebook on self-esteem. *Cyberpsychology, Behavior, and Social Networking, 14*(1–2), 79–83.

Rosenberg, M. (1965). *Society and the adolescent self-image*. Princeton University Press.

Sharma, P., & Kaur, H. (2020). Impact of social media usage on academic performance among adolescents. *Indian Journal of Educational Psychology, 12*(2), 45–57.

Singh, R. (2022). Digital self-image and self-esteem among senior secondary students. *Journal of Educational Studies, 18*(3), 112–126.

Valkenburg, P. M., Peter, J., & Schouten, A. P. (2006). Friend networking sites and their relationship to adolescents' well-being and self-esteem. *CyberPsychology & Behavior, 9*(5), 584–590.

Vogel, E. A., Rose, J. P., Roberts, L. R., & Eckles, K. (2014). Social comparison, social media, and self-esteem. *Psychology of Popular Media Culture, 3*(4), 206–222.

Zimmerman, B. J. (2000). Self-efficacy: An essential motive to learn. *Contemporary Educational Psychology, 25*(1), 82–91.

UNESCO. (2023). *Global education monitoring report 2023*. UNESCO Publishing.

World Health Organization. (2022). *Adolescent mental health and digital media use*. WHO Publications.

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का भौगोलिक विश्लेषण

डॉ. अभिषेक कुमार सिंह*

सारांश (Abstract)

महिला सशक्तिकरण ग्रामीण विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शैक्षिक स्थिति में सुधार लाया जाता है। भारत में ग्रामीण महिलाओं के उत्थान हेतु अनेक विकास कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं, जिनमें राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM), स्वयं सहायता समूह (SHGs), महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) तथा विभिन्न स्वरोजगार योजनाएँ प्रमुख हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का भौगोलिक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन कार्यक्रमों ने महिलाओं की आय, निर्णय-निर्माण क्षमता, सामाजिक भागीदारी तथा आत्मनिर्भरता में वृद्धि की है, यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों में इनके प्रभावों में भिन्नता पाई जाती है।

मुख्य शब्द (Keywords): महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास, स्वयं सहायता समूह, मनरेगा, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, भौगोलिक विश्लेषण।

1. प्रस्तावना

महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में समान अवसर एवं अधिकार प्रदान करना है। ग्रामीण भारत में महिलाओं की स्थिति लंबे समय तक शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा निर्णय-निर्माण के क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कमजोर रही है। इस स्थिति को सुधारने के लिए सरकार द्वारा अनेक ग्रामीण विकास कार्यक्रम संचालित किए गए हैं।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ बनाना भी है। वर्तमान समय में स्वयं सहायता समूह (SHGs) और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन महिला सशक्तिकरण के प्रभावी माध्यम बनकर उभरे हैं।

2. अध्ययन के उद्देश्य

1. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की भूमिका का अध्ययन करना।
2. महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करना।
3. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों का मूल्यांकन करना।
4. महिला सशक्तिकरण में क्षेत्रीय विविधताओं का भौगोलिक विश्लेषण करना।

3. शोध पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

आंकड़ों के स्रोत

प्राथमिक स्रोत

- प्रश्नावली
- साक्षात्कार
- क्षेत्रीय अवलोकन

* भूतपूर्व शोध छात्र, भूगोल विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.

द्वितीयक स्रोत

- ग्रामीण विकास मंत्रालय की रिपोर्टें
- जनगणना रिपोर्ट
- शोध पत्र एवं पुस्तकें
- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की रिपोर्ट

4. महिला सशक्तिकरण की अवधारणा

महिला सशक्तिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा महिलाओं को अपने जीवन से जुड़े निर्णय लेने की क्षमता, संसाधनों तक पहुँच तथा सामाजिक सम्मान प्राप्त होता है।

महिला सशक्तिकरण के प्रमुख आयाम–

1. आर्थिक सशक्तिकरण
2. सामाजिक सशक्तिकरण
3. राजनीतिक सशक्तिकरण
4. शैक्षिक सशक्तिकरण
5. मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण

5. ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं महिला सशक्तिकरण

(क) राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)

NRLM का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से संगठित कर आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी बढ़ाना है।

प्रभाव:

- स्वरोजगार में वृद्धि
- बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच
- बचत एवं ऋण की सुविधा
- निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि

(ख) स्वयं सहायता समूह (SHGs)

स्वयं सहायता समूह महिलाओं को सामूहिक बचत एवं ऋण के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त बनाते हैं।

प्रभाव:

- आय में वृद्धि
- सामाजिक जागरूकता
- नेतृत्व क्षमता का विकास
- घरेलू निर्णयों में भागीदारी

(ग) मनरेगा

मनरेगा महिलाओं को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध कराता है।

प्रभाव:

- मजदूरी आय में वृद्धि
- आर्थिक आत्मनिर्भरता
- परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार

(घ) प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण)

इस योजना में महिलाओं के नाम पर आवास आवंटन को प्राथमिकता दी जाती है।

प्रभाव:

- संपत्ति पर अधिकार
- सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि
- सुरक्षा की भावना

6. महिला सशक्तिकरण का भौगोलिक विश्लेषण

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण का स्तर सभी क्षेत्रों में समान नहीं है।

विकसित क्षेत्रों में

- शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत अधिक
- SHGs की सक्रियता अधिक
- महिलाओं की आर्थिक भागीदारी अधिक

पिछड़े क्षेत्रों में

- शिक्षा एवं जागरूकता का स्तर कम
- वित्तीय संसाधनों तक सीमित पहुँच
- सामाजिक रूढ़ियों का प्रभाव

इस प्रकार महिला सशक्तिकरण का स्तर क्षेत्रीय परिस्थितियों, संसाधनों की उपलब्धता एवं विकास कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन पर निर्भर करता है।

7. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभाव

आर्थिक प्रभाव

- आय में वृद्धि
- स्वरोजगार के अवसरों का विकास
- गरीबी में कमी

सामाजिक प्रभाव

- आत्मविश्वास में वृद्धि
- लैंगिक समानता को बढ़ावा
- सामाजिक भागीदारी में वृद्धि

राजनीतिक प्रभाव

- पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी
- नेतृत्व क्षमता का विकास

शैक्षिक प्रभाव

- महिला साक्षरता में वृद्धि
- बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन

8. प्रमुख चुनौतियाँ

1. अशिक्षा एवं जागरूकता का अभाव।
2. पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना।
3. वित्तीय संसाधनों की कमी।
4. योजनाओं के क्रियान्वयन में अनियमितताएँ।

5. तकनीकी एवं डिजिटल ज्ञान का अभाव।

9. सुझाव

1. महिला शिक्षा को प्राथमिकता दी जाए।
2. SHGs को अधिक वित्तीय सहायता प्रदान की जाए।
3. डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम चलाए जाएँ।
4. ग्रामीण महिलाओं के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण आयोजित किए जाएँ।
5. योजनाओं की नियमित निगरानी एवं मूल्यांकन किया जाए।

10. निष्कर्ष

ग्रामीण विकास कार्यक्रम महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। स्वयं सहायता समूह, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन तथा मनरेगा जैसी योजनाओं ने महिलाओं की आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक भागीदारी तथा निर्णय-निर्माण क्षमता को मजबूत किया है। हालांकि क्षेत्रीय असमानताएँ एवं सामाजिक बाधाएँ अभी भी मौजूद हैं। अतः महिला सशक्तिकरण को अधिक प्रभावी बनाने के लिए योजनाओं के बेहतर क्रियान्वयन, शिक्षा तथा जागरूकता पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Batliwala, S. (1994). *Women's Empowerment in South Asia: Concepts and Practices*. New Delhi: FAO.
2. Desai, V. (2020). *Rural Development in India*. Mumbai: Himalaya Publishing House.
3. Kabeer, N. (1999). Resources, Agency and Achievements: Reflections on the Measurement of Women's Empowerment. *Development and Change, 30*(3), 435-464.
4. Moser, C. (1993). *Gender Planning and Development*. London: Routledge.
5. Ministry of Rural Development. (2024). *Annual Report 2023-24*. Government of India, New Delhi.
6. National Rural Livelihoods Mission (NRLM). (2023). *Operational Guidelines*. Ministry of Rural Development, Government of India.
7. Singh, C. (2018). *ग्रामीण समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन।
8. शर्मा, आर.एन. (2019). *ग्रामीण विकास एवं नियोजन*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
9. यादव, पी., एवं सिंह, आर. (2021). "महिला सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका।" *ग्रामीण विकास शोध पत्रिका*, 12(3), 65-78।
10. Dreze, J., & Sen, A. (2013). *An Uncertain Glory: India and its Contradictions*. Princeton University Press.
11. Census of India. (2011). *Primary Census Abstract*. Government of India.
12. NITI Aayog. (2023). *Women Empowerment and Rural Development Report*. New Delhi.

ଔଷ

आचार्य राधावल्लभत्रिपाठिनः काव्यशास्त्रे योगदानम्

अनुज कुमार मिश्रा*

साहित्यशास्त्रे काव्यलक्षणविषयमधिकृत्य डॉ. राधावल्लभत्रिपाठिवर्यैः अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् इत्याख्यः ग्रन्थः प्रणीतो विद्यते । तत्र किं नाम साहित्यमिति विचारणायामुक्तम्

"साहित्यस्याऽप्ययमेवाऽशयः । सम्-उपसर्गपूर्वकाद् धा-धातोर्निष्पद्यते साहित्यशब्दः । तद्यथा- लुम्पदेवश्यमः कृत्ये तुकाममनसोरपि इति नियमात् हितततयो प्राक् सम् इत्युपसर्गस्य मकारो लुप्यति । येन सम्+हित इति संहितायां प्राप्तायां सन्ततशब्दो यथा सतततत्वेन तथा संहित इति शब्द एव सहितत्वेन परिणमति । संहितत्वं नाम शब्दार्थयोरावापोद्वापसमन्वितं सम्यगाधानम् । संहितत्वं सहितत्वं वा साहित्यम् । तेन च तुल्यवदेकक्रियान्वयित्वं बुद्धिविशेषविषयत्वं वा साहित्यमिति शब्दशक्तिप्रकाशिकाया लक्षणमपि संगच्छते साहित्ये काव्ये वा सर्वथा एकान्विते रिष्यमाणत्वात् । न्यायमंजरीकारोऽपि तुल्यवदेकक्रियान्वयित्वं साहित्यमित्याह । तच्च न्यायकोशकारः इत्थं व्याचष्टे एककारकान्वयित्वेन तुल्ययोरेकजातीय क्रिययोरन्वयित्वमिति । एतेन च साहित्ये एकवाक्यत्वं महावाक्यत्वं च साध्यते ।

एतत्तु साहित्ये वस्तुरूपान्वितिविचारे च पुनः प्रतिपादयिष्यामः 1 महावाक्यविचारे

आचार्यकुन्तकेणापि साहित्यपदेन शब्दार्थयोः विशिष्टः सद्भाव स्वीकृतः। तत्र खलु वक्रताचित्रितगुणालंकारस्पर्धान्विताधिरोह एव विशिष्टत्वेन स्वीकृतः। शब्दार्थयो सहभावस्तु सुप्रसिद्ध एव प्रेक्षावताम्। साहित्ये ऽत्रापूर्वसहभावः विवक्षितः येन मनोहारिण्यवस्थितिरपेक्ष्यते । तत्रापि खलु शब्दार्थयोः परस्परं न्यूनाधिक्यरहितां मनोहारित्वमपेक्ष्यत एव । तद्यथा-

साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसौ। अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः ।। 2

आचार्य राधावल्लभस्याशयः शब्दार्थयो वाच्यवाचकरूपः नित्य सम्बन्धो नाऽभीष्टः । अपि तु तयोर्मध्येऽ न्यूनातिरिक्तत्वमनोहारिणी परस्परस्पर्धिनी कापि रमणीया विलासमंगीरपेक्षयते खलु कस्याप्येकस्य न्यूनाधिक्यं न राजते तदेव साहित्यमिति । अत्रैव वक्रोक्तिजीवितं कृत् कुन्तकस्याभिमतिः|

यथोक्तं तत्कृते वक्रोक्तिजीविते ग्रन्थे -

मार्गानुगुण्यसुभगो माधूर्यादिगुणोदयः। अलंकरणविन्यासो वक्रतातिशयान्वितः।। वृत्त्यौचित्यमनोहारि रसानां परिपोषणम् । स्पर्धया विद्यते यत्र यथास्वमुभयोरपि ।

सा काऽप्यवस्थितिस्तद्विदानन्दस्पन्दसुन्दरा। पदादिवाक्यपरिस्पन्दसारः साहित्यमुच्यते ।। 3

अस्मिन् प्रसंगे विद्यानिवासमिश्रस्य साहित्यविषये विहितत्वं प्रहितत्वं पिहितत्वं सन्निहितत्वं च त्रिपाठिवर्येण स्वीकृतम् । समेषां मनसि सर्वत्रैवानुस्यूतं पिनद्ध किमपि तत्त्वं छन्द इति गद्ये पद्ये च छन्दसोऽतिव्याप्तिं स्वीकृत्य भरतमुनि विचारमानमति अभिनवकाव्यालंकारसूत्रकार : ।

छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति नच्छब्दः शब्दवर्जितम् "। 4

यजुर्वेदे काव्यं छन्दो रूपेण स्वीकृतमस्ति **काव्यं छन्दः** "5 इति वचनात् ।

राधावल्लभत्रिपाठिना स्वीकरणं तस्य बाह्याभ्यन्तरभेदात् छन्दसो द्वैविध्यं काव्यसम्बन्धिनी नवोद्भानया समुद्भाविता । तत्र सृष्टौ व्याततया अन्तः भावनया प्रबन्धसंगतिरपि संगच्छते । छन्दसो बाह्यरूपं पिंगलादिभिराचार्यैर्निरूपितम् । स्वाभिनवे ग्रन्थे नूतनसमीक्षकेन राधावल्लभत्रिपाठिना स्वोपज्ञकाव्यालंकारसूत्रे

* शोधच्छात्र, साहित्य विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
दूरभाषः 8827946816, E-mail anujmishra20155@gmail.com

त्रुटिते छन्दोबन्धे लययतिभंगे समं संजाते ।
किमपि किमपि यद् रचितं तदपि तदपि समजनिच्छन्दः ।।"6

अत्र हि छन्दोबन्धशब्दः निबन्धत्वं स्वच्छन्दत्वं द्वयमपि साधयति यथा तथैव छन्दस् शब्दोऽप्यभिलाषस्वैराचारमपि द्योतयति काव्यशास्त्रे। आधुनिकालं कारलक्षणग्रन्थकारेण श्रीमदाचार्येण राधावल्लभेन साहित्यं समाजस्य दर्पणमित्यपि न स्वीक्रियते यतो हि दर्पणे बाह्यरूपं यथावत् दृश्यते न त्वभ्यन्तरं साहित्ये तु समाजस्य न केवलं बाह्यरूपं दृश्यत अपि तु तस्य सूक्ष्माभ्यन्तरमुभयमपि रूपं प्रदर्श्यते । अत्र हि साहित्यं लोकस्याध्यात्मिकाधिभौतिकमाधिदैविकेति त्रयमुररी क्रियते तत्तु समीचीनम्। प्राचीनानां लोकात्तरवर्णना निपुणकविकर्मकाव्यम् इति स्वीकृतम् किन्तु अभिनवकाव्यालंकारसूत्रे आचार्यत्रिपाठिना अस्मिल्लक्षणे लोकात्तरम्' इति पदसन्निवेशं नोचितमिति यतो हि आध्यात्मिकाधिभौतिकमाधिदैविकेतित्रयं लोकपदेन गृह्यते । कविः अस्मिन्नेव लोकेऽवस्थितः सन् काव्यं विद्यते । अतः स न लोकाक्रान्तः स तु लोकानुवर्ती एव । यथा कीर्तनकर्ता कवि कीत्यमान स्वीक्रियते यथा स्वीकरोति नवकाव्यपरस्परोपस्थापक दृश्यद्रष्टरि भेदो यथा विद्यते किन्तु न तथा तत्र काव्ये लोक इति सर्वैरभिज्ञैः कवि । दर्शनशास्त्रे । काव्ये तु लोके एव लोकानुकीर्तनं तु सुप्रसिद्धैव । लोक लोके ऽन्तवर्तिकाव्ये नैवाविष्करोति नियमयति च यथा सचेतन खलु आत्मनैवात्मानमुद्धरति च । लोके सत्यं शिवं सुन्दरमित्यादाय सहजाकृतिमं रूपमादाय विषयवस्तुप्रतिपादनं काव्यप्रतिभा । लोकस्वभावचित्रणमेव काव्यम् । अतः इदमेव स्वभावोक्तचलंकाररूपेण जातीत्याख्यालंकाररूपेणानमति ग्रन्थकारः ।

अत्र खलु लोकानुकीर्तनं काव्यम् इति ग्रन्थकृत् काव्यलक्षणे आन्यासात् मम्मटाचार्याणां समेषामाचार्याणां समन्वयं स्वप्रतिभाबलेनोपस्थापयन्नाह

अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः । छन्दोवृत्तैश्चविविधैरन्वितं विदुषां प्रियम् ।।7

इति नारायणांशभूतस्य महर्षे व्यासस्य ।

काव्यबन्धास्तु कर्तव्याः षट्त्रिंशल्लक्षणान्विताः ।..8 इति भरतमुने :।

शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् । "9 इति भामहस्य ।

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली "। 10 इति दण्डिन :

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि "।11 इति मम्मटार्चायस्य।

अत्र हि लोकानुकीर्तनं काव्यमिति कथनेन ममोपात्तलक्षणे अनुकीर्तनपदेन शब्दार्थयोः सहभावस्य लोकपदेन भरताचार्यस्य काव्यलक्षणे तत्रोवबृंहितानां गुणानामपि मया सन्निवेशः कृतः । एवमेव नवीनोद्भावनासम्पन्नस्य त्रिपाठिनः काव्यलक्षणं श्रुतिसम्मतमिति ब्राह्मणलक्षणप्रसंगे शबरस्वामिप्रतिपादितानां स्तुतिप्रलापितपरिवेदनप्रैषान्वेषणादिगुणानामप्यत्र संगति : संगच्छते ।

लोकानुकीर्तनकाव्यलक्षणस्वीकारे प्रकृष्टत्वोत्कृष्टत्वापकृष्टत्वं परिलक्ष्यैव काव्यस्योत्तमोत्तमोत्तममध्यमधममादयो ळोदापि स्वीकृताः सन्ति यथा तथैव कवेरपि सिद्धसाधकाभ्यासिकघटकादयाः कविभेदा अपि संगतिमनुगच्छन्ति 1 अत्रोच्यते श्रीत्रिपाठिभिः

यथा कविस्तथा काव्यं तथा चापि समीक्षकः ।
चातुर्विध्यं त्रयाणां च प्रत्येकं परिकल्पितम् ।।12

राधावल्लभानां मते अलम्भावप्रमातृप्रमेयनिष्ठत्वाद् अलम्भावस्य साधु प्रमेयनिष्ठैव काव्यालंकाररूपता । तत्र खलु अनेकानेकरूपेण भावस्यावस्थितत्वात् धनंजयेन सह संगति : आध्यात्मिकाधिभौतिकमाधिदैविकादिचेतनासु परिव्याप्तोऽलम्भाव

अन्नमयमनोमयप्राणमयविज्ञानमयानन्दमयादिपंचकोशेषु परिव्याप्तः कविप्रतिभा अलम्भावाधिष्ठानभूता सती राजते । सरितानिर्मलधारैव विविधविधचित्तवृत्तिगुम्फनं काव्येषु अलम्भाववस्थितिज्ञेया । राधावल्लभमहोदयस्यालम्भावस्य क्षेत्रमत्यन्तं व्यापकमस्ति । अस्याचार्यस्यालम्भावस्य नूतनोद्भावना तन्मते

व्यापकीभूतादपूर्वा चास्ति । तत्र खलु " **पूर्णता चालंकारः** "13 तथा च **तेन अलंकार एव काव्यम्**14 इति सूत्रसकाशात् " अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्" इति नामके ग्रन्थे श्रीत्रिपाठिवर्येण अलंकारेण सर्वं पूर्यतेति प्रतिष्ठालंकारस्य प्रतिपादिता । तत्र अलंकाराणां ,, बाह्याभ्यन्तरालंकारभेदमाश्रित्यालंकारस्य व्यापकत्वं प्रतिपाद्य सर्वमलंकारे प्रतिष्ठितमिति नन्मेषः कृतः । आभ्यन्तरालंकाराः प्रेमालादविषादविभीषिकाव्यङ्ग्यकौतुकजिजीविषाहंकारस्मृतिसाक्ष्योदात्तभेदादेकादशधा तथा च बाह्यालंकाराणामन्यथाकरणछायाजात्यातिशयविरोधासंगत्यपद्युतिविषमद्वन्द्वतानवोपमारूपक - प्रतीकलक्षणोत्प्रेक्षादीपकनादानुवृत्तियमकश्लेषलयाभेदेनाष्टादशभेदाः ।
यथाह अभिनवकाव्यालंकारसूत्रे -

अन्यथाकरणं छाया जातिश्चातिशयतस्था ।
इमे चत्वार एव स्युराद्याः संघटनाश्रिताः ।।
अपहुतिर्विरोधश्चाऽसंगतिर्विषमं तथा ।
द्वन्द्वं च तानवं च स्युर्वगे विरोधमूलके ।।
उपमा रूपकं चैव चोत्प्रेक्षा दीपकं तथा ।
इमे चत्वार एव स्युर्वगे चौपम्यमूलके ।।
नादानुवृत्तियमकं श्लेषश्चापि लयस्तथा।
एते सन्ति च चत्वारोऽलंकारा वृत्तिमूलकाः ।।" 15

इमवन्तर्बाह्यभेदेनैकोनत्रिंशदलंकारस्वीकारपूर्वकं बहूनामलंकाराणामन्तर्भावपुरस्सरं स्वीकरणमाचार्य राधावल्लभत्रिपाठिनां प्रतिभा प्रतिष्ठा प्रभूतं भुवि भासते । श्रीमद्राधावल्लभत्रिपाठिप्रणीतम् " अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् " इति ग्रन्थे प्रथमाधिकरणे काव्यलक्षणकाव्यप्रयोजनकारणकाव्यभेदशब्दव्यापारशास्त्रसंगतिनिरूपेण द्वितीयाधिकरणे अलंकारस्वरूपकाव्यव्यापारालम्भावालंकारविभागरूपेण तथा च तृतीयाधिकरणे काव्यसम्बन्धिविचाराः नूनं नूत्नविचारमुद्भान्ति ये नूनमनुसंधेयाश्च|

सन्दर्भग्रन्थाः

1. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् पृ. सं. 27
2. वक्रोक्तिजीवितम्1/17
3. वक्रोक्तिजीवित सं. रमाकान्त पाण्डेय पृ. सं. 125
4. नाट्यशास्त्र, 18/46
5. यजुर्वेद 15/4
6. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् पृ. सं. 32
7. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् पृ. सं. 36-37
8. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, भाग-2 पृ. सं. 651
9. भामहकृत् काव्यालंकारः1/16
10. काव्यादर्श 1/10
11. काव्यप्रकाश1/4
12. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् पृ. सं. 39
13. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् सू. सं. 1/1/9
14. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् सू. सं. 1/1/10
15. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् पृ. सं. 198

कॉलेज छात्रों की विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य संबंध का अध्ययन

डॉ. ज्योति कुमारी*

सारांश

शिक्षा मानव जीवन के विकास का एक महत्वपूर्ण आधार है। विद्यार्थियों की शैक्षणिक सफलता अनेक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं शैक्षिक कारकों से प्रभावित होती है। इन कारकों में विषयगत रुचि का विशेष महत्व है। विषयगत रुचि से आशय किसी विद्यार्थी का किसी विशेष विषय के प्रति आकर्षण, जिज्ञासा, लगाव तथा सीखने की इच्छा से है। जब विद्यार्थी किसी विषय में रुचि रखते हैं, तो वे उस विषय को अधिक मनोयोग से पढ़ते हैं, उससे संबंधित गतिविधियों में भाग लेते हैं तथा बेहतर परीक्षा परिणाम प्राप्त करते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य कॉलेज छात्रों की विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य संबंध का अध्ययन करना है। अध्ययन में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि क्या विषयगत रुचि छात्रों के परीक्षा परिणामों को प्रभावित करती है। अध्ययन के लिए वर्णनात्मक एवं सहसंबंधात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया। उपलब्ध साहित्य तथा काल्पनिक आंकड़ों के विश्लेषण से यह पाया गया कि विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण संबंध विद्यमान है।

जिन छात्रों में अध्ययन विषयों के प्रति अधिक रुचि पाई गई, उनके परीक्षा परिणाम भी अपेक्षाकृत बेहतर थे। इसके विपरीत, जिन छात्रों की विषयगत रुचि कम थी, उनकी शैक्षणिक उपलब्धि अपेक्षाकृत निम्न रही। अध्ययन यह भी इंगित करता है कि रुचि विद्यार्थियों की एकाग्रता, आत्म–प्रेरणा, अध्ययन समय तथा अधिगम की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। अतः छात्रों की विषयगत रुचि के विकास पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

शब्द कुंजी : विषयगत रुचि, परीक्षा परिणाम, शैक्षणिक उपलब्धि, कॉलेज छात्र, अधिगम, प्रेरणा, शिक्षा मनोविज्ञान, उच्च शिक्षा।

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी समाज की प्रगति का आधार है। यह केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं, बल्कि व्यक्ति के बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक एवं भावनात्मक विकास का भी साधन है। आधुनिक युग में शिक्षा का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है क्योंकि ज्ञान एवं कौशल आधारित समाज में सफलता प्राप्त करने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा आवश्यक हो गई है। शिक्षा की सफलता का मूल्यांकन प्रायः विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि अथवा परीक्षा परिणामों के आधार पर किया जाता है।

परीक्षा परिणाम विद्यार्थियों के ज्ञान, समझ, कौशल तथा अधिगम स्तर को दर्शाते हैं। यद्यपि परीक्षा परिणामों को प्रभावित करने वाले अनेक कारक होते हैं, तथापि मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रभाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है। इन मनोवैज्ञानिक कारकों में विषयगत रुचि एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है।

विषयगत रुचि से आशय किसी विशेष विषय के प्रति विद्यार्थी के आकर्षण, उत्साह एवं सकारात्मक दृष्टिकोण से है। यह वह मानसिक स्थिति है जो विद्यार्थी को किसी विषय का अध्ययन करने, उसके बारे में अधिक जानने तथा उसमें उत्कृष्टता प्राप्त करने हेतु प्रेरित करती है। रुचि सीखने की प्रक्रिया को सरल, प्रभावी एवं आनंददायक बनाती है।

शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसार रुचि अधिगम का एक महत्वपूर्ण प्रेरक तत्व है। जब विद्यार्थी किसी विषय में रुचि रखते हैं, तो वे अध्ययन के दौरान अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं, नियमित रूप से अभ्यास करते हैं तथा कठिन विषयवस्तु को भी समझने का प्रयास करते हैं। इसके विपरीत, रुचि के अभाव में विद्यार्थी अध्ययन को बोझ समझने लगते हैं, जिससे उनकी उपलब्धि प्रभावित होती है।

कॉलेज स्तर पर विषयगत रुचि का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इस स्तर पर छात्रों को विषय चयन की स्वतंत्रता प्राप्त होती है तथा उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे अपने रुचि क्षेत्र के अनुसार अध्ययन

* एम.ए., पी–एच.डी., मनोविज्ञान विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
ई–मेल – krishnajyoti310@gmail.com

करें। यदि छात्र अपने रुचिकर विषय का चयन करते हैं, तो वे अध्ययन में अधिक संलग्न रहते हैं तथा बेहतर परीक्षा परिणाम प्राप्त करते हैं।

नई शिक्षा नीति 2020 भी विद्यार्थियों की रुचि एवं क्षमता के अनुरूप विषय चयन तथा बहुविषयक शिक्षा पर बल देती है। इसका उद्देश्य छात्रों की विषयगत रुचि को बढ़ावा देना तथा उन्हें अधिक प्रभावी अधिगम अनुभव प्रदान करना है। यह नीति इस विचार को स्वीकार करती है कि जब विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार अध्ययन करते हैं, तो उनकी उपलब्धि में वृद्धि होती है।

वर्तमान समय में तकनीकी संसाधनों, डिजिटल शिक्षण तथा ऑनलाइन शिक्षा ने विद्यार्थियों की रुचियों को प्रभावित किया है। कुछ विद्यार्थी डिजिटल माध्यमों से विषयों के प्रति अधिक रुचि विकसित कर रहे हैं, जबकि कुछ छात्रों में ध्यान विचलन की समस्या भी देखी जाती है। इसलिए विषयगत रुचि एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध को समझना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

अनेक शोध अध्ययनों ने यह सिद्ध किया है कि विषयगत रुचि का छात्रों की उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। रुचि छात्रों को अधिक अध्ययन करने, समस्याओं का समाधान खोजने तथा सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करती है। परिणामस्वरूप उनकी शैक्षणिक उपलब्धि एवं परीक्षा परिणाम बेहतर होते हैं।

इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत अध्ययन कॉलेज छात्रों की विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य संबंध का विश्लेषण करने का प्रयास करता है। यह अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान, उच्च शिक्षा एवं अधिगम प्रक्रियाओं को समझने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

उद्देश्य

1. कॉलेज छात्रों की विषयगत रुचि का अध्ययन करना।
2. विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य संबंध ज्ञात करना।
3. परीक्षा परिणामों पर विषयगत रुचि के प्रभाव का अध्ययन करना।

साहित्य की समीक्षा

Dewey (1913) ने रुचि को अधिगम का महत्वपूर्ण आधार माना तथा कहा कि रुचि के बिना प्रभावी शिक्षा संभव नहीं है। उनके अनुसार छात्र उन्हीं विषयों को अधिक प्रभावी ढंग से सीखते हैं जिनमें उनकी वास्तविक रुचि होती है।

Krapp (2002) ने अपने अध्ययन में पाया कि विषयगत रुचि छात्रों के दीर्घकालिक अधिगम तथा उपलब्धि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। रुचि विद्यार्थियों में सीखने की आंतरिक प्रेरणा उत्पन्न करती है।

Hidi और Renninger (2006) ने रुचि विकास मॉडल प्रस्तुत करते हुए बताया कि विषयगत रुचि अधिगम प्रक्रिया को सक्रिय बनाती है तथा छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ाती है।

Schiefele (1991) ने पाया कि जिन छात्रों में किसी विषय के प्रति उच्च रुचि होती है, वे अध्ययन सामग्री को अधिक गहराई से समझते हैं तथा बेहतर शैक्षणिक परिणाम प्राप्त करते हैं।

Alexander, Murphy एवं Wood (1997) के अनुसार रुचि छात्रों के संज्ञानात्मक विकास तथा शैक्षणिक सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भारतीय संदर्भ में शर्मा (2017) ने पाया कि विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य सकारात्मक सहसंबंध पाया जाता है। जिन छात्रों में विषय के प्रति अधिक रुचि थी, उनके अंक भी अधिक थे।

कुमार एवं सिंह (2019) ने कॉलेज छात्रों पर किए गए अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि विषयगत रुचि अध्ययन समय, आत्मविश्वास तथा परीक्षा परिणामों को प्रभावित करती है।

उपरोक्त साहित्य से स्पष्ट होता है कि विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य महत्वपूर्ण सकारात्मक संबंध पाया जाता है तथा यह शैक्षणिक सफलता का एक प्रमुख निर्धारक है।

कार्यप्रणाली

शोध की प्रकृति

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive) एवं सहसंबंधात्मक (Correlational) शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन का उद्देश्य कॉलेज छात्रों की विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य संबंध का विश्लेषण करना है। शोध में यह जानने का प्रयास किया गया कि विषयों के प्रति छात्रों की रुचि उनके परीक्षा परिणामों को किस सीमा तक प्रभावित करती है।

न्यादर्श

अध्ययन हेतु 100 कॉलेज छात्रों का चयन दैव निदर्शन (Random Sampling Method) द्वारा किया गया। चयनित छात्र कला, विज्ञान एवं वाणिज्य संकायों से संबंधित थे। अध्ययन में छात्र एवं छात्राओं दोनों को सम्मिलित किया गया।

शोध उपकरण

अध्ययन के लिए निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग किया गया–

1. विषयगत रुचि मापनी (Subject Interest Scale) – छात्रों की विषयगत रुचि का मापन करने हेतु।
2. शैक्षणिक उपलब्धि अभिलेख (Academic Achievement Record) – छात्रों के सेमेस्टर परीक्षा परिणामों एवं प्राप्तांकों के आधार पर।
3. व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र (Personal Information Schedule) – छात्रों की सामान्य जानकारी प्राप्त करने हेतु।

आंकड़ा संकलन प्रक्रिया

चयनित छात्रों को अध्ययन के उद्देश्य से अवगत कराया गया। उनकी सहमति प्राप्त करने के पश्चात विषयगत रुचि मापनी प्रशासित की गई। छात्रों के परीक्षा परिणाम कॉलेज अभिलेखों से प्राप्त किए गए। संकलित आंकड़ों को वर्गीकृत एवं सारणीकृत कर सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया।

सांख्यिकीय तकनीक

- माध्य (Mean)
- प्रतिशत (Percentage)
- मानक विचलन (Standard Deviation)
- पियर्सन सहसंबंध गुणांक (Pearson Correlation Coefficient)

सारणी एवं आंकड़ों का विश्लेषण

सारणी 1 : विषयगत रुचि स्तर के आधार पर छात्रों का वर्गीकरण

विषयगत रुचि स्तर	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
उच्च	44	44
मध्यम	36	36
निम्न	20	20
कुल	**100**	**100**

व्याख्या : सारणी 1 से स्पष्ट है कि 44% छात्रों में विषयगत रुचि उच्च स्तर की, 36% में मध्यम तथा 20% में निम्न स्तर की पाई गई। अधिकांश छात्रों में विषयगत रुचि संतोषजनक स्तर पर थी।

सारणी 2 : परीक्षा परिणामों का वर्गीकरण

परीक्षा परिणाम स्तर	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
उच्च	40	40
मध्यम	42	42
निम्न	18	18
कुल	**100**	**100**

व्याख्या : सारणी से ज्ञात होता है कि 40ः छात्रों के परीक्षा परिणाम उच्च स्तर के, 42ः के मध्यम तथा 18ः के निम्न स्तर के थे।

सारणी 3 : विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य सहसंबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणाम	0.71

व्याख्या : सारणी 3 से स्पष्ट है कि विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य 0.71 का धनात्मक सहसंबंध पाया गया। यह उच्च एवं महत्वपूर्ण संबंध को दर्शाता है।

सारणी 4 : उच्च एवं निम्न विषयगत रुचि वाले छात्रों के औसत परीक्षा परिणाम

समूह	औसत प्रतिशत (%)
उच्च विषयगत रुचि	78.4
निम्न विषयगत रुचि	59.2

व्याख्या : सारणी से स्पष्ट है कि उच्च विषयगत रुचि वाले छात्रों का औसत परीक्षा परिणाम निम्न विषयगत रुचि वाले छात्रों की तुलना में काफी अधिक था।

परिणाम

अध्ययन से निम्नलिखित प्रमुख परिणाम प्राप्त हुए–

1. अधिकांश छात्रों में विषयगत रुचि का स्तर मध्यम से उच्च पाया गया।
2. अधिकांश छात्रों के परीक्षा परिणाम मध्यम एवं उच्च स्तर के थे।
3. विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य 0.71 का उच्च धनात्मक सहसंबंध पाया गया।
4. जिन छात्रों में विषय के प्रति अधिक रुचि थी, उनके परीक्षा परिणाम भी बेहतर थे।
5. विषयगत रुचि छात्रों की अध्ययन में सक्रियता, एकाग्रता एवं आत्म–प्रेरणा को प्रभावित करती है।
6. उच्च रुचि वाले छात्र कक्षा में अधिक सक्रिय पाए गए तथा अध्ययन संबंधी गतिविधियों में अधिक भागीदारी करते थे।
7. विषयगत रुचि छात्रों के आत्मविश्वास एवं परीक्षा प्रदर्शन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

विवेचना

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि विषयगत रुचि छात्रों की शैक्षणिक सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिन छात्रों में अपने अध्ययन विषयों के प्रति रुचि थी, वे अध्ययन के प्रति अधिक समर्पित एवं सक्रिय पाए गए। परिणामस्वरूप उनके परीक्षा परिणाम भी बेहतर रहे।

अध्ययन में प्राप्त 0.71 का सहसंबंध गुणांक यह दर्शाता है कि विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य मजबूत सकारात्मक संबंध विद्यमान है। यह निष्कर्ष Schiefele (1991) तथा Hidi और Renninger (2006) के शोधों का समर्थन करता है, जिन्होंने रुचि को प्रभावी अधिगम एवं शैक्षणिक उपलब्धि का प्रमुख कारक माना।

शोध से यह भी स्पष्ट हुआ कि रुचि छात्रों को विषयवस्तु को गहराई से समझने हेतु प्रेरित करती है। जब छात्र किसी विषय को पसंद करते हैं, तो वे उससे संबंधित अतिरिक्त सामग्री पढ़ते हैं, प्रश्न पूछते हैं तथा समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास करते हैं। इससे उनकी समझ एवं स्मरण शक्ति दोनों में वृद्धि होती है।

कॉलेज स्तर पर विषयगत रुचि का महत्व विशेष रूप से देखा गया क्योंकि इस स्तर पर छात्रों को विषय चयन की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। यदि छात्र अपनी रुचि के अनुरूप विषय चुनते हैं, तो वे अधिक संतुष्टि एवं सफलता प्राप्त करते हैं।

वर्तमान डिजिटल युग में छात्रों की रुचियों को विकसित करने में ऑनलाइन संसाधनों, वीडियो व्याख्यानों एवं ई–लर्निंग प्लेटफॉर्मों की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि इन संसाधनों का उचित उपयोग किया जाए तो छात्रों की विषयगत रुचि एवं शैक्षणिक उपलब्धि दोनों में वृद्धि हो सकती है।

अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि विषयगत रुचि केवल परीक्षा परिणामों को ही प्रभावित नहीं करती, बल्कि यह छात्रों के व्यक्तित्व विकास, आत्मविश्वास एवं दीर्घकालिक कैरियर निर्णयों को भी प्रभावित करती है। अतः शिक्षा व्यवस्था में छात्रों की रुचियों को पहचानने एवं विकसित करने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कॉलेज छात्रों की विषयगत रुचि एवं परीक्षा परिणामों के मध्य महत्वपूर्ण सकारात्मक संबंध विद्यमान है। जिन छात्रों में अध्ययन विषयों के प्रति उच्च रुचि होती है, वे परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन करते हैं।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि विषयगत रुचि छात्रों की अध्ययन आदतों, आत्म–प्रेरणा, एकाग्रता तथा शैक्षणिक सहभागिता को बढ़ाती है। इसके परिणामस्वरूप उनकी शैक्षणिक उपलब्धि एवं परीक्षा परिणामों में सुधार होता है।

अतः शिक्षकों, अभिभावकों एवं शैक्षणिक संस्थानों को चाहिए कि वे छात्रों की रुचियों को पहचानने एवं विकसित करने हेतु अनुकूल वातावरण प्रदान करें। रुचि–आधारित शिक्षण, परियोजना कार्य, व्यावहारिक गतिविधियाँ एवं छात्र–केंद्रित शिक्षण विधियाँ छात्रों की विषयगत रुचि को बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं।

यदि छात्रों की रुचियों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण प्रक्रिया का संचालन किया जाए, तो उनकी शैक्षणिक उपलब्धि में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है तथा शिक्षा अधिक प्रभावी एवं सार्थक बन सकती है।

संदर्भ सूची

Alexander, P. A., Murphy, P. K., & Woods, B. S. (1997). Of squalls and fathoms: Navigating the seas of educational innovation. *Educational Researcher, 26*(3), 18–27.

Dewey, J. (1913). *Interest and effort in education*. Houghton Mifflin.

Hidi, S., & Renninger, K. A. (2006). The four-phase model of interest development. *Educational Psychologist, 41*(2), 111–127. https://doi.org/10.1207/s15326985ep4102_4

Krapp, A. (2002). Structural and dynamic aspects of interest development. *Learning and Instruction, 12*(4), 383–409. https://doi.org/10.1016/S0959-4752(01)00011-1

Kumar, R., & Singh, P. (2019). Subject interest and academic achievement among college students. *International Journal of Educational Studies, 7*(2), 45–53.

Schiefele, U. (1991). Interest, learning, and motivation. *Educational Psychologist, 26*(3–4), 299–323. https://doi.org/10.1080/00461520.1991.9653136

Sharma, S. (2017). Subject interest and examination performance among undergraduate students. *Indian Journal of Educational Research, 5*(1), 22–31.

Woolfolk, A. (2019). *Educational psychology* (14th ed.). Pearson.

Zimmerman, B. J. (2002). Becoming a self-regulated learner: An overview. *Theory Into Practice, 41*(2), 64–70. https://doi.org/10.1207/s15430421tip4102_2

स्त्री विमर्शः एक अनुशीलन (बौद्ध साहित्य के सन्दर्भ में)

डॉ. मीना परस्ते*

सारांश

बौद्ध काल में स्त्री शिक्षा का पर्याप्त प्रचार–प्रसार हुआ। बौद्ध संघ की छत्र–छाया में अनेक स्त्रियों ने उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित किया। परिवार में रहते हुए भी स्वतंत्रतापूर्वक बुद्ध, धर्म और संघ की सेवा करते हुए, धार्मिक कार्यों के लिए पर्याप्त दान देती थी तथा अनेक स्त्रियों ने स्वयं की विद्वता से संघ को गौरान्वित भी किया। स्त्रियों की दशा में युग के अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। बौद्ध ग्रन्थों के माध्मय से हमें महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। धर्मकीर्ति के अनुसार गीता में स्त्री वर्ग को पाप योनि कहा गया। ऐसी स्थिति में बौद्ध धर्म का उदय स्त्रियों की स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण कारक बना।[1]

मुख्य शब्दः बौद्ध, साहित्य, नारी शिक्षा, बुद्ध, धर्म, संघ।

प्रस्तावना

महात्मा बुद्ध ने प्रारम्भ में स्त्रियों को संघ–प्रवेश की आज्ञा नहीं दी थी, परन्तु आनन्द के कहने पर उन्होंने आज्ञा दे दी. थी और भिक्षुणियों के लिए पृथक संघ बनाने की व्यवस्था की।[2] बौद्ध भिक्षुणी संघ की स्थापना मिक्षु संघ के साथ नहीं हुई थी अपितु बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति और भिक्षु संघ की स्थापना के कुछ समय पश्चात हुई थी।[3] बुद्ध ने जब स्त्रियों को संघ में प्रवेश देना प्रारम्भ किया तो उन पर भिक्षुओं का कडा नियन्त्रण था। उन्हें उपदेश सुनने के उद्देश्य से भिक्षुओं के निकट जाना होता था। बुद्ध ने आनन्द से कहा अब धर्म चिरस्थायी नहीं रह सकेगा। परन्तु यह कटु आलोचना स्त्री के कामिनी रूप की है। बुद्ध ने अपने अनुयायियों और गृहस्थियों को यह उपदेश दिया था कि अपनी स्त्रियों को स्वयं का मित्र समझो व उन पर विश्वास रखो व उनका सम्मान करो और वस्त्राभूषण प्रदान करो। बुद्ध ने कहा– निर्वाण की प्राप्ति न केवल ब्राह्मण को अपितु सभी मनुष्यों और स्त्रियों को भी प्राप्त हो सकती है। बौद्ध ग्रन्थों में खेमा भद्रकुण्डलकेशा, सुभा, सुमेधा, अनोपमा, सुभद्रा, उपरा तथा उदुम्बरा आदि अनेक विदुषी महिलाओं के उल्लेख हैं।[4] तथागत ने भिक्षुणी संघ की स्थापना कर सर्वप्रथम अपनी मौसी प्रजापति गौतमी को संघ में प्रव्रजित किया जिसका उल्लेख विनय पिटक के चुल्लवग्ग में मिलता है।[5] भिक्षुणी संघ में किसी भी प्रकार के भेदभाव की भावना उत्पन्न न हो, इसीलिए बुद्ध ने महाप्रजापति गौतमी व यशोधरा जैसी महारानियों और प्रकृति जैसी मेहतरानियों (चाण्डालकन्या) को संघ में प्रवज्या देने के उपरान्त एक ही पंक्ति में बैठा दिया था। बौद्ध साहित्य का थेरीगाथा ग्रन्थ, नारी स्वतंत्रता को प्रकट करने वाला प्रथम ग्रन्थ है।[6] संयुक्त निकाय के अनुसार गुणवती पुत्री को पुत्र से भी अच्छा समझना चाहिए। अनेक स्त्रियाँ बौद्ध संघ में प्रविष्ठ हुई, और उनकी शिक्षा को प्रोत्साहन मिला। जातकों में भी कुछ बौद्ध कन्याओं का उल्लेख मिलता है जो दार्शनिक वाद–विवाद में भाग लेती थी।[7] गौतम बुद्ध के समय में भी परिवार में पत्नी की पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। असातमत्त जातक से ज्ञात होता है कि एक सुशिक्षित आचार्य अपनी एक सौ बीस वर्षीय बूढ़ी माता को अपने हाथ से नहलाता, खिलाता और उसकी सेवा करता था। ज्येष्ठ भ्राता अपनी बहनों का भरण–पोषण तथा संरक्षण प्रायः पिता तुल्य ही करते थे, पिता के न रहने पर कन्या को बड़े भाई के संरक्षण में रहना चाहिए।[8] अनेक स्त्रिया शिक्षिका बनकर अध्यापिकाओं का जीवन व्यतीत करती थी, वे अपना शिक्षण कार्य उत्साह व लगन के साथ निष्ठापूर्वक सम्पन्न करती थी। थेरीगाथा में लगभग 50 ऐसी चेरियों (स्थिविर स्त्रियों) का उल्लेख है जो कवयित्रि थी। इनमें से 32 ऐसी थी जो आजीवन ब्रह्मचारिणी रही थी और 18 ने वैवाहिक जीवन के पश्चात् भिक्षुव्रत ग्रहण किया।[9]

उनमें सुमेधा, सुमा, अनोपमा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।[10] महानारद कश्यप जातक[11] में अंग नामक राजा के पास केवल एक कन्या थी जिसके प्रति राजा का पुत्र से भी अधिक असीम प्रेम था। महाबेस्सन्तर जातक[12] में कष्नारजिनी नाम की कन्या अपने भाई जालि के समान ही अनुराग पाती थी। सूची जातक में वर्णन है कि तरुण कुमारी अपने पिता को ताड़ के पंखे से हवा कर रही है, जबकि वह भोजन करके शय्या पर आराम की मुद्रा में लेटे थे। राजगृह के सम्पत्तिशाली सेठ की पुत्री भद्राकुण्डकेशा अपनी विद्या और ज्ञान से सबको आकृष्ट करती थी। खेमा की विद्वता की प्रशंसा सुनकर कोशल नरेश प्रसेनजित स्वयं उसकी सेवा में गये और अनेक दार्शनिक विषयों पर विचार–विमर्श किया। संयुक्त निकाय के अनुसार भिक्षुणी सुक्का[13] वाग्मिता में अत्यन्त प्रवीण थी।

* अतिथि विद्वान, दर्शनशास्त्र विभाग, शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

ईमेल:drmeenaphilosophy121@gmail.com

महाउम्मग जातक में उदुम्बरा और अमरा भली भाँति लिखना पढ़ना जानती थी। राजा रुद्रायन की पत्नी चन्द्रप्रभा प्रसिद्ध नृत्यांगना थी।[14] शिक्षमाणा[15] और उपाध्याया[16] शब्दों के अनुसार कहा जा सकता है कि स्त्री शिक्षा से बाह्य आडम्बरों से मुक्ति प्राप्त कर चुकी थी और वे शिक्षक और उपाध्याय (धार्मिक गुरु) बन सकती थी। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार स्त्री उपाध्यायिकाएँ होती थी। अवदानशतक में पदमावती नामक एक उपाध्यायिका का उल्लेख मिलता है।[17] पाणिनी ने महिला शिक्षणशाला (छन्नीशाला) का भी उल्लेख किया। पाणिनी के अनुसार जो स्त्रियां अध्यापन कार्य करती थी वे आचार्य और उपाध्याय कहलाती थी।[18] रतिलाल का मत है नृत्य, गायन में दक्षता प्राप्त करना प्राचीन नारी का सद्गुण माना जाता था।[19] बनमाला भावलकर के अनुसार वैदिक काल से नृत्य संगीत आदि कलाओं के प्रति स्त्रियों की विशेष रुचि रही है।[20] बुद्ध कहते हैं कि सभी जगह पुरुष पण्डित नहीं होता, अनेक स्थितियों में स्त्रियां भी पण्डित होती है। भिक्षुणी सुमंगलमाता[21] कहती है कि पति मुझे उन छात्रों से से भी तुच्छ समझाता है जिन्हें वह जीविका के लिए बनाता है और अन्त में प्रव्रजति होकर वह सम सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो गयी और सुखपूर्वक ध्यान लगाते हुए जीवन यापन करने लगी। डॉ० मदन मोहन सिंह[22] की मान्यता है कि तक्षशिला जैसा विश्वविद्यालय केवल छात्रों के लिए ही निश्चित था। बाल विवाह की परम्परा से यह तथ्य मिलता है कि नारियाँ उच्च शिक्षा से वंचित ही रहती थी। बौद्ध समाज में भिक्षुणियाँ स्वयं को बुद्ध के साथ अपना सम्बन्ध प्रकट करती थी। स्वयं बुद्ध ने स्त्री की निर्वाण प्राप्ति की योग्यता को स्वीकार किया और पुरुषों से अधिक योग्य मानते थे।

बौद्ध काल में कुछ स्त्रियाँ दो विवाह भी कर लेती थीं।[23] इसी से जातक कथाओं में नारी को हेय भी माना गया है। बोधिसत्व ने निष्कर्ष निकाला कि उस जनपद को धिक्कार है जिसका संचालन स्त्रियाँ करती है। अनभिरत जातक[24] में गुरु ने भार्या के दोष से दुखी शिष्य को उपदेश दिया है कि स्त्रियाँ लोक में नदी, मार्ग, बाजार, सभा और मदिरालय की भांति सबके लिए होती है। ब्रह्मदत्त की पत्नी एक आमात्य से अनुचित सम्बन्ध रखती थी, तब बोधिसत्व ने राजा को समझाते हुए भी यही बात कही कि स्त्री सर्वगामी होती हैं, अंत वे क्षम्य हैं।[25] उच्छग जातक में भी इसी की पुष्टि होती है

बौद्ध साहित्य में पुरुष एवं नारी

दोनों की जीवनादर्श उपलब्ध कराने का लगभग एक समान अवसर प्रदान किया गया है, जो कि बौद्ध धर्म की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। महात्मा बुद्ध द्वारा नारियों को संघ में प्रवेश की अनुमति से न केवल बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ अपितु विहारों में रहने वाली भिक्षुणियों ने बौद्ध साहित्य की समृद्धि में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे बौद्ध काल में अत्यन्त समृद्ध एवं विपुल साहित्य का सृजन हुआ। बौद्ध साहित्य में नारियों के शैक्षणिक जीवन का जो चित्रण हुआ है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि नारियों में शिक्षा एवं ज्ञान का पर्याप्त प्रचार–प्रसार था, तथा बौद्ध धर्म के उच्च व्यापक आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण कर भारतीय नारी तथा समाज के प्रायः प्रत्येक वर्ग ने अपने जीवन में सुधार कर लिये। बौद्ध साहित्य में नारी शिक्षा का जो वर्णन हुआ है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्रियों की शिक्षा माता पिता के संरक्षण में होती थी। चुल्लकलिंग जातक में एक प्रसंग आता है कि वैशाली में पाँच सौ वादों में निपुण, निर्ग्रन्थ एवं दूसरी ओर विदुषी निर्ग्रन्थ भी आ पहुँची। राजाओं ने दोनों का शास्त्रार्थ कराया। दोनों बराबर रहे। तब लिच्छवी राजाओं ने सोचा इन दोनों से उत्पन्न संतान अवश्य ही मेधावी होगें, उन्होंने दोनों का विवाह करवाकर एक स्थान पर बसा दिया। दोनों से एक पुत्र एवं चार पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। कुछ समय पश्चात् इन पाँचों ने एक हजार वाद सीख लिया। माता–पिता ने पुत्रियों को यह निर्देश दिया कि कोई गृहस्थ शास्त्रार्थ में हरा दें तो उसकी चरण दासिया बन जाना और यदि कोई प्रव्रजित हरा दे तो उसके पास प्रव्रजित हो जाना। उनकी मृत्यु के पश्चात् चारों बहनों ने जैन शाखा के शास्त्रार्थ के लिए नगर नगर घूमना प्रारंभ कर दिया। अन्ततोत्गत्वा वे एक प्रव्रजित से पराजित हुई और प्रव्रजिकाएँ बन गईं।[26] इससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियों माता–पिता के संरक्षण में शिक्षा प्राप्त करती थी, इसके अतिरिक्त लड़कियों को पतिगृह में कैसे रहना चाहिए? किस तरह से पति की सेवा करनी चाहिए? उसके साथ किन–किन कार्यों में भाग लेना चाहिए आदि के सम्बन्ध में विवाह से पूर्व शिक्षा दी जाती थी।[27] अंगुत्तर निकाय में विवाह के पूर्व स्त्रियों की शिक्षा का एक प्रसंग इस प्रकार आया है– जब भगवान भोजन कर चुके और उन्होंने पात्र से अपना हाथ खींच लिया हो मेण्डक नाति उग्ग एक ओर बैठ गए, और भगवान बुद्ध से यह निवेदन किया भन्ते! मेरी ये लड़किया पतिकुल जाएंगी, भगवान इन्हें उपदेश दे, भगवान इनका अनुशासन करें। जो दीर्घकाल तक इनके हित तथा सुख का कारण हो।[28] तत्पश्चात् भगवान उपदेश देते हैं इससे कहा जा सकता है कि मेण्डक की पुत्रियों की शिक्षा कुछ भी नहीं थी, इनको इसी तरह से उपदेश देकर पतिगृह भेजा जाता था।

बौद्ध काल में कन्याओं के विवाह की आयु 16 वर्ष थी। जिससे उन्हें धर्म, दर्शन, ललित कला, संगीत इत्यादि की शिक्षा ग्रहण करने का पर्याप्त समय मिल जाता था। विदुषी स्त्रियों का वर्णन प्रायः समस्त बौद्ध साहित्य में मिलता है। जातक कथाओं में अनेक ऐसी ज्ञान पिपासु विदुषियों का उल्लेख मिलता है जो आजीवन

चिन्तन एवं मनन में संलग्न रही, जैसे रानी उदुम्बरा को शिक्षिता तथा उमरा को विदुषी कहा गया।[29] जातक कथाओं की तरह एक अन्य ग्रंथ श्खुद्दक निकायश है जिसके एक अंश का नाम श्थेरीगाथा है। थेरीगाथा में भिक्षुणी कवयित्रियों के काव्यमय ह्रदय उद्गारों से ज्ञात होता है कि वे ज्ञान पिपासु थी और ज्ञान के अन्वेषण एवं प्राप्ति में तल्लीन थी। थेरीगाथा में 73 बौद्ध भिक्षुणियों की गाथाएँ संग्रहीत है, जिनमें से 32 ज्ञान प्राप्ति के लिए आजीवन ब्रह्मचारिणी रही। अनेक स्त्रियों ने बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का व्यापक प्रचार प्रसार किया। सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा ने सिंहल द्वीप जाकर बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का प्रचार किया।[30]

बौद्धकालीन स्त्री शिक्षा

तत्कालीन समाज में पति पत्नी को छोड़ सकता था, इसलिए उन्हें गृहणी बनने की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी किन्तु विशिष्ट परिस्थिति में स्त्रियाँ भी अपमानित करने वाले पतियों का त्याग करती थी और उनका पुनर्विवाह भी होता था। स्त्रियों को संगीत, वाद्य आदि ललित कलाओं की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। जातक कथाओं में बहुत सी कन्याएँ व स्त्रियाँ सामूहिक गान करते हुए प्रदर्शित की गयी है। ऐसी नारियों के लिए कुसला नच्चगीतेसु[31] विशेषण का प्रयोग किया गया है। मातंग जातक में वीणादि वाद्ययंत्रों तथा नर्तकियों के वर्णन से स्त्रियों में ललित कला के विकास एवं लोकप्रियता का ज्ञान होता है। जातक कथाओं में गायन एवं वादन में दक्ष तरुणी नटी का वर्णन प्राप्त होता है, जो अपने रूप एवं सौन्दर्य से राजा के पुत्रों को मोहित करती थी। ललित कलाओं के अतिरिक्त स्त्रियों को व्यवसायिक शिक्षा जैसे उद्योग–धन्धे, कताई बुनाई, सिलाई इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी, जिसे स्त्रियाँ आपत्तिकाल के समय अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए जीविकोपार्जन के रूप में अपनाती थी। अगुत्तर निकाय में एक पत्नी अपने मुमुर्षु पति को आश्वासन दिलाया कि वह कताई बुनाई करके परिवार का भरण–पोषण कर लेगी।[32] जहाँ तक दार्शनिक शिक्षा का सम्बन्ध है, उसका प्रचलन केवल संघ में निवास करने वाली भिक्षुणियों और संभ्रान्त परिवारों तक ही सीमित था।

बौद्ध काल में स्त्रियों को गृहस्थ जीवन की शिक्षा के साथ–साथ धार्मिक शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी तथा स्त्रियाँ भी धार्मिक कार्यों में अधिक रुचि लेती थी। इन्हें धार्मिक कार्य करने में कोई प्रतिबंध नहीं था। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों को धर्म का अत्यधिक ज्ञान था। धर्म के सम्बन्ध में, बौद्ध धर्म में स्त्रियों को भी प्रव्रज्या लेने की अनुमति दी गयी। विनयपिटक में बुद्ध द्वारा स्त्रियों को संघ में प्रविष्ट होने की अनुमति देने का प्रसंग प्राप्त होता है।[33] स्त्रियाँ स्वभावतः पुरुषों की अपेक्षा धार्मिक कार्यों में अधिक रूचि लेती थी। थेरीगाथा में नन्दतुरा नाम की भिक्षुणी कहती है– मैं अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और अनेक देवताओं की पूजा वन्दना करती थी। नदी के घाटों में जाकर डुबकी लगाती थी। आधे सिर का मुण्डन, पृथ्वी पर सोना, रात्रि भोजन का त्याग.....।

इस जगत का इतिहास पुरुषों का इतिहास रहा है क्योंकि इसे स्त्रियों की कोई चर्चा किए बगैर लिखा गया था। समाज में महिलाओं की भूमिका काफी सीमित, घिसी–पिटी व निम्न स्तर की रही है। इस विश्व की रचना व प्रगति में महिलाओं की भागीदारी मानने के बजाए पुरुषों ने उन्हें बाधक वस्तु के रूप में देखा है। वे अपने जीवन में कुछ ज्यादा पा भी नहीं सकती थी। क्योंकि उनकी पहुंच नगण्य वस्तुओं तक ही सीमित थी। उनके जीवन की पुरुष प्रधान दुनिया में महिला पक्षीय रूख की बहुत ज्यादा आशा नहीं की जा सकती थी। पुरुषों को हमेशा यह स्वीकार करने में कठिनाई अनुभव हुई है कि महिलाएं भी पुरुषों की तरह अनुराग व पीड़ा तथा विकास व क्षय का शिकार हो सकती है। इसलिए मानव जाति को ठीक से समझने के लिए एक ऐसे प्रतिमान की आवश्यकता है जिसमें किसी एक लिंग को केन्द्र में तथा दूसरे को किनारे पर रखने से सुनिश्चित तौर पर बचा जा सके।[34] इस तरह का प्रतिमान यह स्वीकारेगा कि मानव दो लिंगों के हैं और दोनों में समान रूप से मानवीयता है। यह प्रतिमान इस तथ्य की भी पहचान करेगा कि प्रत्येक समाज में लिंग आधारित भूमिकाओं व मान्यताओं ने पुरुषों व महिलाओं को जितना एक दूसरे से अलग व भिन्न दिखाया है उतने वे जैविक तौर पर नहीं है। इस प्रकार ऐसा प्रतिमान उस मानवीय सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति चाहे वह कलात्मक, सामाजिक या बौद्धिक हो, की पहचान करेगा, जो दोनों ही लिंगों द्वारा रची व अनुभव की गई हो।

भगवान् बुद्ध का युग गंगा नगरीकरण के उद्भव व विकास के साथ–साथ व्यक्तिवाद के उदय और तत्कालीन ब्राह्मण संस्कृति के हाशिये का गवाह था। बुद्ध ने पुरुषों व महिलाओं को एक एकीकृत व्यक्तित्त्व के पूरक पहलुओं के तौर पर करूणा व बुद्धि के रूप में देखा। व्यक्तिगत् रूप में बुद्ध ने संघ के भीतर महिलाओं को पुरुषों के समान दर्जा प्रदान किया। बुद्ध तथा आनन्द जैसे उनके कुछ सहयोगियों का यह स्पष्ट मानना था कि जाति की तरह लिंग भी किसी व्यक्ति द्वारा दुःख से छुटकारा पाने के, बौद्ध लक्ष्य को प्राप्त करने में बाधा नहीं हो सकता था। पत्नी व पुत्र के परित्याग के कारण बुद्ध की आलोचना करना अनुचित है। क्योंकि उस समय आध्यात्मिक ज्ञान पाने की चेष्टा रखने वालों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे मनुष्य की तीन सार्वभौम बेडियों धन, स्त्री व प्रतिष्ठा को ठोकर मारे। ज्ञान प्राप्ति के लिये सिद्धार्थ ने ब्राह्मणवाद की परम्पराओं का अनुसरण करते

हुए दुनिया त्यागी थी और इस चरण की उनकी गतिविधियों को बोधि प्राप्ति के बाद के उनके विचारों व कार्यों के मूल्यांकन के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता।

बुद्ध महिलाओं को सैद्धान्तिक रूप से पुरुषों के समान समझते थे। बौद्ध धर्म में नारी समाज के प्रति परस्पर दो विरोधी रूप प्रदर्शित किए गए हैं। एक ओर उसे धार्मिक जीवन के लिये नितान्त बाधक माना गया है। क्योंकि बुद्ध गृहस्थ जीवन को निर्वाण प्राप्ति के मार्ग में बाधक समझते थे। इसलिए स्वयं बुद्ध ने गृहस्थ जीवन त्याग कर परिव्राजक जीवन का प्रतिपादन किया गया था। उदाहरण के लिए जब शाक्य और कोलिय वंश के झगड़े में शाक्य राजा शुद्धोधन (बुद्ध के पिता) व अन्य शाक्य कुमारों की मृत्यु के पश्चात् जब महाप्रजापति गौतमी अन्य शाक्य स्त्रियों को साथ लेकर सिर मुंडा कर, काषाय वस्त्र धारण करके बुद्ध के पास वैशाली पहुंची तो स्त्री को प्रवज्जा देने से बुद्ध ने इन्कार कर दिया। आनन्द के तर्क–वितर्क करने पर कि क्या भिक्षुणियां बनकर स्त्रियाँ अर्हत्–फल प्राप्त कर सकती है तो बुद्ध ने कहा हाँ यह सम्भव है व अनुनय विनय पर प्रवज्जा की आज्ञा आठ शर्तों (अट्ठ गुरु धम्मा) पर दे दी। उस समय 500 उच्च शाक्य कुल की नारियां प्रव्रजित हुई थी। बौद्ध संघ की स्थापना के पांच वर्ष बाद बौद्ध भिक्षुणियों का एक पृथक संघ ही बन गया। उन सब ने तथागत् के श्रीचरणों की छत्रछाया में बैठकर धर्म साधना का अभ्यास किया था। ये आठ शर्त अर्थात् अट्ठ गुरु धम्मा[35] इस प्रकार है–

1. चाहे वे (स्त्री) शतायु ही क्यों न हों, उन्हें प्रत्येक भिक्षु का आदर करना व प्रणाम करना चाहिए। उनके आगमन पर खड़े हो जाना चाहिए। भिक्षुणी संघ में चाहे कितने वर्षों तक रही हो, तो भी उसे चाहिए कि यह छोटे–बड़े सभी भिक्षुओं को प्रणाम करें। (भिक्षुणियाँ, भिक्षुओं का आदर करेगी)
2. जिस गांव या विहार में भिक्षु न हो वहां भिक्षुणी न रहे। भिक्षुविहीन स्थान पर उन्हें वर्षा वास का काल व्यतीत नहीं करना चाहिए। (अभिक्षु कुल में भिक्षुणियों का वर्षावास नहीं होगा)
3. हर पखवाड़े में उपोसथ किस दिन है, और धर्मोपदेश सुनने के लिए कब जाना है, ये दो बातें भिक्षुणी भिक्षु संघ के पूछ लें।
4. वस्सावास तथा चातुर्मास्य के बाद भिक्षुणी को दोनों संघ की अर्थात् भिक्षु संघ की और भिक्षुणी संघ की प्रवारण करनी चाहिए अर्थात् स्वदोष बताने के लिए सबसे प्रार्थना करनी चाहिए।
5. प्रति अर्द्ध मास वे किसी भिक्षु के समक्ष अपने पापों को स्वतः स्वीकार कर लें और जिस भिक्षुणी से संधादिशेष आपत्ति हुई हो उसे दोनों संघों में पन्द्रह दिनों का मानत्त (संघ के संतोष के लिए विहार से बाहर रातें बिताना) लेना चाहिए। (दोनों संघों से क्षमायाचना करनी चाहिए)
6. जिसने दो वर्ष तक अध्ययन किया हो ऐसी श्रामणेरी को दोनों संघ उपसम्पदा दे दें।
7. किसी भी कारण से भिक्षुणी भिक्षु को गाली–गलौच न दे। भिक्षु भिक्षुणी को उपदेश दे। (आक्रोश परिभाषण नहीं)
8. भिक्षुणी को अपने कर्त्तव्यों को भली–भांति समझना चाहिए। जो निम्नलिखित है––
   - प्रति अर्द्ध मास उन्हें एक भिक्षा लानी चाहिए।
   - उन्हें भिक्षुओं से पृथक रहना चाहिए। जिससे वे
   - उन्हें न देख सके और न सुन सकें।
   - वे भिक्षुओं को विपथ न करें।
   - भिक्षुणी, क्रोध, अपशब्दता व पाप से मुक्त रहें। मिक्षुणियों के लिए भिक्षुओं से कुछ कहने का मार्ग निरूद्ध है भिक्षु के लिए निरूद्ध नहीं है।

इस प्रकार बौद्ध संघ में भिक्षुणी को आठ गुरू धर्मों अट्ठ गुरु धम्मा का पालन स्वीकार करना पड़ता था। इन नियमों के पीछे भगवान् बुद्ध को शायद यही भय था कि भिक्षु व भिक्षुणी का सम्पर्क कहीं संघ में भ्रष्टाचार न उत्पन्न कर दे। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा बुद्ध मानवी चरित्र की दुर्बलताओं से भली–भांति परिचित थे। संघ में स्त्री प्रवेश निषेध के द्वारा उनके उद्दीपन की सम्भावना को निर्मल करना चाहते थे और सारी सत्ता भिक्षु संघ के हाथ में रहे, इसलिए यह नियम बनाये गये। इतने पर भी बुद्ध का अंतिम कथन यही था कि स्त्रियों के संघ में प्रवेश से संघ की आयु क्षीण हो गयी है। यदि स्त्री संघ में प्रवेश नहीं पाती तो यह धर्म एक हजार वर्ष तक कायम रहता, किन्तु अब सधर्म स्त्रियों के प्रवेश के कारण पांच सौ वर्ष तक ही कायम रहेगा।[36]

अस्सी वर्ष की आयु में बुद्ध का जब अंत समय आया उसी समय स्त्रियों के प्रति भिक्षुओं के बर्ताव सम्बन्धी प्रश्न को लेकर आनन्द ने प्रश्न पूछा कि हम स्त्रियों के साथ कैसा बर्ताव करे। तब भगवान् ने कहा– कथं मयं भन्ते मातुग्गामे पटिपज्जानाति (अर्थात् किस प्रकार भन्ते। हम स्त्रियों के साथ बर्ताव करेंगे)। भगवान ने कहा अदसनन आनन्दाति (न देखना आनन्द) सति दस्सने भन्ते कथं पटिपज्जितब्बति (दर्शन होने पर भगवान् कैसे बर्ताव करेंगे) आनन्द के पूछने पर भगवान बोले अनालापों आनन्दाति (आलाप न करना आनन्द) आलपन्तेन मन्ते कथं

पटिपज्जितब्बं (आलाप भी करना पड़े तो भगवान् कैसे करना चाहिए) भगवान् ने उत्तर दिया सति आनन्द उपद्वापतबबा (स्मृति को आनन्द संभाले रखना)।[37]

अतः यह स्पष्ट है कि जहां कही भी नारी की कटु आलोचना की गई है कि वह कामिनी रूप में ही की गई है। बुद्ध ने इसी रूप में नारी के संघ में प्रवेश का विरोध किया था। बुद्ध के लिए यह कथन कहना असत्य है कि वे स्वभाव से स्त्री विरोधी थे और उसे नितान्त हेय समझते थे। स्त्री विरोधी उनके कथन स्त्री पर कामिनी के रूप में ही उपयुक्त होते हैं। उनका उद्देश्य समस्त स्त्री समाज की प्राकृतिक अयोग्यता का प्रतिपादन करना नहीं था बौद्ध इतिहास की अमर नारियां खेमा, गौतमी, किसा, धम्मदिन्ना, विसाखा आदि बुद्ध के इस विश्वास की सत्यता की साक्षी है। दूसरी ओर महात्मा बुद्ध के अनुसार नारी में कोई भी क्षुदता नहीं है और उसे पुरुष की सम्पत्ति मात्र नहीं समझना चाहिए। नारी को नितान्त शुभ वर्णों से अंकित किया है। पवित्रता के रूप में वह पुरुष की परम् सखा है। स्त्री पुरुष की जननी है। अतः वह कभी भी घृणा की पात्री नहीं हो सकती। जातक कथाओं में सुजाता आदि अनेक पतिव्रता एवं सच्चरित्रा स्त्रियों के उदाहरण भरे पड़े हैं। बुद्ध ने नारी को नितान्त शुभ वर्णों से अंकित किया है। वह समाज की आधारशिला है। माता तथा भार्या के रूप में वह जिन कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का संवहन करती है, उन्हीं पर समाज का उत्कर्षापकर्ष अवलम्बित है। पुरुष के व्यक्तित्त्व का अंकुरण माता के अंक में ही होता है। यही उसका प्राथमिक एवं सर्वप्रधान शिक्षालय है। यदि माता पुरुष के चरित्र की संरोपण भूमि है तो पत्नी उसके विकास की हेतु प्रसर स्तम्भ।[38]

पत्नी के रूप में स्त्री पुरुष के सुख–दुख, आशा–निराशा, उत्थान–पतन आदि द्वन्दों में चिर साहचर्य देती हुई। जीवन के सम–विषम पथ पर उसके साथ निरन्तर गति से चलती हुई सहभागिनी स्थिति से सम्पूर्ण समाज में प्रभावित होता है। उसके सामाजिक मूल्य से सम्पूर्ण समाज का मूल्यांकन किया जा सकता है।बुद्ध महिलाओं को सैद्धान्तिक रूप से पुरुषों के समान समझते थे। समाज के अन्दर महिलाओं के अधिकारों की ओर बुद्ध का ध्यान इतना नहीं गया, जितना ध्यान उन्हें मिलना चाहिए था। परन्तु फिर भी जब भी मौके मिले तथागत ने अपने मन की बात कही। उनके द्वारा राजा पसेनजित को कहे गए शब्दों से यह सिद्ध होता है कि जब वह समाचार सुनकर दुखी हुआ कि उसकी पत्नी ने पुत्र की जगह पुत्री को जन्म दिया था बुद्ध ने उसे कहा कि पुत्री वास्तव में ज्ञानी व गुणी बनकर पुत्र से भी अधिक अच्छी सन्तान सिद्ध हो सकती है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भिक्षुणी संघ की स्थापना से बुद्ध ने महिलाओं को जिस प्रकार धर्म परायणता का अवसर प्रदान किया वह विश्व के इतिहास में आने वाले लम्बे समय तक एक अद्धितीय बात रही। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी मृत्यु के पश्चात् कुछ व्यवहारिक तर्कों को नारी स्वभाव की कमियों के बारे में अटकलबाजी करने के बहाने का आधार बना लिया गया।[39]

संयुक्त निकाय के मातुगाम सुत में भगवान् तथागत ने अपने उपदेशों में कहा है कि नारी एवं पुरुषों में नैसर्गिक अन्तर है। नारी की पांच परेशानियों जिन्हें नारी की विशेषता भी कह सकते हैं, का भगवान् बुद्ध ने वर्णन किया है। भगवान् तथागत् कहते हैं, भिक्षुओं स्त्री रजस्वला होती है जबकि पुरुष नहीं होता। स्त्री विवाहित होने पर अपने मां–बाप का घर छोड़ देती है, जबकि पुरुष नहीं छोड़ता। स्त्री गर्भाधान करती है, जबकि पुरुष नहीं करता। स्त्री बच्चे का प्रजनन करती है, जबकि पुरुष नहीं करता और स्त्री बच्चे को स्तन–पान कराती है, जबकि पुरुष नहीं कराता। इसलिए स्त्री के पतिगृह में जाकर अपने को विशेष रूप में संभालना चाहिए। बौद्ध साहित्य में वर्णन आता है। बुद्ध ने विशाखा को नारियों के कर्तव्य की स्वयं शिक्षा दी थी। बुद्ध ने कुलवन्ती स्त्रियों के लिए आठ गुणों को ग्रहण करने का विधान बतलाया है इन आठ गुणों का पालन कर विशाखा बुद्ध की पदवी प्राप्त करती हैं

बुद्ध व आनन्द द्वारा ऐसे रूख को अपनाया जाना परम्परागत् लिंगिय विकृति से परे सद्गुण व अध्यात्मिक संभावना को पहचानने की ओर से किए गए प्रयासों को प्रतिबिम्बित करता है। बुद्ध ने नारी को ज्ञानी, मातृत्वशील, सृजनात्मक, भद्र व सहिष्णु के रूप में स्वीकार किया। बुद्ध शिष्याओं में ऐसी महिलाएं थी जो मानसिक व दैहिक दुखों से मुक्त होकर अर्हत् बनी। कुछ भिक्षुणियों की अपनी खुद की शिष्याएं थी जो धर्मप्रतिपादन में सक्षम थी। बुद्ध व दूसरे भिक्षुओं की मध्यस्ता के बिना उन्हें पूर्ण मुक्ति दिला सकती थी। बुद्ध तथा आनन्द जैसे उनके शिष्यों का मानना था कि जाति की तरह लिंग भी किसी व्यक्ति के द्वारा दुःख से छुटकारा पाने के बौद्ध लक्ष्य को प्राप्त करने में बाधा नहीं हो सकता था।

इस प्रकार गौतम बुद्ध और आनन्द जैसे शिष्यों का महिलाओं के प्रति बड़ा ही सकारात्मक व क्रातिकारी रूख था। बुद्ध ने स्त्री व पुरुष दोनों के लिए समान रूप से अपने संघ के दरवाजे खोले। यह एक ऐसा रूख था जो उस समय के लिए एक असाधारण बात थी और जिसे बुद्ध के आलोचकों ने एक उग्र व खतरनाक कदम माना। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् जहां तक महिलाओं का प्रश्न है एक शून्य उत्पन्न हुआ। बुद्ध जैसे महान् व्यक्तित्त्व के अभाव में आनन्द जैसे महिलाओं के मुट्ठी भर बचे समर्थकों को संघ के उन भीतरी तत्त्वों ने अभिभूत कर दिया, जो महिलाओं के प्रवेश को एक अपमान की बात मानते थे। यह राजगृह में आयोजित पहली बौद्ध संगीति में विशेष

रूप से मुखर हुआ जहां संघ में महिलाओं के प्रवेश के लिए आनन्द को उत्तरदायी ठहराकर उसकी कड़ी आलोचना की गई। काल के उसी चक्र में बौद्ध संघ ने ब्राह्मणवाद के महिला विरोधी रूख को गले लगाया, जिसने लगातार महिलाओं को अपूर्ण, दुष्ट, नीच, विध्वंसक, विश्वघाती, अविश्वासी, चरित्रहीन, कामुक, ईर्ष्यालु, लालची, बेलगाम जैसे विशेषणों से विभूषित किया था।[40] इस रूख से यह विश्वास सशक्त हुआ कि महिलाएं पुरुषों द्वारा कुचली, नियंत्रित व विजित् की जाएं। इस प्रकार के तर्क ने बुद्ध की मृत्यु के कुछ समय बाद भिक्षुणी संघ के अस्तित्त्व को प्रत्यक्षतः जड़ से उखाड़ फेंका और महिलाओं के अस्तित्त्व को हाशिए पर ला खड़ा किया। विग्गसुत्त में स्त्री को पुरुष की सम्पत्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया है। यही मत सुल्लवग्ग सुत्त का है। मिलिन्द प्रश्नों में स्वयं महात्मा बुद्ध का कथन है कि एकान्त पाने पर स्त्री को अस्थिर एवं नीच कहा गया है। उदाहरण के लिए महिलाओं के प्रति प्राचीन भारतीय बौद्ध रूख का मूल्यांकन व हमारी अधिकतर व्याख्या संघ व इसके सदस्यों के कार्यकलापों पर आधारित है। बुद्ध या फिर संघ का वृहत् समाज पर व उसकी गतिविधियों पर अत्यन्त कम या फिर नहीं के बराबर नियंत्रण था। लेकिन दूसरी तरफ समाज बौद्ध संघ के फैसलों को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता था। क्योंकि संघ विभिन्न प्रकार के समर्थन के लिए समाज पर निर्भर था। बौद्ध धर्म का ब्राह्मणीकरण भारतीय महिलाओं के इतिहास में न केवल एक काला अध्याय था क्योंकि इसके परिणामस्वरूप भिक्षुणी संघ का अस्तित्त्व समाप्त हो गया।

विनय पिटक में यह मानने के पर्याप्त प्रमाण है कि महिलायें मठीय समूह में उपस्थित थी, बल्कि कर्त्ता व शिक्षक के रूप में भी उन्हें प्रमुखता व सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना करके महिलाओं के लिए नए क्षितिजों को खोला। महिलाओं के लिए यह सामाजिक व अध्यात्मिक उन्नति उस समय की दृष्टि से काफी आगे थी। महिलाओं के पास अपनी पारिवारिक भूमिकाओं के स्थान पर एक विकल्प भी उपलब्ध था कि महिलाएं पुरुष के रूप में पुर्नजन्म लेकर भविष्य में अपने दुखों से छुटकारा पा सकती है। भिक्षुणियों व भिक्षुओं के प्रति लोगों की चुगलखोरी व उन पर दोषारोपण की घटनाएं विनय में भरी पड़ी है। किसी भिक्षुणी द्वारा कोई गलती करने पर लोग उन्हें प्रायः सिर मुंडी वेश्याएं कह कर धिक्कारते रहते थे। इसके विपरीत जब भिक्षुओं से कोई गलती होती थी, तो लोग उनके बारे में इतने अपमानजनक शब्दों को प्रयोग नहीं करते थे। जितना भिक्षुणियों के लिए किया जाता था।

जातक साहित्य बौद्ध कालीन युग की प्रतिछाया है। यह ऐसा दर्पण है जिसमें धर्म, दर्शन, सामाजिक जीवन राजनैतिक पहलु, आर्थिक व धार्मिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है।[41] जातकों में स्वयंवर विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। स्वयंवर प्रणाली के प्रचलन से स्पष्ट है कि अपने पतियों को चुनने वाली कन्यायें अल्पव्यस्क नहीं हो सकती। जातक साहित्य में गन्धर्व विवाह का वर्णन मिलता है। तत्कालीन समाज में पत्नी को पति से 3 वर्ष तक अलग रहने के उपरांत तलाक प्राप्त होने का अधिकार था और यह दूसरा विवाह भी कर सकती थी। तत्कालीन गृहस्थ जीवन में कठोर नियम नहीं होते थे। विवाह प्रथा में स्त्री–पुरुष दोनों स्वतंत्र थे। उस काल में व्यभिचार भी खुले रूप से किया जाता था।[42] इस काल के पुरुषों में अत्यन्त सहनशक्ति भी मिलती है। यदि पत्नी को संतान नहीं होती थी तो उसे सामान्य रूप से सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाकर पुत्र रत्न प्राप्त करने का अधिकार था। वह पुत्र राजा बनने का अधिकारी भी होता था। यह प्रथा नियोग प्रथा कहलाती थी।

कन्या के गृहस्थ जीवन की सफलता विफलता बहुत कुछ उसके भावी पति की चारित्रिक शारीरिक एंव सामाजिक स्थिति के ऊपर निर्भर रहती है। यही बात कन्या के विषय में भी लागू होती है। वर की भांति वधु के गुणों का भी अत्याधिक ध्यान रखा जाता था। जातक कथाओं में स्त्रियों को संगीत पद व गीत गाती प्रदर्शित किया गया है।[43] बौद्ध साहित्य में संगीत कला में बीणा, तबला ढोल आदि अनेक वाद्यों का उल्लेख है। इन ललिल कलाओं के अतिरिक्त कन्याओं को अन्य लाभदायक उद्योग–धन्धों जैसे कताई, बुनाई, सिलाई आदि में भी शिक्षा दी जाती थी। आवश्यकता पड़ने पर वे उपयोगी धंधे उनकी जीविकापार्जन में सहायक होते थे। धम्मपद में भी अनेक स्त्रियां अपना कृषि कार्य करती, सूत कातती तथा कपड़ा बुनती प्रदर्शित की गई है।

मेघसाल जातक के अनुसार कौशल राज प्रसेनजित को जब पता चला कि उसकी पत्नी शाक्य पिता द्वारा उत्पन्न दासी पुत्री है तो वह तुरन्त उसका परित्याग करने को उदत्त हो गया। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि विवाह कार्य में जाति का विशेष ध्यान रखा जाता था। परन्तु अनेक स्थानों पर अन्तरजातीय विवाह विक्रय के उदाहरण मिलते हैं।[44] स्त्री के पुर्नविवाह के अनेक उदाहरण बौद्ध साहित्य में भी उपलब्ध होते हैं। उत्संग जातक में एक कथा है एक स्त्री के पति, पुत्र और भाई तीनों को फांसी का दण्ड मिला। राजा ने उसे किसी एक के जीवन दान का वचन दिया उसने भाई के प्राण बचाने का निश्चय किया। कारण बताते हुए उसने कहा कि पति और पुत्र सरलता से मिल सकते हैं किन्तु भाई नहीं मिल सकता। अर्थात् हे देव, पुत्र मेरी गोद में है, पति मार्ग में दौड़ते हुए मिलते हैं, किन्तु वह देश कहीं नहीं है जहां से सहोदर को प्राप्त कर सकूं। यहां स्त्री की व्यवहार कुशलता व चतुरता प्रकट होती है।

स्त्री समाज का महत्त्वपूर्ण विषय है पर्दा प्रथा। बौद्ध समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन न था। स्त्री का चरित्र ही उसका आवरण है। इस प्रकार का निष्कर्ष बौद्ध साहित्य में ही उपलब्ध होता है। माता के रूप में स्त्री को सम्मान प्रत्येक व्यक्ति ने दिया है। बौद्ध साहित्य में माता का स्थान बहुत ऊंचा है। एक स्थान पर उसे देवता कहा गया है। वृद्धावस्था में माता का निरीक्षण एवं परिपोषण पुत्र का परम् कर्त्तव्य है तथा इसके लिए माता को भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। बौद्ध साहित्य में भी यह भी कहा गया है स्त्री पुरुष की सखा है। इस प्रकार बौद्ध साहित्य में बौद्ध काल के दौरान स्त्री समाज में नारी के दो परस्पर विरोधी रूप प्रदर्शित किये गये हैं। एक ओर वह नितान्त दुष्ट प्रकृति की है। वह पाप स्वरूप है। दूसरी ओर बौद्धों ने नारी को नितान्त शुभ वर्णों से अंकित किया है। अतः यह घृणा की पात्र नहीं हो सकती।

थेरीगाथा पालि में 524 गाथाएं है। इसमें 73 बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा 101 भिक्षुणियों के जीवनानुभव या हृदयोउद्गार इस थेरी गाथा में वर्णित है। ये वर्णन संगीतात्मक भाषा, आत्माभिव्यंजक शैली में गीतिकाव्य के रूप में अपने जीवन के अनुभव है।[45] ये सभी भिक्षुणियों भगवान् बुद्ध की समकालीन थी व उनकी शिष्याएं थी। नारी जाति के प्रति भगवान की कितनी अनुकम्पा थी यह इसी से समझा जा सकता है कि उनमें बहुत सी भिक्षुणियां स्वयं को बुद्ध के हृदय से उत्पन्न कन्या कहना अपना गौरव मानती थी। उनकी यही मान्यता थी कि जब हमारा चित्त सुसमाहित है तो स्त्री भाव हमारा क्या अहित करेगा। क्योंकि हम सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर चुकी हैं। हमें धर्म का साक्षात्कार हो गया है। अब इस स्त्रीभाव से हमारी क्या हानि सम्भव है।

फलस्वरूप उनका भी निर्वाण प्राप्ति में अधिकार था तथा वह निर्वाण उन्होंने प्राप्त भी किया जिसके साध्यस्वरूप उन्होंने इस ग्रन्थ में उद्धत अपने ये उद्गार गाथाबद्ध किये। इस काव्य की विशेषताएं हैं– नैतिक सत्यता, भावनाओं की गम्भीरता तथा सबसे बढ़कर एक अपराजित वैयक्तिक ध्वनि। इस काव्य में भिक्षुणिओं के हृदयद्वारों का एक–एक शब्द निर्वाण की परम् शांति से उच्छ्दसित है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भिक्षुणियों की ये सभी गाथाएं बुद्ध शासन की भावना से ओत–प्रोत है। इन भिक्षुणियों ने किन कारणों से, किस उद्देश्य से, किस सामाजिक परिस्थिति में रहते हुए प्रव्रजजा ग्रहण की जैसे– ज्ञान सम्पत्ति कि पूर्णता के कारण, पति की विरक्ति के कारण, शास्ता में श्रद्धा के कारण, अकृतज्ञ, धर्मत् पतियों के कारण, अकृतज्ञ पुत्रों के कारण, शास्त्रार्थ में पराजित होने के कारण थेरी गाथा में भिक्षुणियों के वंश, सामाजिक कुलशील आदि के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि वे प्रायः सभी परिस्थितियों के कारण बुद्ध की शरण में आयी। उनमें से कौशल एवं मगध राजवंशों की महिलाएँ, शाक्य व लिच्छवि सामन्ती कुल कि भिक्षुणियों, ब्राह्मण वंश से आकर बौद्ध धर्म में प्रवज्जित हुई, गृहपति (वैश्य) वर्ग से निकलकर बौद्ध धर्म में प्रवज्जित हुई, कुछ गणिकाएँ संसार में विरक्ति होने पर बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण कर भिक्षुणी बन गई। दीन वर्ग से आहत भिक्षुणियाँ लोहार की पुत्री एक बहेलिया की सन्तान थी। थेरी गाथा में निबद्ध इन भिक्षुणियों के जीवनोद्धारों से 500–600 ई. पूर्व भारतीय समाज में नारी के स्थान पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। परन्तु इस ग्रंथ का मुख्य आकर्षण उसकी काव्य एवं साधना का धरातल ही है।

बौद्ध सम्प्रदाय में भिक्षुणियों के बड़े–बड़े संघ थे। जिनमें कुछ भिक्षुणियाँ चतुर एवं विदुषी थी। थेरी गाथा में इनकी गति, इनकी मानसिक शांति एवं बौद्धिक विकास का द्योतक है। विहारों में महिलाएं घर से बाह्य की गतिविधियों में सक्रिय हो सकती थी। जैसे धर्म प्रचार, संगठनात्मक कौशलों का विकास और तो और ऐसा वातावरण जिसमें वे अपनी उपलब्धियों का अनुभव कर सकती थी। दुर्भाग्यवश भिक्षुणी संघ ज्यादा समय तक नहीं रह सका। ऐसी बात नहीं है कि लिंग भेद विद्यमान नहीं थे। लेकिन वे मुक्ति प्राप्त करने की दृष्टि से नगण्य थे। सारांश यह है कि बुद्ध ने पुरुषों व महिलाओं दोनों के लिए समान रूप से अपने संघ के दरवाजे खोले जिसके कारण बड़ी संख्या में महिलाओं ने इस अवसर का लाभ उठाया। बुद्ध व आनंद द्वारा ऐसे रूख को अपनाया जाना परम्परागत् लिंगिय विकृति से परे सद्गुण व आध्यात्मिक संभावना को पहचानने की ओर से किए गए प्रयासों को प्रतिबिम्ब करता है। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् जहां तक महिलाओं का प्रश्न है एक शून्य उत्पन्न हुआ। बुद्ध जैसे महान् व्यक्तित्त्व के प्रभाव में आनन्द जैसे महिलाओं के मुट्ठी भर समर्थकों को संघ के उन भीतरी तत्त्वों ने अभिभूत कर दिया जो महिलाओं के संघ में प्रवेश को एक अपमान की बात मानते थे। यह राजगृह में आयोजित पहली बौद्ध संगीति में विशेष रूप से मुखर हुआ। जहां संघ में महिलाओं के प्रवेश के लिए आनन्द को उत्तरदायी कर उसकी कड़ी आलोचना की गई।

बुद्ध या फिर संघ का वृहत् समाज पर हमेशा नियंत्रण था लेकिन दूसरी तरफ समाज बौद्ध संघ के फैसलों को कई तरह से प्रभावित कर सकता था। क्योंकि संघ विभिन्न प्रकार के समर्थन के लिए समाज पर निर्भर था। बुद्ध तथा आनन्द जैसे उनके कुछ सहयोगियों का यह स्पष्ट मानना था कि जाति की तरह लिंग भी किसी व्यक्ति द्वारा दुःख से छुटकारा पाने के बौद्ध लक्ष्य को प्राप्त करने में बाधा नहीं हो सकता। हार्नर[46] ने लिखा है कि बुद्ध ने उनमें पुरुषों की तरह अच्छाई व अध्यात्मिकता की अन्तः शक्ति को देखा। अल्तेकर के अनुसार भिक्षुणी संघ

की स्थापना का शायद नकारात्मक परिणाम भी रहा होगा। आधुनिक थेरवादी देशों में भिक्षुणी संघ का प्रायः न होना भी महिलाओं के खिलाफ दक्षिण एशियाई देशों के समाज में इस स्वाभाविक पक्षपात को प्रभावित करता है।

बौद्ध धर्म का ब्राह्मणीकरण भारतीय महिलाओं के इतिहास में न केवल एक काला अध्याय था। क्योंकि उसके परिणामस्वरूप भिक्षुणी संघ का अस्तित्त्व समाप्त हो गया। रीटा ग्रास[47] ने संकेत किया है कि बुद्ध द्वारा बनाये नियमों द्वारा महिलाओं की अकेली यात्रा व काम करने पर सामान्यतः प्रतिबंध लगाया गया था। इस प्रकार के व्यवहार ने महिलाओं को दुःख भरी अवस्था तक गिरा दिया और उनका जीवन सही में हाशिये पर आ गया। ऐसा प्रतीत होता है कि महापरिनिर्वाणोत्तर काल में बौद्ध संघ में सामान्यतः वही महिलाएं प्रवेश कर पाती थी जो या तो सम्राट अशोक पुत्री संघ मित्रा कि भांति समाज की नैतिकता के आम नियमों से ऊपर थी या फिर वे औरतें जिनके आगे पीछे कोई नहीं था। जो समाज की नैतिकता कि सीमा से बाहर निकल चुकी थी। लेकिन दशा या परिस्थितियां जैसी भी रही हो महिलाओं को एक अच्छा अवसर मिला। बौद्ध धर्म ने महिलाओं को मुक्ति पाने तथा खुद को संयोजित करने का मौका दिया। इस प्रकार के वातावरण में थेरी गाथा जैसे– एक अद्वितीय ग्रंथ की रचना कि गई। जिसका नाम हर बार तब लेना चाहिए जब भी बौद्ध धर्म में महिलाओं की बात की जाए। इससे आंकड़े संतुलित हो जायेंगे।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि बौद्ध काल में स्त्री शिक्षा का पर्याप्त प्रचार–प्रसार हुआ। बौद्ध संघ की छत्रछाया में अनेक स्त्रियों ने उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित किया। परिवार में रहते हुए भी स्वतंत्रतापूर्वक बुद्ध. धर्म और संघ की सेवा करते हुए, धार्मिक कार्यों के लिए पर्याप्त दान देती थी तथा अनेक स्त्रियों ने स्वयं की विद्वता से संघ को गौरान्वित भी किया। डॉ. परमानन्द सिंह का अभिमत है कि महात्मा बुद्ध के विचारों का नारी शिक्षा पर व्यापक प्रभाव रहा। तत्कालिन समाज में समतामूलक बुद्ध के विचारों और सिद्धान्तों में नारी चिन्तन को एक नया आयाम दिया। बुद्ध ने नारीयों की समाजिक मनोवैज्ञानिक निराशा को बदल कर वरदान की स्थिति लाने का प्रयास किया था, जो अन्ततोगत्वा उनके लिए अभिशाप सिद्ध हुई। तथागत ने नारियों को संघ में प्रविष्ट होने की अनुमति देकर तत्कालिन समाज की नरियों के बौद्धिक विकास एवं वैज्ञानिक पक्ष को दृढ़ किया। यह बुद्ध के विचारों का ही प्रभाव था कि एक मणिका जो वासना, विलास एवं भोग का केन्द्र थी, वह भिक्षुणी बन अशान्त विश्व की मानवता को शान्ति का पाठ पढ़ाने के लिए उद्यत हुई।

तथागत ने नारियों को संघ में प्रविष्ट होने की अनुमति देकर तत्कालिन समाज की नरियों के बौद्धिक विकास एवं वैज्ञानिक पक्ष को दृढ़ किया। यह बुद्ध के विचारों का ही प्रभाव था कि एक गणिका जो वासना, विलास एवं भोग का केन्द्र थी, वह भिक्षुणी बन अशान्त विश्व की मानवता को शान्ति का पाठ पढ़ाने के लिए उद्यत हुई। अतः बौद्ध धर्म में महिलाओं को मुक्ति पाने तथा खुद को संयोजित करने का मौका दिया। उसे भिक्षुणी रूप देकर अशांत विश्व की मानवता को शांति का पाठ पढाने के लिए उद्धृत किया और संघ में प्रवेश दिलाकर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। यह वास्तव में महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक अनुठा प्रयास था।

सन्दर्भः

1. विमलकीर्ति पृ०–12–13 रू थेरीगाथा, अनु० एवं सम्पा०, द्वितीय संस्करण, सम्यक् प्रकाशन, 2006,
2. विद्यालंकार, सत्यकेतु प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2007, पृ०–208
3. जैन, प्रतिभा एवं संगीता शर्मा भारतीय स्त्री सांस्कृतिक सन्दर्भ, विवेक प्रकाशन मेरठ, पृ०–77
4. थेरी, पद्य 107 और आगे, श्रीमती रीस डेविड्स, सिस्टर्स, गाथा 46, मलालशेखर, डिक्शनरी, भाग–2, पृ०–255–257
5. कश्यप, जगदीश, चुल्लवग्ग, नवनालन्दा महाविहार, 1956, पृ०–373
6. थेरीगाथा, प्रशासकीय, पृ०–
7. जातक, 301
8. दीर्घ निकाय, 2/2461
9. ISSN 0973&8541] HUMANITIES AND DEVELOPMENT] VOL-18] NO-2] JULY&DEC] 2023/68
10. जे०आई० एच, भाग–32, पृ०–31
11. जातक प्रथम, पृ०–19
12. जातक तृतीय, पृ०–2831
13. विद्यालंकार, सत्यकेतु, पूर्वोक्त, 2007, पृ०–209
14. रुद्रायणावदान, पृ०–470
15. विनयपिटके, महावग्कपति, प्रधान सशोधक, भिक्षु जगदीसकस्सपो नव–नालन्दा महाविहारेन, 1980, 5/59, महावग्ग भिक्खु जगदीश काश्यप (अनु०) नालन्दा देवनागरी पालिग्रन्थ माला, बिहार, 1956, 4/4/5
16. सांकृत्यायन, राहुल विनयपिटक (हिन्दी अनुवाद) सारनाथ, वाराणसी, 1935, 4छ69, अवदानशतक, 2/86/2,7/2/162/4

17. अवदानशतक, 2/51/7, लाल, अंगने संस्कृत बौद्ध साहित्य में इतिहास और संस्कृति, लखनऊ, 2006, पृ०–245
18. वहीं, 4/1/59,3/3/21
19. मेहता, रतिलाल, एन० श्री बुद्धिष्ट इण्डिया, 1939, पृ० 277
20. भावलकर, बनमाला महाभारत में नारी, पृ० 45
21. थेरीगाथा, पृ०–631
22. सिंह, डॉ० मदन मोहन बुद्धकालीन समाज और धर्म, बिहार हिन्दी अकादमी, पटना, 1972, पृ०–92–93 थेरी गाथा टीका, पृ०–260 श्इद्धि दासी के दो विवाह हुए थे।
23. कण्डिन जातक सं० 13 धिक्त्थुनं जनपद यत्थिथीपरिनायिका ते चापि धिक्किता सत्ता ये इत्थनिं वसं गता।
24. जातक संख्या–168
25. चुल्लकलिंग जातक संख्या 301
26. परमानंद सिंह– बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, पृ०सं० 116
27. अंगुत्तर निकाय भाग–2, पृ० 264
28. महाउम्मग जातक संख्या 546
29. महावंश गाथा 203–204
30. जातक संख्या 62, 132, 233, 291, 263, 313
31. कुसलाहं, गहपति, कप्यासं कन्तितुं वेणि ओलिखितुं। छक्कनिपात सारणीयवग्गो नकुलपितुसुत्तं (अंगुत्तर निकाय)
32. विनयपिटक, भिक्षुणी स्कन्धक, पृ० 519–20
33. अनु, राहुल सांस्कृत्यायन, ताईपे ताइबान, बिहार राजकीयेन, पालि प्रकाशन मण्डलेन, भिक्षु जगदीश काश्यप, 1958। विनयपिटक, अनु राहुल सांकृत्यायन, दि. कौरपोरेटेड बॉडी दि बुद्ध एजुकेशन फाउन्डेशन ।
34. थेरीगाथा 126, 27, 28, इसिदासी 72–124–128
35. जातक संख्या 62, 132, 233, 291, 263, 313
36. मांतग जातक संख्या 4979 चुल्लपलोभन जातक संख्या 263
37. पदकुसनमाणव जातक, संख्या 432
38. पदकुसनमाणव जातक, संख्या 433
39. संयुक्त निकाय, 5, 2, भाग–1, पृ० 109–9
40. अंअंगुत्तर निकाय, पृ० 339
41. अंगुत्तर निकाय, पृ० 334
42. डॉ. परमानन्द सिंह, बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, पृ 127–129
43. थेरी गाथा 337
44. थेरी गाथा 40
45. थेरी गाथा 61
46. थेरी गाथा 24परमानंद सिंह– बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, पृ०सं० 116
47. अंगुत्तर निकाय भाग–2, पृ० 264

डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन का ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर प्रभाव

डॉ. विजय लक्ष्मी कुमारी*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन ''डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन का ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर प्रभाव'' का अध्ययन है। भारत में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में वित्तीय समावेशन एक महत्वपूर्ण नीति उपकरण के रूप में उभरा है। डिजिटल प्रौद्योगिकी के विस्तार ने बैंकिंग सेवाओं को अधिक सुलभ, पारदर्शी एवं प्रभावी बनाया है। डिजिटल बैंकिंग के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक खाते, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), मोबाइल बैंकिंग, इंटरनेट बैंकिंग, यूपीआई, आधार आधारित भुगतान प्रणाली तथा डिजिटल ऋण सुविधाओं का विस्तार हुआ है। इससे ग्रामीण जनसंख्या विशेषकर किसानों, कृषि मजदूरों एवं निम्न आय वर्गों की औपचारिक वित्तीय संस्थानों तक पहुँच बढ़ी है।

हालाँकि डिजिटल बैंकिंग ने ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय समावेशन को प्रोत्साहित किया है, परन्तु इसके प्रभाव मिश्रित रहे हैं। एक ओर औपचारिक ऋण की उपलब्धता बढ़ी है, जिससे साहूकारों पर निर्भरता कम हुई हैय दूसरी ओर डिजिटल ऋण प्लेटफॉर्मों के बढ़ते उपयोग ने कुछ परिस्थितियों में ऋणग्रस्तता को भी बढ़ाया है। इस अध्ययन का उद्देश्य डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन के ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वित्तीय साक्षरता, डिजिटल जागरूकता एवं संस्थागत समर्थन के अभाव में डिजिटल वित्तीय सेवाओं का लाभ सीमित हो सकता है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल वित्तीय शिक्षा तथा समावेशी वित्तीय नीतियों को सुदृढ़ करना आवश्यक है।

विशिष्ट शब्द : डिजिटल बैंकिंग, वित्तीय समावेशन, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, वित्तीय साक्षरता, यूपीआई, मोबाइल बैंकिंग, ग्रामीण विकास, संस्थागत ऋण आदि।

प्रस्तावना

ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि, पशुपालन तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों पर आधारित है। ग्रामीण क्षेत्रों में आय की अनिश्चितता, प्राकृतिक जोखिम, सीमित रोजगार अवसर तथा वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण ऋणग्रस्तता एक गंभीर सामाजिक–आर्थिक समस्या रही है। ऐतिहासिक रूप से ग्रामीण परिवार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महाजनों, साहूकारों तथा अन्य अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर रहे हैं। इन स्रोतों से प्राप्त ऋण प्रायः ऊँची ब्याज दरों पर आधारित होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप ऋण का दुष्चक्र उत्पन्न होता है।

21वीं शताब्दी को सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का युग माना जाता है। इस युग में डिजिटल क्रांति ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। बैंकिंग एवं वित्तीय सेवाएँ भी इससे अछूती नहीं रही हैं। पारंपरिक बैंकिंग व्यवस्था, जो कभी बैंक शाखाओं और कागजी प्रक्रियाओं तक सीमित थी, आज डिजिटल बैंकिंग के रूप में विकसित होकर मोबाइल फोन, इंटरनेट और इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म के माध्यम से आम नागरिकों तक पहुँच रही है। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में डिजिटल बैंकिंग ने वित्तीय सेवाओं के लोकतंत्रीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने ग्रामीण ऋण व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए अनेक प्रयास किए। सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs), राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा कृषि ऋण योजनाओं की शुरुआत इसी दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे। इसके बावजूद ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से वंचित रहा। इस स्थिति को बदलने के लिए वित्तीय समावेशन की अवधारणा को नीति निर्माण का प्रमुख आधार बनाया गया।

वित्तीय समावेशन (Financial Inclusion) का अर्थ है समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति की परवाह किए बिना बैंकिंग, ऋण, बीमा, पेंशन एवं भुगतान जैसी वित्तीय सेवाओं तक

* एम.ए., पी–एच0 डी0, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 9472364871, E-mail id : vijayalaxmikumari15@gmail.com

सुलभ, सुरक्षित एवं किफायती पहुँच प्रदान करना। भारत में वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने हेतु प्रधानमंत्री जनधन योजना, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण, आधार आधारित भुगतान प्रणाली, भीम (BHIM) ऐप, यूनिफाइड पेमेंट इंटरफेस (UPI) तथा डिजिटल इंडिया अभियान जैसी योजनाएँ लागू की गईं।[1] इन पहलों ने ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक खातों की संख्या बढ़ाने और डिजिटल भुगतान को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

डिजिटल बैंकिंग वित्तीय समावेशन का एक प्रमुख उपकरण बनकर उभरी है। इसके माध्यम से ग्रामीण उपभोक्ता बैंक शाखा में जाए बिना धन जमा कर सकते हैं, ऋण के लिए आवेदन कर सकते हैं, सब्सिडी प्राप्त कर सकते हैं तथा विभिन्न प्रकार के वित्तीय लेन–देन कर सकते हैं। इससे बैंकिंग सेवाओं की लागत और समय दोनों में कमी आई है। साथ ही, पारदर्शिता एवं जवाबदेही में भी वृद्धि हुई है।[2]

हालाँकि डिजिटल बैंकिंग के प्रसार के बावजूद अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता का निम्न स्तर, इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या, साइबर अपराधों का खतरा तथा तकनीकी अवसंरचना की सीमाएँ वित्तीय समावेशन के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। इसके अतिरिक्त, हाल के वर्षों में डिजिटल ऋण प्लेटफॉर्मों के विस्तार ने ऋण प्राप्ति को आसान बनाया है, किन्तु कई मामलों में अत्यधिक ऋण ग्रहण करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। इस प्रकार डिजिटल बैंकिंग और ग्रामीण ऋणग्रस्तता के बीच संबंध बहुआयामी एवं जटिल है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो डिजिटल बैंकिंग केवल आर्थिक परिवर्तन का माध्यम नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण सामाजिक संरचना, शक्ति संबंधों, लैंगिक समानता तथा सामाजिक गतिशीलता को भी प्रभावित करती है। महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य वंचित समूहों की बैंकिंग प्रणाली तक पहुँच बढ़ने से सामाजिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया को भी बल मिला है।

डिजिटल बैंकिंग एवं ग्रामीण ऋणग्रस्तता

डिजिटल बैंकिंग ने ग्रामीण समाज में वित्तीय सेवाओं की उपलब्धता को सरल बनाया है। मोबाइल बैंकिंग, यूपीआई, इंटरनेट बैंकिंग एवं आधार आधारित भुगतान प्रणाली ने वित्तीय लेन–देन की लागत को कम किया है।

सकारात्मक प्रभाव

- बैंक खातों की संख्या में वृद्धि।
- प्रत्यक्ष लाभ अंतरण की पारदर्शिता।
- संस्थागत ऋण तक आसान पहुँच।
- साहूकारों पर निर्भरता में कमी।
- बचत की प्रवृत्ति में वृद्धि।
- स्वयं सहायता समूहों की वित्तीय क्षमता में विस्तार।

नकारात्मक प्रभाव

- डिजिटल अशिक्षा।
- साइबर धोखाधड़ी का जोखिम।
- डिजिटल ऋण ऐप्स द्वारा अत्यधिक ऋण ग्रहण।
- इंटरनेट एवं नेटवर्क की समस्याएँ।
- वृद्ध एवं अशिक्षित जनसंख्या का बहिष्करण।

वित्तीय समावेशन और ग्रामीण विकास : वित्तीय समावेशन केवल बैंक खाते खोलने तक सीमित नहीं है। इसका उद्देश्य वित्तीय संसाधनों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना है। ग्रामीण विकास के संदर्भ में वित्तीय समावेशन निम्नलिखित क्षेत्रों में योगदान देता है –

- कृषि निवेश में वृद्धि।
- स्वरोजगार को बढ़ावा।
- महिला सशक्तिकरण।
- गरीबी उन्मूलन।
- सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन।
- आर्थिक असमानता में कमी।

चर्चा

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि डिजिटल बैंकिंग ने ग्रामीण वित्तीय संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। जनधन योजना, यूपीआई, आधार भुगतान प्रणाली तथा मोबाइल बैंकिंग ने वित्तीय समावेशन को गति प्रदान की है। इससे ग्रामीण परिवारों की औपचारिक वित्तीय संस्थानों तक पहुँच बढ़ी है तथा साहूकारी ऋण पर निर्भरता कम हुई है। हालाँकि डिजिटल साक्षरता की कमी, तकनीकी अवसंरचना की कमजोरियाँ एवं साइबर सुरक्षा संबंधी चुनौतियाँ वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया में बाधक हैं। कई ग्रामीण क्षेत्रों में लोग डिजिटल ऋण सेवाओं की शर्तों से अनभिज्ञ रहते हैं, जिससे ऋणग्रस्तता का नया स्वरूप उभर रहा है। अतः वित्तीय समावेशन के साथ–साथ वित्तीय शिक्षा एवं उपभोक्ता संरक्षण तंत्र को भी सुदृढ़ करना आवश्यक है।

वर्तमान अध्ययन इसी संदर्भ में डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन के ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि समाजशास्त्रीय एवं विकासात्मक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ग्रामीण भारत में समावेशी विकास की संभावनाओं और चुनौतियों को समझने में सहायता प्रदान करता है।

साहित्य समीक्षा

भारत सरकार–आर्थिक सर्वेक्षण (2024) आर्थिक सर्वेक्षण में यह बताया गया है कि जनधन–आधार–मोबाइल (JAM) ने वित्तीय समावेशन को मजबूत किया है। इससे सरकारी योजनाओं के लाभ सीधे लाभार्थियों तक पहुँच रहे हैं तथा वित्तीय पारदर्शिता में वृद्धि हुई है।[3]

भारतीय रिजर्व बैंक (2024) भारतीय रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार यूपीआई आधारित लेन–देन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेखित है कि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल भुगतान की स्वीकृति बढ़ने से औपचारिक वित्तीय प्रणाली में सहभागिता बढ़ी है।[4]

पी. के. विश्वनाथन (2023) विश्वनाथन ने ग्रामीण भारत में डिजिटल वित्तीय समावेशन पर व्यापक अध्ययन किया। उनके अनुसार डिजिटल बैंकिंग ने वित्तीय पहुँच में सुधार किया है तथा अनौपचारिक ऋण स्रोतों पर निर्भरता कम की है। उन्होंने वित्तीय शिक्षा एवं डिजिटल साक्षरता को इस प्रक्रिया की सफलता का प्रमुख आधार माना।[5]

नाबार्ड (2023) नाबार्ड की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों एवं डिजिटल बैंकिंग सेवाओं के विस्तार ने वित्तीय समावेशन को गति दी है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि महिला स्वयं सहायता समूहों की बैंकिंग पहुँच बढ़ने से आर्थिक सशक्तिकरण को प्रोत्साहन मिला है।[6]

नीति आयोग (2023) नीति आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि डिजिटल वित्तीय सेवाएँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था में समावेशी विकास को बढ़ावा दे रही हैं। हालांकि डिजिटल विभाजन (Digital Divide) को समाप्त किए बिना पूर्ण वित्तीय समावेशन संभव नहीं है।[7]

राघुराम गोविंद राजन (2022) राजन ने भारत में डिजिटल वित्तीय अवसंरचना के विकास का विश्लेषण करते हुए कहा कि यूपीआई और डिजिटल भुगतान प्रणालियों ने वित्तीय समावेशन को नई दिशा प्रदान की है। उन्होंने यह भी संकेत दिया कि डिजिटल साक्षरता की कमी समावेशन की प्रक्रिया को सीमित कर सकती है।[8]

सुमित अग्रवाल एवं नेहा गुप्ता (2021) इन विद्वानों ने डिजिटल ऋण प्लेटफॉर्मों के प्रभावों का अध्ययन किया। शोध में पाया गया कि डिजिटल ऋण सेवाएँ तत्काल वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती हैं, परंतु कई मामलों में ऋण पुनर्भुगतान की कठिनाइयों के कारण ऋणभार बढ़ जाता है।[9]

संजीव कुमार (2020) संजीव कुमार के अनुसार डिजिटल बैंकिंग ने ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय पहुँच को विस्तारित किया है। उनके अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ कि प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) योजनाओं ने वित्तीय समावेशन को मजबूत किया तथा ग्रामीण परिवारों की औपचारिक बैंकिंग प्रणाली में भागीदारी बढ़ाई।[10]

रामबाबू सिंह (2019) सिंह ने बिहार राज्य में वित्तीय समावेशन की स्थिति का विश्लेषण किया। अध्ययन में यह पाया गया कि प्रधानमंत्री जनधन योजना ने बैंक खातों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि की, लेकिन सक्रिय उपयोग एवं वित्तीय साक्षरता अभी भी सीमित है।[11]

रजनी शर्मा एवं मुकेश चौधरी (2018) इन शोधकर्ताओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल बैंकिंग के प्रभावों का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि मोबाइल बैंकिंग एवं आधार आधारित भुगतान प्रणालियों ने वित्तीय लेन–देन को सरल एवं पारदर्शी बनाया है। हालांकि डिजिटल साक्षरता की कमी एक प्रमुख चुनौती के रूप में सामने आई।[12]

चक्रवर्ती रंगराजन (2017) रंगराजन ने वित्तीय समावेशन को आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय का आधार माना। उनके अनुसार डिजिटल बैंकिंग के माध्यम से वित्तीय सेवाओं को दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचाया जा सकता है, जिससे आर्थिक असमानताओं को कम किया जा सकता है।[13]

रॉबिन बर्गेस एवं रोहिणी पांडे (2015) बर्गेस एवं पांडे ने भारत में ग्रामीण बैंकिंग विस्तार के प्रभावों का अध्ययन किया। उनके शोध में यह निष्कर्ष निकला कि बैंक शाखाओं के विस्तार से ग्रामीण गरीबी में कमी आई तथा कृषि निवेश में वृद्धि हुई। उन्होंने पाया कि संस्थागत ऋण की उपलब्धता ने महाजनी प्रथा की निर्भरता को कम किया।[14]

मोहम्मद यूनुस (2010) यूनुस ने सूक्ष्म वित्त (Microfinance) को ग्रामीण गरीबों के आर्थिक सशक्तिकरण का प्रभावी साधन बताया। उनके अध्ययन में पाया गया कि छोटे ऋणों के माध्यम से गरीब परिवार स्वरोजगार एवं आय सृजन गतिविधियों में संलग्न हो सकते हैं, जिससे ऋणग्रस्तता का बोझ कम होता है।[15]

अमर्त्य कुमार सेन (2005) सेन ने अपनी पुस्तक Development as Freedom में आर्थिक विकास को मानव स्वतंत्रता के विस्तार से जोड़ा है। उनके अनुसार वित्तीय सेवाओं तक पहुँच व्यक्ति की क्षमताओं को बढ़ाती है और सामाजिक बहिष्करण को कम करती है। सेन का मानना है कि वित्तीय समावेशन ग्रामीण निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।[16]

उपरोक्त अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन ने ग्रामीण क्षेत्रों में औपचारिक वित्तीय सेवाओं की पहुँच को बढ़ाया है तथा अनौपचारिक ऋण स्रोतों पर निर्भरता को कम किया है। हालांकि डिजिटल साक्षरता, तकनीकी अवसंरचना एवं साइबर सुरक्षा संबंधी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। अधिकांश अध्ययनों ने वित्तीय समावेशन के सकारात्मक प्रभावों पर बल दिया है, किन्तु ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर डिजिटल ऋण सेवाओं के दीर्घकालीन प्रभावों पर अपेक्षाकृत कम शोध उपलब्ध है।

उद्देश्य

1. ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल बैंकिंग के विस्तार का अध्ययन करना।
2. वित्तीय समावेशन की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना।
3. डिजिटल बैंकिंग का ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर प्रभाव ज्ञात करना।
4. औपचारिक एवं अनौपचारिक ऋण स्रोतों की भूमिका का मूल्यांकन करना।
5. ग्रामीण वित्तीय साक्षरता एवं डिजिटल जागरूकता के स्तर का अध्ययन करना।
6. वित्तीय समावेशन को प्रभावी बनाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पनाएँ

1. डिजिटल बैंकिंग के विस्तार से ग्रामीण ऋणग्रस्तता में कमी आती है।
2. वित्तीय समावेशन एवं ग्रामीण ऋणग्रस्तता के बीच नकारात्मक सम्बन्ध विद्यमान है।
3. डिजिटल वित्तीय साक्षरता का स्तर जितना अधिक होगा, ऋणग्रस्तता का जोखिम उतना कम होगा।
4. औपचारिक ऋण संस्थानों तक पहुँच बढ़ने से साहूकारी ऋण पर निर्भरता कम होती है।
5. डिजिटल ऋण सेवाओं का अनियंत्रित उपयोग ग्रामीण ऋणभार को बढ़ा सकता है।

निष्कर्ष

डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन ने ग्रामीण भारत की वित्तीय संरचना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किया है। विगत एक दशक में भारत सरकार द्वारा संचालित प्रधानमंत्री जनधन योजना, डिजिटल इंडिया अभियान, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), आधार–सक्षम भुगतान प्रणाली (EPS), यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) तथा मोबाइल बैंकिंग जैसी पहलों ने ग्रामीण जनसंख्या को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन पहलों के परिणामस्वरूप बैंकिंग सेवाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक सुलभ, पारदर्शी एवं किफायती हुई हैं।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वित्तीय समावेशन ने ग्रामीण परिवारों की औपचारिक वित्तीय संस्थानों तक पहुँच को सुदृढ़ किया है। इसके कारण साहूकारों एवं महाजनों जैसे अनौपचारिक ऋण स्रोतों पर निर्भरता में कमी आई है। डिजिटल बैंकिंग के माध्यम से ऋण आवेदन, भुगतान, बचत तथा सरकारी अनुदानों की प्राप्ति की प्रक्रिया सरल हुई है, जिससे आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि हुई है तथा वित्तीय लेन–देन की पारदर्शिता बढ़ी है। ग्रामीण ऋणग्रस्तता के संदर्भ में यह अध्ययन दर्शाता है कि डिजिटल बैंकिंग का प्रभाव द्विपक्षीय है। एक ओर, औपचारिक ऋण सुविधाओं की उपलब्धता ने उच्च ब्याज दर वाले अनौपचारिक ऋणों की आवश्यकता को कम किया है, वहीं दूसरी ओर डिजिटल ऋण प्लेटफॉर्मों एवं त्वरित ऑनलाइन ऋण

सेवाओं के बढ़ते उपयोग ने कुछ परिस्थितियों में ऋणभार को बढ़ाने का कार्य भी किया है। विशेष रूप से वित्तीय एवं डिजिटल साक्षरता के अभाव में ग्रामीण उपभोक्ता ऋण की शर्तों, ब्याज दरों तथा पुनर्भुगतान की प्रक्रियाओं को पूर्णतः समझ नहीं पाते, जिसके परिणामस्वरूप वे ऋण–जाल में फँस सकते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन ग्रामीण ऋणग्रस्तता को कम करने की दिशा में प्रभावी उपकरण सिद्ध हो सकते हैं, बशर्ते इनके साथ व्यापक वित्तीय साक्षरता, डिजिटल शिक्षा, साइबर सुरक्षा जागरूकता एवं मजबूत संस्थागत समर्थन सुनिश्चित किया जाए। केवल बैंक खाते खोलना ही वित्तीय समावेशन नहीं है, बल्कि वित्तीय सेवाओं का सुरक्षित, नियमित एवं उत्पादक उपयोग ही वास्तविक समावेशन का आधार है। यदि नीति–निर्माता, बैंकिंग संस्थाएँ तथा स्थानीय समुदाय समन्वित रूप से कार्य करें, तो डिजिटल बैंकिंग ग्रामीण ऋणग्रस्तता के दुष्चक्र को तोड़ने तथा समावेशी एवं सतत ग्रामीण विकास को सुदृढ़ करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. वित्त मंत्रालय (2024) प्रधानमंत्री जनधन योजना : वार्षिक प्रगति रिपोर्ट, नई दिल्ली, भारत सरकार।
2. यादव, अशोक कुमार (2022) ग्रामीण भारत में डिजिटल बैंकिंग का सामाजिक प्रभाव, भारतीय समाजशास्त्रीय समीक्षा, 18(1), 88–105।
3. भारत सरकार (2024) आर्थिक सर्वेक्षण 2023–24, नई दिल्ली, वित्त मंत्रालय।
4. भारतीय रिजर्व बैंक (2024) भारत में बैंकिंग की प्रगति एवं प्रवृत्तियाँ, मुंबई, भारतीय रिजर्व बैंक।
5. विश्वनाथन, पी. के. (2023) ग्रामीण भारत में डिजिटल वित्तीय समावेशन, नई दिल्ली, स्प्रिंगर इंडिया।
6. राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) (2023) ग्रामीण भारत में वित्तीय समावेशन की स्थिति रिपोर्ट मुंबई, नाबार्ड।
7. नीति आयोग (2023) डिजिटल अर्थव्यवस्था एवं वित्तीय समावेशन रिपोर्ट नई दिल्ली, भारत सरकार।
8. राजन, राघुराम गोविंद (2022) भारत में वित्तीय समावेशन की चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ, नई दिल्ली, हार्पर कॉलिन्स।
9. अग्रवाल, सुमित, एवं गुप्ता, नेहा (2021) डिजिटल वित्तीय सेवाएँ और ग्रामीण ऋण प्रबंधन, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स।
10. कुमार, संजीव (2020) प्रधानमंत्री जनधन योजना एवं वित्तीय समावेशन, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स।
11. सिंह, रामबाबू (2019) 'बिहार में वित्तीय समावेशन की स्थिति'. सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 12(4), 56–74
12. शर्मा, रजनी एवं चौधरी, मुकेश। (2018) 'डिजिटल बैंकिंग और ग्रामीण विकास' भारतीय आर्थिक समीक्षा, 53(2), 145–162।
13. रंगराजन, चक्रवर्ती, (2017) वित्तीय समावेशन और आर्थिक विकास। मुंबई, रिजर्व बैंक अध्ययन केंद्र।
14. बर्गेस, रॉबिन, एवं पांडे, रोहिणी (2015) भारत में ग्रामीण बैंकिंग विस्तार एवं गरीबी उन्मूलन, अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू, 95(3), 780–795
15. यूनुस, मोहम्मद (2010) गरीबों का बैंकर (Banker to the Poor) नई दिल्ली, पेंगुइन बुक्स इंडिया।
16. अमर्त्य सेन (2005) विकास के रूप में स्वतंत्रता (Development as Freedom) नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनैतिक चिंतन का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अस्मिता कुमारी*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन ''स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनैतिक चिंतन का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' का अध्ययन है। भारतीय राजनीतिक चिंतन की परंपरा विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध परंपराओं में से एक है। वैदिक साहित्य के उपरांत स्मृति ग्रंथों ने सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति तथा पराशर स्मृति जैसे ग्रंथों में राज्य की उत्पत्ति, राजा के कर्तव्य, न्याय व्यवस्था, दण्डनीति, कर व्यवस्था, प्रशासनिक संगठन तथा प्रजा के अधिकारों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इन ग्रंथों का उद्देश्य केवल धार्मिक नियम निर्धारित करना नहीं था, बल्कि समाज में सुशासन, न्याय एवं लोककल्याण की स्थापना करना भी था। प्रस्तुत शोध–पत्र में स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय राज्य व्यवस्था का विकास धर्म, नीति एवं लोककल्याण के समन्वित आधार पर हुआ। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्मृति ग्रंथों में निहित राजनीतिक सिद्धांत आधुनिक सुशासन, विधि के शासन तथा उत्तरदायी प्रशासन की अवधारणाओं के साथ अनेक स्तरों पर सामंजस्य स्थापित करते हैं।

विशिष्ट शब्द :स्मृति ग्रंथ, राजधर्म, दण्डनीति, राज्य व्यवस्था, भारतीय राजनीतिक चिंतन, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, न्याय व्यवस्था, लोककल्याण आदि ।

प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध सभ्यताओं में से एक है, जिसकी राजनीतिक, सामाजिक एवं दार्शनिक परंपराएँ अत्यंत विकसित एवं व्यवस्थित रही हैं। भारतीय राजनीतिक चिंतन का विकास केवल सत्ता प्राप्ति या शासन संचालन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसका मूल उद्देश्य धर्म, न्याय, नैतिकता एवं लोककल्याण पर आधारित आदर्श सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना था। भारतीय परंपरा में राजनीति को धर्म से पृथक विषय नहीं माना गया, बल्कि उसे धर्म का व्यावहारिक स्वरूप स्वीकार किया गया है। इसी कारण प्राचीन भारतीय साहित्य में राज्य, शासन, न्याय, दण्ड, प्रशासन एवं शासक के कर्तव्यों का विस्तृत एवं व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य के पश्चात स्मृति ग्रंथ भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में विकसित हुए। 'स्मृति' शब्द संस्कृत धातु 'स्मृ' से बना है, जिसका अर्थ है – स्मरण करना। स्मृतियाँ उन विधानों एवं सिद्धांतों का संकलन हैं जिन्हें प्राचीन ऋषियों एवं धर्मशास्त्रकारों ने समाज के संचालन हेतु व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इन ग्रंथों में धार्मिक आचार–विचार के साथ–साथ राज्य व्यवस्था, न्याय प्रणाली, कर व्यवस्था, प्रशासनिक संगठन, राजधर्म, दण्डनीति तथा प्रजा के अधिकार एवं कर्तव्यों का भी विस्तृत विवेचन मिलता है।

मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति, कात्यायन स्मृति तथा पराशर स्मृति जैसे प्रमुख स्मृति ग्रंथ भारतीय राजनीतिक चिंतन के महत्वपूर्ण आधार हैं। इन ग्रंथों में राज्य को समाज की सुरक्षा एवं व्यवस्था बनाए रखने वाली संस्था के रूप में स्वीकार किया गया है। स्मृतिकारों के अनुसार जब समाज में अराजकता, अन्याय एवं हिंसा का विस्तार होने लगा, तब धर्म की रक्षा तथा प्रजा के कल्याण के लिए राज्य एवं राजा की स्थापना हुई।[1] इस प्रकार राज्य की उत्पत्ति का आधार सामाजिक अनुबंध, नैतिक दायित्व एवं लोककल्याण की भावना को माना गया।

स्मृति ग्रंथों में राजा को सर्वोच्च शासक अवश्य माना गया है, किन्तु उसे निरंकुश अधिकार प्रदान नहीं किए गए हैं। राजा धर्म, न्याय एवं शास्त्रीय मर्यादाओं के अधीन रहकर शासन करने के लिए बाध्य है। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा गया है कि राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की रक्षा, न्याय की स्थापना तथा धर्म का

* शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 7667044732, E-mail id : asmitakumari12041993@gmail.com

पालन कराना है। यदि शासक धर्म से विचलित होता है तो उसकी सत्ता वैध नहीं मानी जाती। इस प्रकार स्मृति ग्रंथों में राजनीतिक शक्ति पर नैतिक एवं विधिक नियंत्रण की अवधारणा विकसित रूप में दिखाई देती है।

स्मृति साहित्य का विकास ऐसे ऐतिहासिक काल में हुआ जब भारतीय समाज जनजातीय संगठन से विकसित होकर स्थायी राज्यों एवं साम्राज्यों की ओर अग्रसर हो रहा था। लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से छठी शताब्दी ईस्वी के मध्य भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन हुए। महाजनपदों का उदय, मौर्य साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था, उत्तर–मौर्य कालीन पुनर्गठन तथा गुप्तकालीन सांस्कृतिक उत्कर्ष ने राजनीतिक संस्थाओं को अधिक संगठित एवं परिपक्व बनाया। इन परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रभाव स्मृति ग्रंथों पर दिखाई देता है, जहाँ शासन, न्याय एवं प्रशासन से संबंधित सिद्धांत अधिक व्यवस्थित एवं व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक चिंतन का मूल आधार ष्राजधर्मष् है। राजधर्म केवल राजा के व्यक्तिगत आचरण तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण शासन व्यवस्था की नैतिक एवं विधिक संरचना का आधार है। राजधर्म के अंतर्गत राजा को निष्पक्ष न्यायाधीश, प्रजा का संरक्षक, कर व्यवस्था का नियामक, अपराधों का दमनकर्ता तथा सामाजिक संतुलन का रक्षक माना गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति एवं नारद स्मृति में न्यायिक प्रक्रिया, साक्ष्य, गवाह, न्यायालयों की संरचना तथा विधिक सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में विधि–आधारित शासन व्यवस्था की सुदृढ़ परंपरा विद्यमान थी।

स्मृति ग्रंथों की राजनीतिक अवधारणाएँ केवल सैद्धांतिक नहीं थीं, बल्कि उनका उद्देश्य व्यवहारिक शासन व्यवस्था को दिशा प्रदान करना था। कर संग्रह, मंत्रिपरिषद् की नियुक्ति, सैन्य संगठन, ग्राम प्रशासन, दण्ड व्यवस्था तथा लोककल्याणकारी योजनाओं के संबंध में जो निर्देश स्मृतियों में दिए गए हैं, वे उस समय की उन्नत प्रशासनिक सोच को प्रतिबिंबित करते हैं। विशेष रूप से दण्डनीति को सामाजिक अनुशासन एवं न्याय स्थापना का अनिवार्य साधन माना गया है।[2] स्मृतिकारों का मत है कि दण्ड के अभाव में समाज में अराजकता उत्पन्न हो जाएगी और धर्म का लोप हो जाएगा।

समकालीन संदर्भ में भी स्मृति ग्रंथों का राजनीतिक चिंतन अत्यंत प्रासंगिक है। विधि का शासन, उत्तरदायी प्रशासन, नैतिक नेतृत्व, न्यायिक निष्पक्षता, सुशासन तथा लोककल्याणकारी राज्य जैसी आधुनिक अवधारणाओं का आधार स्मृति साहित्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है। यद्यपि स्मृति ग्रंथ अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों एवं वर्णाश्रम व्यवस्था से प्रभावित थे, तथापि उनमें निहित प्रशासनिक एवं राजनीतिक सिद्धांत आज भी शासन व्यवस्था के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

स्मृति ग्रंथों में राजनीतिक चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- **वैदिक परंपरा का प्रभाव :** स्मृति ग्रंथों का आधार वैदिक साहित्य है। ऋग्वेद में सभा, समिति एवं जनसत्ता के संकेत मिलते हैं। उत्तर वैदिक काल में राज्य संस्थाओं का विकास हुआ तथा राजा की भूमिका अधिक संगठित हुई।
- **महाजनपद काल :** महाजनपदों के उदय के साथ प्रशासनिक व्यवस्था जटिल हुई। इस समय शासन संचालन हेतु स्पष्ट नियमों की आवश्यकता हुई, जिसका परिणाम स्मृति साहित्य के रूप में सामने आया।
- **मौर्य एवं उत्तर–मौर्य काल :** मौर्य शासन की प्रशासनिक परंपराओं ने स्मृतिकारों को प्रभावित किया। इस काल में राजस्व, न्याय, दण्ड एवं प्रशासनिक संरचना अधिक विकसित हुई।
- **गुप्तकालीन प्रभाव :** गुप्तकाल में धर्मशास्त्रों का पुनर्संयोजन हुआ। मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति को व्यापक सामाजिक एवं राजनीतिक मान्यता प्राप्त हुई।

राज्य की अवधारणा : स्मृतियों के अनुसार राज्य अराजकता की समाप्ति के लिए स्थापित संस्था है। मनुस्मृति के अनुसार जब समाज में अन्याय बढ़ा तब लोगों की रक्षा हेतु राजा की स्थापना की गई।

राज्य के प्रमुख अंग : राजा, मंत्री, कोष, सेना, दुर्ग, मित्र, प्रजा

राजधर्म की अवधारणा : राजधर्म स्मृति ग्रंथों का केंद्रीय विषय है। राजा का प्रमुख कर्तव्य – धर्म की रक्षा, न्याय प्रदान करना, प्रजा का पालन, कर व्यवस्था का संचालन, अपराधों का दमन, आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा देना, राजा स्वयं धर्म के अधीन माना गया है।

दण्डनीति एवं न्याय व्यवस्था : स्मृतियों में दण्ड को समाज व्यवस्था बनाए रखने का आवश्यक साधन माना गया है।
दण्ड के उद्देश्य – अपराध की रोकथाम, सामाजिक अनुशासन, न्याय की स्थापना
धर्म की रक्षा, याज्ञवल्क्य स्मृति में न्यायालय, साक्ष्य, गवाह एवं निर्णय प्रक्रिया का व्यवस्थित वर्णन मिलता है।
प्रशासनिक व्यवस्था : स्मृति ग्रंथों में प्रशासन को विभिन्न स्तरों पर संगठित किया गया है – मंत्री परिषद, पुरोहित, सेनापति, ग्राम अधिकारी, न्यायाधीश, कोषाध्यक्ष इन पदाधिकारियों का चयन योग्यता एवं नैतिकता के आधार पर किया जाना चाहिए।
लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा : स्मृति ग्रंथों में राज्य का उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि प्रजा का कल्याण करना है।
राज्य के प्रमुख लोककल्याणकारी कार्य – सुरक्षा प्रदान करना, न्याय व्यवस्था स्थापित करना, कृषि एवं व्यापार को प्रोत्साहन, निर्धनों एवं असहायों की सहायता
धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना ।
आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता : आज के लोकतांत्रिक शासन में भी स्मृति ग्रंथों की अनेक अवधारणाएँ उपयोगी हैं –
विधि का शासन

- उत्तरदायी प्रशासन
- नैतिक नेतृत्व
- न्यायिक निष्पक्षता
- लोककल्याणकारी राज्य
- पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व

अतः वर्तमान शोध का उद्देश्य स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का समग्र विश्लेषण करना है, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि भारतीय राजनीतिक विचारधारा का विकास किन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आधारों पर हुआ तथा इन ग्रंथों ने भारतीय राज्य व्यवस्था, न्याय प्रणाली एवं प्रशासनिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया। यह अध्ययन न केवल प्राचीन भारतीय राजनीतिक परंपरा को समझने में सहायक होगा, बल्कि आधुनिक भारतीय शासन व्यवस्था एवं राजनीतिक विमर्श के ऐतिहासिक आधारों को भी स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

साहित्य समीक्षा

उपाध्याय, बलदेव (2018) बलदेव उपाध्याय ने भारतीय संस्कृत साहित्य एवं धर्मशास्त्रीय परंपरा का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया है कि स्मृति ग्रंथ भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के प्रामाणिक स्रोत हैं। लेखक के अनुसार मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति एवं नारद स्मृति में राज्य, न्याय, दण्डनीति तथा प्रशासन के सिद्धांतों का व्यवस्थित स्वरूप मिलता है। उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया कि भारतीय राजनीतिक चिंतन धर्म एवं लोककल्याण के समन्वित सिद्धांत पर आधारित था, जिसमें राजा को राज्य का स्वामी नहीं बल्कि धर्म का संरक्षक माना गया है।[3]
शर्मा, रामशरण (2017) रामशरण शर्मा ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं का ऐतिहासिक अध्ययन करते हुए बताया कि स्मृति ग्रंथों का निर्माण बदलती हुई सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप हुआ। लेखक के अनुसार स्मृतियों में वर्णित राजधर्म, कर व्यवस्था, न्यायिक प्रणाली तथा दण्ड व्यवस्था तत्कालीन राज्य की स्थिरता एवं सामाजिक नियंत्रण के महत्वपूर्ण साधन थे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि स्मृतियों का राजनीतिक चिंतन प्रशासनिक उत्तरदायित्व एवं विधि–आधारित शासन की अवधारणा को विकसित करता है।[4]
मिश्र, उमेशचन्द्र (2014) उमेशचन्द्र मिश्र ने भारतीय दर्शन एवं धर्मशास्त्र के संदर्भ में स्मृति साहित्य का विश्लेषण करते हुए बताया कि स्मृति ग्रंथों का उद्देश्य केवल धार्मिक नियमों का निर्धारण नहीं था, बल्कि सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं को स्थायित्व प्रदान करना भी था। लेखक ने विशेष रूप से राजधर्म, न्याय व्यवस्था एवं प्रशासनिक उत्तरदायित्व को भारतीय राजनीतिक चिंतन की प्रमुख विशेषताएँ माना है।[5]
पाण्डेय, राजबली (2011) राजबली पाण्डेय ने धर्मशास्त्र एवं हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक व्यवस्था सामाजिक संतुलन एवं नैतिक शासन की

स्थापना के लिए निर्मित की गई थी। उनके अनुसार राजा की वैधता उसके धर्मपालन एवं न्यायप्रियता पर आधारित थी। लेखक ने स्मृति ग्रंथों को भारतीय विधि एवं प्रशासनिक परंपरा का मूल स्रोत माना है।[6]

घोषाल, उमेशचन्द्र (2008) उमेशचन्द्र घोषाल ने भारतीय राजनीतिक विचारों के विकास का विश्लेषण करते हुए कहा कि स्मृति ग्रंथों में राज्य को लोककल्याणकारी संस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि राजा की शक्ति धर्म, न्याय एवं सामाजिक उत्तरदायित्व द्वारा नियंत्रित होती थी। लेखक ने स्मृति साहित्य में विधि के शासन के प्रारम्भिक स्वरूप की पहचान की है।[7]

काणे, पांडुरंग वामन (2003) पांडुरंग वामन काणे ने अपने बहुचर्चित ग्रंथ धर्मशास्त्र का इतिहास में स्मृति साहित्य का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार स्मृतियाँ भारतीय विधि, न्याय एवं शासन व्यवस्था के सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत हैं। उन्होंने मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित राजधर्म, दण्डनीति, कर व्यवस्था एवं न्यायिक प्रणाली का गहन विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय राजनीतिक चिंतन नैतिक शासन की अवधारणा पर आधारित था।[8]

अल्तेकर, अनंत सदाशिव (2001) अनंत सदाशिव अल्तेकर ने प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था का अध्ययन करते हुए बताया कि स्मृति ग्रंथों में राजतंत्र को लोककल्याण एवं न्याय की स्थापना का माध्यम माना गया है। उन्होंने मंत्रिपरिषद्, प्रशासनिक संगठन, न्यायालय तथा दण्ड व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया तथा निष्कर्ष निकाला कि प्राचीन भारत में शासन प्रणाली अत्यंत विकसित एवं संगठित थी।[9]

जयसवाल, काशी प्रसाद (1998) काशी प्रसाद जयसवाल ने भारतीय राजनीतिक परंपरा का ऐतिहासिक अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि प्राचीन भारतीय राजतंत्र पूर्णतः निरंकुश नहीं था। स्मृति ग्रंथों में राजा की शक्ति धर्म एवं विधि द्वारा नियंत्रित थी। लेखक ने भारतीय राज्य व्यवस्था को संवैधानिक एवं उत्तरदायी शासन प्रणाली का प्रारम्भिक स्वरूप माना है।[10]

के. पी. जायसवाल (1995) के. पी. जायसवाल ने भारतीय राजनीतिक संस्थाओं के विकास का अध्ययन करते हुए स्मृति ग्रंथों को राज्य एवं शासन व्यवस्था के प्रमुख स्रोत के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार राजधर्म, मंत्रिपरिषद्, दण्ड व्यवस्था एवं न्यायिक प्रक्रिया भारतीय राजनीतिक दर्शन की उन्नत विशेषताएँ हैं, जिन्होंने बाद की शासन प्रणालियों को भी प्रभावित किया।[11]

राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (1994) डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन के विकास का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट किया कि भारतीय राजनीतिक चिंतन धर्म, नैतिकता एवं लोकहित पर आधारित था। स्मृति ग्रंथों में राज्य को नैतिक संस्था के रूप में स्वीकार किया गया है तथा राजा को धर्मपालक एवं न्यायप्रिय शासक के रूप में परिभाषित किया गया है।[12]

अतः उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश विद्वानों ने स्मृति ग्रंथों का अध्ययन धर्मशास्त्रीय, सामाजिक अथवा विधिक दृष्टिकोण से किया है। काणे, अल्तेकर, घोषाल, जयसवाल, शर्मा तथा उपाध्याय जैसे विद्वानों ने राजधर्म, दण्डनीति एवं शासन व्यवस्था पर महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं, किन्तु 'स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' विषय पर समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है। विशेष रूप से वैदिक परंपरा से स्मृति साहित्य तक राजनीतिक अवधारणाओं के क्रमिक विकास, ऐतिहासिक परिस्थितियों के प्रभाव तथा आधुनिक राजनीतिक विमर्श में उनकी प्रासंगिकता पर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

उद्देश्य

1. स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. स्मृतियों में प्रतिपादित राज्य की उत्पत्ति एवं स्वरूप का विश्लेषण करना।
3. राजधर्म एवं दण्डनीति की अवधारणा का अध्ययन करना।
4. स्मृति ग्रंथों में वर्णित न्याय व्यवस्था एवं प्रशासनिक सिद्धांतों का मूल्यांकन करना।
5. आधुनिक राजनीतिक चिंतन में स्मृति परंपरा की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।

परिकल्पना

1. स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक चिंतन भारतीय राज्य व्यवस्था के विकास का प्रमुख आधार रहा है।
2. स्मृति ग्रंथों में राजधर्म एवं दण्डनीति का उद्देश्य लोककल्याण एवं न्याय की स्थापना था।
3. स्मृतियों में वर्णित राजनीतिक सिद्धांत आधुनिक सुशासन एवं विधि के शासन की अवधारणाओं से साम्य रखते हैं।
4. स्मृति साहित्य भारतीय राजनीतिक परंपरा के ऐतिहासिक विकास को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्मृति ग्रंथ भारतीय राजनीतिक चिंतन की एक सुव्यवस्थित एवं विकसित परंपरा के प्रतिनिधि ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों में राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति अथवा शासन संचालन का माध्यम न मानकर धर्म, न्याय, नैतिकता एवं लोककल्याण की आधारशिला के रूप में स्वीकार किया गया है। स्मृतिकारों ने राज्य को सामाजिक व्यवस्था की रक्षा करने वाली संस्था तथा राजा को धर्मपालक, न्यायप्रिय एवं प्रजावत्सल शासक के रूप में परिभाषित किया है। स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक चिंतन का ऐतिहासिक विकास वैदिक परंपरा, उत्तरवैदिक सामाजिक परिवर्तन, महाजनपदों के उदय, मौर्यकालीन प्रशासनिक संगठन तथा गुप्तकालीन सांस्कृतिक पुनर्जागरण से प्रभावित दिखाई देता है। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने भारतीय राज्य व्यवस्था को एक नैतिक एवं विधि–आधारित स्वरूप प्रदान किया। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति एवं बृहस्पति स्मृति में राजधर्म, दण्डनीति, न्यायिक प्रक्रिया, कर व्यवस्था, प्रशासनिक संगठन एवं प्रजा के अधिकारों का विस्तृत एवं व्यवस्थित विवेचन मिलता है, जो उस समय की विकसित राजनीतिक चेतना का परिचायक है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि स्मृति ग्रंथों में राजा को सर्वोच्च सत्ता का प्रतीक अवश्य माना गया है, किन्तु उसकी शक्ति धर्म एवं विधि द्वारा नियंत्रित है। राजा का प्रमुख दायित्व प्रजा की रक्षा, न्याय की स्थापना, आर्थिक समृद्धि को प्रोत्साहन तथा सामाजिक संतुलन बनाए रखना है। इस प्रकार स्मृति साहित्य में निरंकुश राजतंत्र के स्थान पर उत्तरदायी एवं नैतिक शासन व्यवस्था की अवधारणा विकसित हुई है।

साहित्य समीक्षा से यह तथ्य भी सामने आया कि अनेक विद्वानों ने स्मृति ग्रंथों का अध्ययन धर्मशास्त्रीय, सामाजिक एवं विधिक दृष्टिकोण से किया है, किन्तु राजनीतिक चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर समग्र विश्लेषण अपेक्षाकृत सीमित रहा है। प्रस्तुत अध्ययन इस शोध–अंतराल को भरने का प्रयास करता है तथा यह स्थापित करता है कि स्मृति साहित्य भारतीय राजनीतिक दर्शन के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। आधुनिक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के संदर्भ में भी स्मृति ग्रंथों की अनेक अवधारणाएँ अत्यंत प्रासंगिक हैं। सुशासन, उत्तरदायित्व, नैतिक नेतृत्व, न्यायिक निष्पक्षता, प्रशासनिक पारदर्शिता तथा लोककल्याणकारी राज्य जैसी अवधारणाओं का मूल स्वरूप स्मृति साहित्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है। यद्यपि स्मृति ग्रंथ अपने समय की सामाजिक संरचना एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रभावित थे, तथापि उनमें निहित राजनीतिक सिद्धांत आज भी भारतीय प्रशासनिक एवं राजनीतिक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्मृति ग्रंथ केवल धार्मिक एवं सामाजिक आचार–संहिताएँ नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय राजनीतिक विचारधारा, शासन व्यवस्था एवं विधिक परंपरा के ऐतिहासिक विकास को समझने के अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन ग्रंथों में निहित राजधर्म, दण्डनीति एवं लोककल्याण की अवधारणाएँ भारतीय राजनीतिक संस्कृति की मौलिक विशेषताओं को प्रतिबिंबित करती हैं तथा समकालीन राजनीतिक विमर्श में भी उनकी प्रासंगिकता बनी हुई है।

सन्दर्भ सूची

1. मनुस्मृति (सं. डॉ. सुरेन्द्र कुमार) नई दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 2017, पृ0 84
2. दूबे, राजदेव (1988) स्मृतिकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति : याज्ञवल्क्य स्मृति के विशेष संदर्भ में, दिल्ली, प्रतिभा प्रकाशन, पृ0 113
3. उपाध्याय, बलदेव (2018) संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, पृ0 49
4. शर्मा, रामशरण (2017) प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सामाजिक इतिहास, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 106
5. मिश्र, उमेशचन्द्र (2014) भारतीय दर्शन एवं धर्मशास्त्र का इतिहास, इलाहाबाद, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ0 37
6. पाण्डेय, राजबली (2011) हिन्दू धर्मकोश एवं संस्कार परम्परा, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, पृ0 124
7. घोषाल, उमेशचन्द्र (2008) हिन्दू राजनीतिक सिद्धांत का इतिहास, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 97
8. काणे, पांडुरंग वामन (2003) धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग 1–5) वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, पृ0 104
9. अल्तेकर, अनंत सदाशिव (2001) प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 59
10. जयसवाल, काशी प्रसाद, (1998) हिन्दू पॉलिटी, नई दिल्ली, बटरवर्थ एंड कंपनी, पृ0 55
11. जायसवाल, के. पी. (1995) हिन्दू राजव्यवस्था, नई दिल्ली, लॉ पब्लिशिंग हाउस, पृ0 81
12. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (1994) भारतीय दर्शन (भाग–1 एवं 2) नई दिल्ली, राजपाल एंड संस, पृ0 63

बिहार में वामपंथी उग्रवाद और राज्य क्षमताः सुरक्षा, विकास तथा शासन के अंतर्संबंधों का अध्ययन

डॉ. राजेश कुमार*

सारांश

बिहार में वामपंथी उग्रवाद का प्रश्न केवल कानून-व्यवस्था की समस्या नहीं रहा है; यह राज्य क्षमता, ग्रामीण सत्ता-संबंधों, जाति-वर्ग संरचनाओं, भूमि-संबंधी असमानताओं, विकास की असमान उपलब्धता और वैधानिक शासन की स्थानीय विश्वसनीयता से जुड़ा हुआ एक जटिल राजनीतिक प्रश्न रहा है। प्रस्तुत शोध-पत्र का केंद्रीय तर्क यह है कि बिहार में नक्सलवाद अथवा वामपंथी उग्रवाद को समझने के लिए सुरक्षा, विकास और शासन को अलग-अलग नीति-खानों में नहीं रखा जा सकता। राज्य की दमनात्मक क्षमता हिंसा को नियंत्रित कर सकती है, किंतु दीर्घकालीन शांति के लिए राज्य की अधोसंरचनात्मक क्षमता, न्यायिक पहुँच, अधिकारों की गारंटी, स्थानीय प्रशासन की निष्पक्षता और विकास-नीतियों की क्रियान्वयन क्षमता निर्णायक बनती है। बिहार के संदर्भ में यह प्रश्न और अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि मध्य और दक्षिण बिहार के अनेक इलाकों में नक्सलवादी राजनीति ने भूमि-असमानता, सामाजिक अपमान, ग्रामीण प्रभुत्व और प्रशासनिक रिक्तता से वैचारिक ऊर्जा प्राप्त की। हाल के वर्षों में हिंसा में उल्लेखनीय कमी, प्रभावित जिलों की श्रेणीगत पुनर्व्याख्या और विकासात्मक संसाधनों के विस्तार से यह संकेत मिलता है कि नीति-व्यवस्था ने सुरक्षा और विकास के संयोजन को प्राथमिकता दी है। फिर भी यह कमी अपने-आप में अंतिम समाधान नहीं मानी जा सकती; स्थायी लोकतांत्रिक स्थिरता तभी संभव है जब राज्य क्षमता केवल पुलिस बल की क्षमता न रहकर नागरिक अधिकारों, उत्तरदायी शासन और स्थानीय वैधता की क्षमता में रूपांतरित हो।

मुख्य शब्द: वामपंथी उग्रवाद, नक्सलवाद, राज्य क्षमता, बिहार, आंतरिक सुरक्षा, विकास, शासन, ग्रामीण राजनीति।

1. प्रस्तावना

वामपंथी उग्रवाद आधुनिक भारत की उन दीर्घजीवी राजनीतिक चुनौतियों में से है जिसने राज्य की वैधता, लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व और ग्रामीण सामाजिक न्याय के प्रश्नों को एक साथ सामने रखा। बिहार में इसका रूप विशेष रूप से जटिल रहा है, क्योंकि यहाँ नक्सलवादी राजनीति ने केवल वैचारिक विद्रोह के रूप में नहीं बल्कि ग्रामीण सामाजिक संरचना के अंतर्विरोधों की अभिव्यक्ति के रूप में भी आकार ग्रहण किया। दक्षिण और मध्य बिहार में भूमिहीन मजदूरों, दलित समुदायों और गरीब किसानों के अनुभवों में न्याय तक पहुँच की कमी, भूमि-संबंधों की विषमता और स्थानीय प्रभुत्वशाली समूहों की हिंसात्मक शक्ति ने एक ऐसी परिस्थिति बनाई जिसमें वैधानिक राज्य अनेक बार अनुपस्थित, पक्षपाती या अपर्याप्त प्रतीत हुआ। इसी रिक्तता में नक्सलवादी संगठनों ने वैकल्पिक न्याय, प्रतिरोध और स्थानीय सत्ता की भाषा गढ़ी।[1]

राजनीतिक विज्ञान के दृष्टिकोण से यह प्रश्न इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वामपंथी उग्रवाद राज्य-विरोधी हिंसा का मुद्दा भर नहीं है। यह उस सीमा की जाँच भी है जहाँ राज्य अपनी नागरिक-सुरक्षा, अधिकार-सुरक्षा और विकास-सुरक्षा की भूमिकाएँ निभाने में सफल या विफल होता है। राज्य क्षमता की अवधारणा सामान्यतः

* स्नातकोत्तर, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

[1] भारत सरकार, गृह मंत्रालय, “वामपंथी उग्रवाद प्रभाग: पृष्ठभूमि”; इसी संदर्भ में 2004 में पीपुल्स वार और माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर ऑफ इंडिया के विलय से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के गठन का उल्लेख किया गया है।

कर-संग्रह, प्रशासनिक नियंत्रण, कानून-प्रवर्तन और सेवा-प्रदाय से जुड़ी मानी जाती है, किंतु उग्रवाद-प्रभावित समाजों में इसका अर्थ और विस्तृत हो जाता है। यहाँ राज्य क्षमता का अर्थ नागरिकों के जीवन में राज्य की विश्वसनीय उपस्थिति, न्यूनतम न्याय की गारंटी, हिंसा के एकाधिकार की वैधता, तथा कमजोर समुदायों को बिना भय के सार्वजनिक संस्थाओं तक पहुँच दिलाने की क्षमता से है।[2]

बिहार में हाल के वर्षों में वामपंथी उग्रवाद से संबंधित हिंसात्मक घटनाओं में तीव्र कमी आई है। गृह मंत्रालय और प्रेस सूचना ब्यूरो के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार राज्य में 2021 में 20 हिंसात्मक घटनाएँ दर्ज थीं, जो 2024 में घटकर 2 और 2026 में 15 मार्च तक शून्य हो गईं। इसी अवधि में नागरिक मृत्यु भी 2021 में 7 से घटकर 2025 और 2026 में शून्य दर्ज की गई।[3] यह प्रवृत्ति महत्त्वपूर्ण है, परंतु इसे केवल सुरक्षा-कार्रवाई की उपलब्धि के रूप में पढ़ना पर्याप्त नहीं होगा। समानांतर रूप से संचार, बैंकिंग, कौशल-विकास, विशेष केंद्रीय सहायता और सार्वजनिक अवसंरचना के विस्तार ने भी राज्य की उपस्थिति को अधिक दृश्यमान बनाया है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य बिहार में वामपंथी उग्रवाद के संदर्भ में राज्य क्षमता की बहुआयामी व्याख्या करना है। इसमें तीन प्रश्न केंद्रीय हैं: पहला, बिहार में नक्सलवाद ने किन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों में राज्य की कमजोरी या वैधता-संकट को उजागर किया? दूसरा, सुरक्षा, विकास और शासन के बीच संबंध को राज्य क्षमता के विश्लेषण में कैसे समझा जा सकता है? तीसरा, हाल की नीतिगत उपलब्धियों के बावजूद कौन-सी संरचनात्मक चुनौतियाँ स्थायी शांति और लोकतांत्रिक स्थिरता के सामने बनी हुई हैं? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए यह लेख ऐतिहासिक-राजनीतिक विश्लेषण, नीतिगत दस्तावेजों और उपलब्ध आधिकारिक आंकड़ों का उपयोग करता है।

पद्धतिगत दृष्टि से यह अध्ययन गुणात्मक नीति-विश्लेषण, ऐतिहासिक-व्याख्यात्मक पद्धति और उपलब्ध आधिकारिक आंकड़ों के समेकित उपयोग पर आधारित है। लेख किसी एक जिले की सूक्ष्म क्षेत्रीय केस-स्टडी प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि बिहार को एक राजनीतिक-प्रशासनिक इकाई के रूप में लेते हुए यह देखता है कि नक्सलवाद की समस्या किस प्रकार राज्य क्षमता के बहुस्तरीय प्रश्न से जुड़ती है। आधिकारिक आंकड़े हिंसा, विकासात्मक हस्तक्षेप और प्रशासनिक पुनर्वर्गीकरण की प्रवृत्तियों को समझने के लिए उपयोग किए गए हैं; वहीं विद्वानों के अध्ययन ग्रामीण सत्ता-संबंधों, जाति-वर्ग संरचना और आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि को समझने में सहायक हैं। इस कारण लेख का उद्देश्य केवल घटनाओं की गणना करना नहीं, बल्कि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उस राजनीतिक तर्क को स्पष्ट करना है जिसके माध्यम से सुरक्षा, विकास और शासन एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

2. सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य: राज्य क्षमता की बहुआयामी अवधारणा

राज्य क्षमता पर उपलब्ध साहित्य यह संकेत देता है कि आधुनिक राज्य की शक्ति केवल बल-प्रयोग की शक्ति नहीं है। माइकल मैन ने राज्य की दो प्रकार की शक्तियों का विश्लेषण किया: दमनात्मक शक्ति और अधोसंरचनात्मक शक्ति। दमनात्मक शक्ति राज्य को आदेश देने और विरोध को नियंत्रित करने में सक्षम बनाती है, जबकि अधोसंरचनात्मक शक्ति राज्य को समाज के भीतर प्रवेश कर सार्वजनिक सेवाओं, सूचना, कानून और संस्थागत संचार को लागू करने योग्य बनाती है।[4] उग्रवाद-प्रभावित क्षेत्रों में यदि राज्य की

---

[2] जोएल एस. मिगडाल, *सशक्त समाज और कमजोर राज्य* (प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1988); माइकल मैन, "राज्य की स्वायत्त शक्ति," *यूरोपियन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी* 25, अंक 2 (1984): 185-213।

[3] भारत सरकार, प्रेस सूचना ब्यूरो, गृह मंत्रालय, "बिहार के वामपंथी उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास," 1 अप्रैल 2026, अनुलग्नक-2।

[4] माइकल मैन, "राज्य की स्वायत्त शक्ति: उद्भव, तंत्र और परिणाम," *यूरोपियन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी* 25, अंक 2 (1984): 185-213।

दमनात्मक शक्ति अपेक्षाकृत उपस्थित हो किंतु अधोसंरचनात्मक शक्ति कमजोर हो, तो हिंसा कुछ समय के लिए दब सकती है लेकिन उसके सामाजिक कारण बने रह सकते हैं।

जोएल मिगडाल की "सशक्त समाज और कमजोर राज्य" वाली अवधारणा भी बिहार के संदर्भ में उपयोगी है। जहाँ स्थानीय समाज में जाति-संघटन, निजी सेनाएँ, भूमि-प्रभुत्व और गैर-राज्य हिंसक व्यवस्थाएँ मजबूत होती हैं, वहाँ राज्य की औपचारिक संस्थाएँ केवल कागजी उपस्थिति रख सकती हैं।[5] बिहार के अनेक ग्रामीण इलाकों में राज्य की इसी सीमित उपस्थिति ने औपचारिक कानून और सामाजिक व्यवहार के बीच अंतर पैदा किया। नक्सलवादी संगठन इस अंतर को "अन्याय के विरुद्ध न्याय" की वैचारिक भाषा में रूपांतरित करने में सफल हुए, यद्यपि उनकी राजनीति भी हिंसा, वैचारिक कठोरता और लोकतांत्रिक संस्थाओं से अस्वीकार की समस्या से मुक्त नहीं रही।

राज्य क्षमता को चार आयामों में समझा जा सकता है। पहला, सुरक्षा क्षमता, जिसके माध्यम से राज्य नागरिकों के जीवन, संपत्ति और सार्वजनिक संस्थानों को हिंसक समूहों से सुरक्षित करता है। दूसरा, प्रशासनिक क्षमता, जिसके द्वारा कानून, कल्याण योजनाएँ, रिकॉर्ड-व्यवस्था, न्यायिक प्रक्रिया और स्थानीय प्रशासनिक संपर्क प्रभावी बनते हैं। तीसरा, विकासात्मक क्षमता, जो सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, संचार और आजीविका के माध्यम से नागरिक जीवन के अवसरों को विस्तृत करती है। चौथा, वैधता क्षमता, जो नागरिकों को यह विश्वास दिलाती है कि राज्य न्यायपूर्ण, निष्पक्ष और जवाबदेह है। इन चारों आयामों में असंतुलन उग्रवाद के लिए अवसर-संरचना बनाता है।

इसलिए बिहार के संदर्भ में "राज्य क्षमता" को केवल पुलिस बल, हथियार, खुफिया जानकारी या मुठभेड़-संख्या से नहीं मापा जा सकता। यदि किसी क्षेत्र में विद्यालय है लेकिन शिक्षक नहीं, सड़क है लेकिन न्यायिक पहुँच नहीं, बैंक खाता है लेकिन ऋण और बाजार तक पहुँच नहीं, पुलिस थाना है लेकिन कमजोर समुदायों को शिकायत दर्ज कराने का भरोसा नहीं, तो राज्य क्षमता अधूरी मानी जाएगी। नक्सलवाद की समस्या इस अधूरी राज्य क्षमता की राजनीतिक अभिव्यक्ति रही है।

3. बिहार में वामपंथी उग्रवाद की ऐतिहासिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि

बिहार में नक्सलवाद की ऐतिहासिक जड़ें 1967 के नक्सलबाड़ी विद्रोह की व्यापक वैचारिक विरासत से जुड़ी अवश्य हैं, परंतु राज्य में इसका ठोस सामाजिक रूप मध्य बिहार की ग्रामीण सत्ता-संरचनाओं के भीतर विकसित हुआ। भोजपुर, गया, औरंगाबाद, जहानाबाद, अरवल, जमुई तथा आस-पास के इलाकों में भूमिहीनता, बटाई, मजदूरी, जातिगत अपमान और स्थानीय प्रभुत्व की संरचनाओं ने उग्र राजनीति को सामाजिक आधार दिया। बेला भाटिया ने मध्य बिहार के नक्सलवादी आंदोलन पर अपने अध्ययन में दिखाया कि यह आंदोलन केवल बाहरी वैचारिक आयात नहीं था, बल्कि ग्रामीण समाज में सम्मान, मजदूरी, जमीन और न्याय की माँगों से गहराई से जुड़ा था।[6]

बिहार में नक्सलवादी राजनीति के विकास को जाति और वर्ग की संयुक्त संरचना से अलग करके नहीं समझा जा सकता। भूमिहीन दलित और पिछड़े समुदायों के बीच संगठनात्मक लामबंदी ने नक्सलवादी संगठनों को सामाजिक आधार दिया, जबकि प्रभुत्वशाली जाति-समूहों और निजी सेनाओं की प्रतिहिंसा ने हिंसा को चक्राकार बनाया। इस स्थिति में राज्य का दायित्व दोनों पक्षों के बीच तटस्थ मध्यस्थता का था, किंतु अनेक

---

[5] जोएल एस. मिगडाल, *सशक्त समाज और कमजोर राज्य: तीसरी दुनिया में राज्य-समाज संबंध और राज्य क्षमताएँ* (प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1988)।

[6] बेला भाटिया, "मध्य बिहार में नक्सलवादी आंदोलन," *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* 40, अंक 15 (2005): 1536-1549।

चरणों में प्रशासनिक निष्क्रियता, पक्षपात या अपर्याप्तता ने राज्य की वैधता को चुनौती दी। जब कमजोर समूहों को यह अनुभव हुआ कि औपचारिक न्याय-व्यवस्था अत्यधिक धीमी या अप्राप्य है, तब वैकल्पिक न्याय की उग्रवादी भाषा आकर्षक बनी।

जॉर्ज कुन्नाथ के ग्रामीण बिहार पर आधारित अध्ययन से भी यह स्पष्ट होता है कि नक्सलवादी लामबंदी को केवल "आतंक" या "भ्रम" कहकर नहीं समझा जा सकता। इसमें सहभागी व्यक्तियों ने अपने अनुभवों को सामाजिक अपमान, वर्गीय शोषण और राजनीतिक अदृश्यता से जोड़ा।[7] यह बात राज्य क्षमता के विश्लेषण के लिए निर्णायक है, क्योंकि जब राज्य नागरिकों को समानता, सुरक्षा और गरिमा का अनुभव नहीं दिला पाता, तब उसके विरुद्ध वैकल्पिक वैधताओं का निर्माण संभव हो जाता है।

फिर भी नक्सलवादी आंदोलन की आलोचना भी उतनी ही आवश्यक है। उसकी हिंसात्मक रणनीति, लोकतांत्रिक संस्थाओं की अस्वीकृति, स्थानीय जनता पर दबाव, विकासात्मक कार्यों में बाधा और असहमति के प्रति कठोरता ने उस नैतिक वैधता को सीमित किया जिसके आधार पर वह उत्पीड़ित समुदायों की मुक्ति का दावा करता था। अतः बिहार का अनुभव दोहरी सीख देता है: राज्य की विफलताएँ उग्रवाद को जन्म देती हैं, परंतु उग्रवादी हिंसा स्वयं नागरिक जीवन, लोकतांत्रिक राजनीति और स्थानीय विकास को बाधित करती है।

4. सुरक्षा क्षमता: हिंसा-नियंत्रण और वैध बल-एकाधिकार

किसी भी लोकतांत्रिक राज्य के लिए हिंसा का वैध नियंत्रण अनिवार्य है। वामपंथी उग्रवाद के संदर्भ में सुरक्षा क्षमता का अर्थ केवल अभियानों की तीव्रता नहीं है, बल्कि खुफिया समन्वय, पुलिस-आधुनिकीकरण, स्थानीय भर्ती, सड़क और संचार की उपलब्धता, न्यायिक अनुवर्ती प्रक्रिया, तथा नागरिकों के साथ पुलिस की विश्वसनीयता से है। बिहार में जब नक्सलवादी हिंसा चरम पर थी, तब राज्य की चुनौती दोहरी थी: एक ओर उग्रवादी संगठन पुलिस, जनप्रतिनिधियों और स्थानीय संस्थानों को लक्ष्य बना रहे थे; दूसरी ओर ग्रामीण समाज में जातीय-सामंती हिंसा के प्रति राज्य की तटस्थता पर प्रश्न उठ रहे थे।

गृह मंत्रालय की नीति-व्यवस्था में वामपंथी उग्रवाद को आंतरिक सुरक्षा की गंभीर चुनौती माना गया है, किंतु 2015 की राष्ट्रीय नीति और कार्य-योजना ने इसे समग्र रूप से संबोधित करने की बात कही: सुरक्षा उपाय, विकासात्मक हस्तक्षेप, स्थानीय समुदायों के अधिकार और प्रशासनिक सुधार।[8] यह नीति-भाषा स्वीकार करती है कि सुरक्षा का प्रश्न विकास और शासन से पृथक नहीं है। बिहार में हिंसा की कमी इसी व्यापक नीति-परिवर्तन की पृष्ठभूमि में समझी जानी चाहिए।

नीचे प्रस्तुत आंकड़े बिहार में हिंसात्मक घटनाओं की गिरावट को दिखाते हैं। ये आंकड़े यह नहीं बताते कि समस्या का सामाजिक आधार पूर्णतः समाप्त हो गया, लेकिन यह अवश्य बताते हैं कि संगठित हिंसा की क्षमता और भौगोलिक सक्रियता में उल्लेखनीय संकुचन आया है।

वर्षवार संकेतों को संक्षेप में इस प्रकार पढ़ा जा सकता है: 2021 में 20 घटनाएँ, 7 नागरिक मृत्यु और 6 उग्रवादी मृत्यु दर्ज थीं; 2022 में घटनाएँ 11 पर आ गईं; 2023 में 4 घटनाएँ रहीं और मृत्यु शून्य दर्ज हुई; 2024 में 2 घटनाएँ और 1 नागरिक मृत्यु दर्ज हुई; 2025 में 3 घटनाएँ और 1 उग्रवादी मृत्यु दर्ज हुई; तथा 2026 में 15 मार्च तक कोई घटना या मृत्यु दर्ज नहीं हुई। इस क्रमिक संकुचन से स्पष्ट है कि हिंसात्मक क्षमता, स्थानीय भय और संगठनात्मक गतिशीलता तीनों में कमी आई। फिर भी इन आंकड़ों को क्षेत्रीय समाज

[7] जॉर्ज जे. कुन्नाथ, "ग्रामीण बिहार में नक्सलवादी बनना: वर्ग-संघर्ष और उसके अंतर्विरोध," *जर्नल ऑफ पीज़ेंट स्टडीज़* 33, अंक 1 (2006): 89-123।

[8] भारत सरकार, प्रेस सूचना ब्यूरो, "वामपंथी उग्रवाद के विरुद्ध भारत की निर्णायक लड़ाई," 2025; भारत सरकार, गृह मंत्रालय, "राष्ट्रीय नीति और कार्य-योजना, 2015" पर आधिकारिक विवरण।

की संपूर्ण स्थिति का पर्याय नहीं माना जा सकता, क्योंकि हिंसा की अनुपस्थिति सामाजिक न्याय, प्रशासनिक पहुँच और नागरिक विश्वास की स्वतः गारंटी नहीं देती।

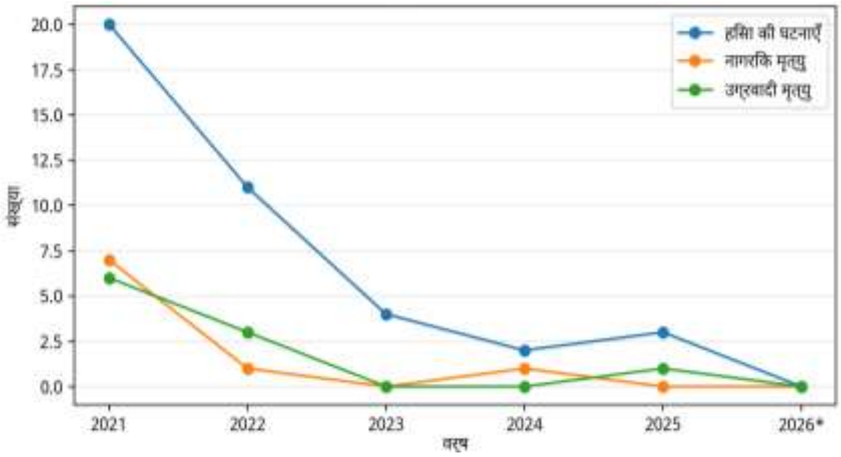

चित्र 1. बिहार में वामपंथी उग्रवाद से संबंधित हिंसा और मृत्यु, 2021-2026।

हिंसा-नियंत्रण की इस प्रवृत्ति को राज्य क्षमता की सफलता कहा जा सकता है, परंतु इसका राजनीतिक अर्थ सावधानी से समझा जाना चाहिए। एक लोकतांत्रिक राज्य के लिए सुरक्षा क्षमता तभी वैध बनती है जब वह कानून के शासन के भीतर संचालित हो, नागरिक अधिकारों का सम्मान करे और निर्दोष नागरिकों को दंडात्मक संदेह की स्थायी अवस्था में न रखे। यदि सुरक्षा-नीति नागरिकों को केवल "संदिग्ध आबादी" के रूप में देखती है, तो वह अल्पकालिक नियंत्रण के बावजूद दीर्घकालीन अविश्वास पैदा कर सकती है। अतः सुरक्षा क्षमता का मानक केवल घटनाओं की संख्या में कमी नहीं, बल्कि भय-मुक्त नागरिक जीवन की स्थापना है।

5. विकासात्मक क्षमता: अवसंरचना, पहुँच और अवसर

वामपंथी उग्रवाद की सामाजिक जड़ों को संबोधित करने के लिए विकासात्मक क्षमता निर्णायक है। विकास का अर्थ केवल योजनागत व्यय नहीं है; इसका अर्थ यह है कि राज्य की सेवाएँ उन स्थानों तक पहुँचें जहाँ नागरिक पहले राज्य को या तो अनुपस्थित या दमनकारी मानते थे। सड़क, मोबाइल नेटवर्क, बैंकिंग, विद्यालय, कौशल-केंद्र, स्वास्थ्य और आजीविका योजनाएँ जब प्रभावी ढंग से पहुँचती हैं, तो राज्य का "दृश्य रूप" बदलता है। वह केवल थाने और छावनी के रूप में नहीं, बल्कि अधिकार, सुविधा और अवसर के रूप में उपस्थित होता है।

बिहार के वामपंथी उग्रवाद प्रभावित अथवा पूर्व-प्रभावित क्षेत्रों में विकासात्मक हस्तक्षेपों के उपलब्ध आंकड़े इस परिवर्तन को रेखांकित करते हैं। 1 अप्रैल 2026 को जारी आधिकारिक सूचना के अनुसार बिहार में 371 नियोजित मोबाइल टॉवरों में से 366 चालू किए जा चुके थे; वामपंथी उग्रवाद प्रभावित जिलों में बैंकिंग सेवाओं वाले 264 डाकघर, 215 बैंक शाखाएँ, 26 एटीएम और 17,855 बैंकिंग संवाददाता संचालित थे; 9 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान तथा 2 एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय कार्यशील थे; और 2017 से विशेष केंद्रीय सहायता के अंतर्गत बिहार को 462.57 करोड़ रुपये जारी किए गए थे।[9]

[9] भारत सरकार, प्रेस सूचना ब्यूरो, गृह मंत्रालय, "बिहार के वामपंथी उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास," 1 अप्रैल 2026।

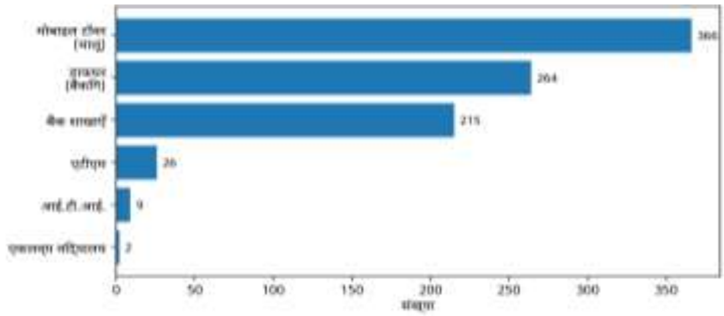

चित्र 2. बिहार के वामपंथी उग्रवाद प्रभावित/पूर्व-प्रभावित क्षेत्रों में चयनित विकासात्मक संसाधन।

ये आंकड़े संकेत करते हैं कि विकासात्मक क्षमता को सुरक्षा रणनीति का पूरक बनाया गया है। मोबाइल टॉवर केवल संचार सुविधा नहीं देते; वे प्रशासनिक सूचना, डिजिटल भुगतान, पुलिस संचार, ऑनलाइन शिक्षा, आपदा-संदेश और बाजार संपर्क को संभव बनाते हैं। बैंकिंग विस्तार केवल वित्तीय समावेशन का संकेत नहीं है; यह राज्य और नागरिक के बीच औपचारिक आर्थिक संबंध का निर्माण करता है। आई.टी.आई. और विद्यालय केवल शिक्षा-संस्थाएँ नहीं, बल्कि वैकल्पिक जीवन-पथ की संभावना हैं। इस प्रकार विकासात्मक अवसंरचना राज्य की अधोसंरचनात्मक शक्ति को बढ़ाती है।

फिर भी विकासात्मक क्षमता का मूल्यांकन केवल संख्या से नहीं हो सकता। यदि बैंक शाखा खुल गई लेकिन गरीब परिवार ऋण, बीमा या आजीविका सहायता तक नहीं पहुँच पाते; यदि मोबाइल टॉवर है लेकिन डिजिटल साक्षरता का अभाव है; यदि कौशल-केंद्र है लेकिन स्थानीय रोजगार-बाजार कमजोर है; यदि सड़क बनी लेकिन भूमि-अधिग्रहण और सामाजिक परामर्श में न्याय नहीं हुआ, तो विकासात्मक हस्तक्षेप वैधता निर्माण में सीमित रह सकते हैं। अतः विकास को नागरिक अधिकारों और स्थानीय भागीदारी से जोड़ना आवश्यक है।

6. शासन क्षमता: वैधता, न्याय और स्थानीय संस्थाएँ

वामपंथी उग्रवाद के संदर्भ में शासन क्षमता राज्य क्षमता का सबसे जटिल आयाम है। शासन क्षमता में पंचायतों की कार्यशीलता, शिकायत निवारण, पुलिस-जनसंपर्क, भूमि-रिकॉर्ड, कल्याण योजनाओं की पारदर्शिता, न्यायालयी पहुँच, स्कूल और स्वास्थ्यकर्मियों की नियमितता, तथा स्थानीय भ्रष्टाचार पर नियंत्रण शामिल हैं। बिहार के अनेक नक्सल-प्रभावित क्षेत्रों में ऐतिहासिक रूप से राज्य की उपस्थिति या तो न्यूनतम थी या प्रभावशाली स्थानीय समूहों द्वारा मध्यस्थित थी। इस मध्यस्थता ने कमजोर समूहों को प्रत्यक्ष नागरिकता के अनुभव से वंचित रखा।

नक्सलवादी राजनीति ने इसी बिंदु पर वैकल्पिक शासन की भाषा बनाई। कुछ क्षेत्रों में उन्होंने मजदूरी-वृद्धि, सामाजिक सम्मान और त्वरित न्याय के दावे किए। किंतु यह वैकल्पिक शासन लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व पर आधारित नहीं था; इसमें भय, अनुशासन और संगठनात्मक नियंत्रण शामिल था। इसलिए लोकतांत्रिक राज्य का कार्य केवल उग्रवादी संरचनाओं को हटाना नहीं, बल्कि ऐसा वैधानिक शासन स्थापित करना है जो लोगों को यह विश्वास दिलाए कि बिना हथियार, बिना मध्यस्थ और बिना भय वे न्याय पा सकते हैं।

स्थानीय वैधता के लिए पुलिस सुधार अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यदि पुलिस केवल अभियानकारी बल के रूप में दिखाई देती है, तो वह नागरिक विश्वास अर्जित नहीं कर पाती। इसके विपरीत, जब पुलिस शिकायत सुनती है, जाति और वर्ग से ऊपर उठकर कार्रवाई करती है, महिलाओं और दलितों की सुरक्षा सुनिश्चित करती है, और झूठे मामलों या अतिरेक से बचती है, तब सुरक्षा-क्षमता वैधता-क्षमता में बदलती है। इस दृष्टि से वामपंथी उग्रवाद से निपटना पुलिस और प्रशासन दोनों के व्यवहारगत लोकतंत्रीकरण की माँग करता है।[10]

---

[10] के. एस. सुब्रमण्यन, *भारत में राजनीतिक हिंसा और पुलिस* (नई दिल्ली: सेज, 2007)।

7. सुरक्षा, विकास और शासन का अंतर्संबंध

बिहार का अनुभव बताता है कि सुरक्षा, विकास और शासन को क्रमिक अथवा प्रतिस्पर्धी नीति-विकल्पों के रूप में नहीं देखा जा सकता। सुरक्षा के बिना विकासात्मक योजनाएँ हिंसात्मक अवरोधों से प्रभावित होती हैं; विकास के बिना सुरक्षा अभियानों की वैधता कमजोर होती है; और शासन-सुधार के बिना सुरक्षा और विकास दोनों स्थानीय स्तर पर भ्रष्टाचार, भय या असमानता में फँस सकते हैं। इसलिए सफल नीति वही है जो इन तीनों आयामों को एकीकृत करे।

इस अंतर्संबंध को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है। पहला, भौतिक स्तर: सड़क, टॉवर, बैंकिंग और प्रशासनिक भवन सुरक्षा बलों की गतिशीलता तथा नागरिक सेवाओं दोनों को बेहतर बनाते हैं। दूसरा, संस्थागत स्तर: पंचायत, थाना, विद्यालय और बैंक राज्य की बहु-आयामी उपस्थिति के बिंदु हैं। तीसरा, वैधता स्तर: नागरिक जब राज्य को केवल दमनकारी शक्ति नहीं बल्कि सेवा और न्याय के स्रोत के रूप में अनुभव करते हैं, तब उग्रवादी संगठनों की वैचारिक अपील कमजोर होती है।

इसीलिए वामपंथी उग्रवाद से संबंधित नीति में "विकास बनाम सुरक्षा" की द्वंद्वात्मक भाषा सीमित है। वास्तविक प्रश्न यह नहीं है कि पहले सुरक्षा या पहले विकास; वास्तविक प्रश्न यह है कि सुरक्षा को कितनी संवैधानिक, जवाबदेह और नागरिक-केंद्रित बनाया जाए, तथा विकास को कितनी सहभागी, न्यायपूर्ण और स्थानीय जरूरतों से जुड़ा बनाया जाए। शासन इसी पुल का नाम है।

8. आधिकारिक पुनर्वर्गीकरण और बिहार का वर्तमान परिदृश्य

हालिया आधिकारिक सूचनाएँ बताती हैं कि वामपंथी उग्रवाद का भौगोलिक विस्तार तीव्र रूप से संकुचित हुआ है। मार्च 2026 तक देश में वामपंथी उग्रवाद प्रभावित जिलों की संख्या 126 से घटकर 2 बताई गई थी, जबकि बिहार के औरंगाबाद, गया, जमुई और लखीसराय को "लेगेसी एंड थ्रस्ट" श्रेणी में रखा गया था। इस श्रेणी का अर्थ यह है कि जिले अब सक्रिय रूप से प्रभावित नहीं माने जाते, परंतु पुनरुत्थान रोकने और विकास-सुरक्षा उपाय जारी रखने की आवश्यकता बनी रहती है।[11] अप्रैल 2026 की गृह मंत्रालय की मासिक उपलब्धि रिपोर्ट में तो यह भी कहा गया कि 8 अप्रैल 2026 तक कोई भी जिला वामपंथी उग्रवाद से प्रभावित नहीं है और एस.आर.ई. योजना के 38 जिलों को "लेगेसी एंड थ्रस्ट" तथा "डिस्ट्रिक्ट ऑफ कंसर्न" जैसी श्रेणियों में रखा गया है।[12]

यह पुनर्वर्गीकरण नीति-गत उपलब्धि है, लेकिन इसे राजनीतिक-सामाजिक निष्कर्ष के रूप में जल्दबाजी में नहीं पढ़ना चाहिए। "प्रभावित" की प्रशासनिक श्रेणी बदलने से ऐतिहासिक असमानताएँ स्वतः समाप्त नहीं होतीं। बिहार में भूमि-संबंधी विवाद, बेरोजगारी, ग्रामीण गरीबी, सामाजिक बहिष्कार और राज्य संस्थाओं पर भरोसे की समस्या अभी भी अनेक रूपों में उपस्थित हो सकती है। इसीलिए पूर्व-प्रभावित जिलों में विकास और सुरक्षा उपायों को जारी रखना केवल प्रशासनिक सावधानी नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक स्थिरता की शर्त है।

9. आलोचनात्मक विमर्श: उपलब्धि, सीमा और जोखिम

बिहार में वामपंथी उग्रवाद की हिंसात्मक क्षमता में कमी को कम करके नहीं आँकना चाहिए। यह नागरिक सुरक्षा, निवेश, सड़क-निर्माण, विद्यालयों की कार्यशीलता, पंचायत प्रतिनिधियों की स्वतंत्रता और सामान्य जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है। परंतु उच्च-स्तरीय अकादमिक विश्लेषण का दायित्व यह भी है कि वह हिंसा-कमी को नीति की पूर्ण सफलता न मान ले। हिंसा कम हो सकती है क्योंकि संगठन कमजोर हुआ, नेतृत्व गिरफ्तार या मारा गया, स्थानीय समर्थन घटा, विकास पहुँचा, या नागरिकों ने हिंसक राजनीति से दूरी बनाई। इन सभी कारणों की प्रकृति अलग-अलग है और दीर्घकालीन स्थिरता पर उनका प्रभाव भी अलग है।

---

[11] भारत सरकार, प्रेस सूचना ब्यूरो, गृह मंत्रालय, "बिहार के वामपंथी उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास," 1 अप्रैल 2026।

[12] भारत सरकार, गृह मंत्रालय, "अप्रैल 2026 की मासिक प्रमुख उपलब्धियाँ," जून 2026, पृ. 2-3।

एक प्रमुख जोखिम यह है कि सुरक्षा उपलब्धि के बाद राज्य विकास और शासन-सुधार को कम प्राथमिकता देने लगे। उग्रवाद के कमज़ोर होने के बाद यदि राज्य की उपस्थिति फिर से केवल औपचारिक रह जाए, तो पुरानी शिकायतें नए रूपों में लौट सकती हैं। दूसरा जोखिम यह है कि पुनर्वर्गीकरण के कारण संसाधनों का प्रवाह घट जाए जबकि पूर्व-प्रभावित जिलों को अभी भी संस्थागत सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता हो। तीसरा जोखिम यह है कि स्थानीय राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, भ्रष्टाचार या जातीय तनाव विकासात्मक लाभों को असमान रूप से वितरित कर दें।

नीति-निर्माण के लिए इसलिए "सफलता के बाद की नीति" महत्त्वपूर्ण है। जब हिंसा कम हो जाती है, तब सरकारों को पुलिस-प्रधान नीति से नागरिक-प्रधान नीति की ओर अधिक स्पष्ट रूप से बढ़ना चाहिए। इसका अर्थ है: भूमि और राजस्व प्रशासन में पारदर्शिता, दलित और कमजोर समूहों की सुरक्षा, तेज़ शिकायत निवारण, स्थानीय विद्यालयों और स्वास्थ्य केंद्रों की निगरानी, युवाओं के लिए कौशल और रोजगार, तथा पंचायतों की वित्तीय और प्रशासनिक क्षमता में वृद्धि।

10. नीति-निष्कर्ष

बिहार के अनुभव से पाँच नीतिगत निष्कर्ष निकलते हैं। पहला, राज्य क्षमता को केवल सुरक्षा क्षमता के रूप में समझना गलत होगा। सुरक्षा क्षमता आवश्यक है, परंतु जब तक वह न्याय और विकास से न जुड़ी हो, उसकी वैधता सीमित रहती है। दूसरा, विकासात्मक योजनाओं को केवल व्यय या अवसंरचना के रूप में नहीं, बल्कि नागरिकता निर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखना चाहिए। बैंक शाखा, मोबाइल टॉवर और आई.टी.आई. तभी राजनीतिक रूप से अर्थपूर्ण हैं जब वे कमजोर समुदायों की वास्तविक पहुँच और अवसर बढ़ाएँ।

तीसरा, शासन-सुधार को उग्रवाद-रोधी नीति का मुख्य तत्व बनाया जाना चाहिए। स्थानीय भ्रष्टाचार, पुलिस-पक्षपात, जातिगत हिंसा और न्यायिक विलंब यदि जारी रहते हैं, तो वे उग्रवाद के वैचारिक अवशेषों को जीवित रख सकते हैं। चौथा, केंद्र और राज्य के बीच वित्तीय, खुफिया और विकासात्मक समन्वय को संवैधानिक संघवाद की भावना में चलाना चाहिए, क्योंकि पुलिस और लोक-व्यवस्था राज्य सूची के विषय हैं, लेकिन राष्ट्रीय सुरक्षा और केंद्रीय सहायता की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है।[13] पाँचवाँ, पूर्व-प्रभावित जिलों में "लेगेसी एंड थ्रस्ट" दृष्टिकोण को संसाधन-कटौती का बहाना नहीं, बल्कि स्थिरता-सुदृढ़ीकरण का अवसर माना जाना चाहिए।

11. निष्कर्ष

बिहार में वामपंथी उग्रवाद और राज्य क्षमता का संबंध भारतीय लोकतंत्र की एक गहरी चुनौती को सामने लाता है। जहाँ राज्य नागरिकों को सुरक्षा, न्याय और विकास देने में विफल होता है, वहाँ उग्रवादी राजनीति वैकल्पिक वैधता का दावा कर सकती है। किंतु जहाँ राज्य केवल बल-प्रयोग द्वारा जवाब देता है, वहाँ वह उग्रवाद की सामाजिक जड़ों को पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाता। बिहार में हाल की हिंसा-कमी, विकासात्मक हस्तक्षेप और प्रशासनिक पुनर्वर्गीकरण महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं, परंतु इनका स्थायी अर्थ तभी होगा जब राज्य की क्षमता नागरिक-केंद्रित और वैधतापूर्ण बने।

इस लेख ने तर्क दिया है कि बिहार में वामपंथी उग्रवाद का स्थायी समाधान सुरक्षा, विकास और शासन के त्रिकोणीय समन्वय में निहित है। सुरक्षा नागरिक जीवन को हिंसा से मुक्त करती है; विकास नागरिकों को अवसर देता है; और शासन नागरिकों को यह विश्वास दिलाता है कि राज्य उनका है। यदि यह त्रिकोण संतुलित रहता है, तो वामपंथी उग्रवाद की भौतिक संरचना ही नहीं, उसकी वैचारिक अपील भी कमजोर होगी। किंतु यदि इस संतुलन में कोई आयाम कमजोर पड़ता है, तो शांति प्रशासनिक उपलब्धि रह जाएगी, लोकतांत्रिक स्थिरता नहीं।

---

[13] भारत का संविधान, सातवीं अनुसूची, राज्य सूची की प्रविष्टि 1 और 2; प्रेस सूचना ब्यूरो, गृह मंत्रालय, 1 अप्रैल 2026।

समकालीन संदर्भों में कृष्णा सोबती का कथा साहित्य

चेतना सिंह*

जब हम समकालीन दौर में स्त्री लेखिकाओं व उनके स्त्री–चिंतन की बात करते हैं तो सर्वप्रथम जो नाम उभर कर आता है वह है कृष्णा सोबती का। कृष्णा सोबती समकालीन कथाकारों में एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में साहित्य में उतरती है। आपने अपने उपन्यास के माध्यम से जो साहस दिखाया है, वह कम ही स्त्री लेखिकाओं में देखने को मिलता है। कृष्णा जी स्वयं एक स्त्री होने के कारण उन्होंने स्त्री की पीड़ा को और समस्याओं को गहराई से उजागर किया है। आपके उपन्यासों में स्त्री की जो पीड़ा है वह स्वयं आपकी पीड़ा बन गई है। स्त्री की पीड़ा व मनोदशा का यथार्थ चित्रण किया है जिसके कारण उन्हें 'बोल्ड' कहा जाने लगा। वह अत्यंत संवेदनशील और स्वतंत्र विचारों वाली लेखिका हैं। आपकी कहानी व उपन्यास में भारतीय स्त्री जीवन का यथार्थ साफ देखा जा सकता है। कृष्णा जी की स्त्रियाँ समाज के घिसे–पिटे मूल्यों पर प्रश्न करती हैं वह उन मूल्यों के विरूद्ध विद्रोह करती है। कृष्णा सोबती समकालीन दौर में स्त्री–पुरुष समानता की बात करती हैं। वह कहती हैं ''भारत की नई स्त्री राष्ट्रीय जीवन में नई ऊर्जा, नए तेवर और आत्मबल से सहभागी होने की भूमिका निभाने का सपना देख रही है। साहित्य में स्त्री लेखन को लेकर अतिरिक्त विचार विमर्श–उभर रहा है। विपरीत दिशाओं में स्त्री पाठ को अरखा–परखा और जाँचा जा रहा है।''[1] समकालीन दौर में ऐसे बहुत से पुरुष रचनाकार रहे, जिन्होंने स्त्री लेखन पर तंज कसा। कृष्णा जी ने उनकी सोच पर अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त की– ''किसी भी रचनात्मक और कलात्मक कृति को प्रस्तुत करनेवाले लेखक–कलाकार में स्त्रीत्व और पुरुषत्व दोनों का मिश्रण रहता है।''[2]

कृष्णा सोबती के समकालीन कथा साहित्य में स्त्री चिंतन को तीन चरणों में देखा जा सकता है।

1. प्रथम चरण की स्त्रियाँ :–

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य की प्रथम चरण में आने वाली स्त्रियाँ किसी से संघर्ष नहीं करती हैं। वे परिवेश के सामने आत्मसमर्पण करती है। 'डार की बिछुड़ी' की पाशो ऐसी ही स्त्री है जो निरंतर पुरुषों के अत्याचारों को सहती है पर विद्रोह नहीं करती। उसकी विवशता ही स्त्री होने की विवशता है। 'तिन पहाड़' की जया अति संवेदनशील है। प्यार में धोखा उससे बर्दाश्त नहीं हो पाता वह जिन्दगी से मुक्ति आत्महत्या करके पाती है। जया के संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं– ''तिन पहाड़ अपनी कहानी का संसार यायवी है, इसकी नारी जया एक भावना का एक उच्छवास या एहसास भर है।''[3] इन सबके साथ आपने अत्यन्त सशक्त स्त्री पात्र को गढ़ा है जिन्हें आदर्श के धागों में बाँधती नहीं, अपितु यथार्थ के आधार पर स्त्री के जीवन और जिन्दगी में नवीन आशा का संचार करती हैं। कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में 'पाशो' एक मात्र ऐसी पात्र है जो जीवन भर दर–दर भटकती रहती है। अन्याय को चुपचाप सहन करना, उसका विरोध न करना, उसे अपना भाग्य मान लेना, यह सब उसके संस्कार में बँधे होने के कारण है। कृष्णा जी ने स्त्री के विविध रूपों का चित्रण किया है। जिसमें सामाजिक और पारिवारिक दोनों तरह की स्त्रियाँ अपने अलग–अलग रूपों में चित्रित है। समर्पित स्त्रियाँ सिर्फ दर्द, और पीड़ा ही सहती है। यह कह सकते हैं उस समर्पण में जो पीड़ा है वह समाज की अवधारणाओं पर टिप्पणी है।

2. दूसरे चरण की स्त्रियाँ :–

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में जो दूसरे चरण की स्त्रियाँ है वह समाज और परिवार से तालमेल बनाकर चलती है। उनका सामाजिक परिवेश से संघर्ष नही है और न ही किसी भी पुरुष से। उनका संघर्ष स्वयं के अस्तित्व को लेकर है। स्त्री को स्त्री के रूप में देखने का अधिकार माँगती है। इस क्रम में मित्रों मरजानी की 'मित्रो' और 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्ती, दिलो दानिश की 'छुन्ना' जिन्दगीनामा की महरी चाची आती है।

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को अपनी पहचान बनाना और आत्म सम्मान को बनाये रखना बहुत मुश्किल है। कृष्णा जी ने इन स्त्री चरित्रों के माध्यम से समकालीन स्त्रियों के यथार्थ और वास्तविकता का

* शोधार्थिनी, हिन्दी–विभाग, राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सम्बद्ध : वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ0प्र0।

परिचय दिया है। समाज में रत्ती जैसी अनगिनत स्त्रियाँ हैं जो बालपन में बलात्कार का शिकार हुई हैं। वह समाज के भय से चुप रहती हैं और मानसिक रूप रूग्ण बन जाती हैं। किन्तु रत्ती मानसिक रूप से रूग्ण नही है। वह स्वयं को पाना चाहती है, वह तलाश करती है अपने स्वयं को। उसके मन के किसी कोने में एक परिवार छुपा बैठा है। वह पत्नी बनना चाहती है, माँ बनना चाहती है। इन सुखद सपनों के बीच एक कड़वी सच्चाई भी है जो उसे बार–बार याद आती है– ''अपने बच्चों के लिए तुम्हें कोई और माँ ढूँढ़नी पड़ेगी। बेटे बनाने की कला तो इस औरत के पास है ही नहीं।''[4] समाज यह मानता है कि बलात्कार से स्त्री की शील भंग हो जाती है अथवा वह अपवित्र हो जाती है। कृष्णा जी ने इस समस्या को बड़े ही नैतिक मूल्यों के साथ सम्पादित किया है। वह स्वयं कहती है– 'रत्ती' पर बलात्कार की घटना उसके पूरे जीवन पर उसका क्या प्रभाव होता है। यह रत्ती का ही प्रश्न नहीं समाज की वे सभी बहू–बेटियों का प्रश्न है।''[5] उसके जीवन में आने वाले सभी पुरुष उसके शरीर को तो पाना चाहते हैं किन्तु उसके मन को छूने का कोई प्रयत्न नहीं करता। दिवाकर से रागात्मकता उसके मन की कुंठा और शरीर की उपेक्षा दोनों से मुक्त कर देती है। ''वह लड़की जो कभी लड़की नही थी। एक औरत जो कभी औरत नहीं थी।''[6] जीवन में पहली बार स्त्रीत्व को प्राप्त करती है। अपनी पहचान अपने रूप में कायम करना कृष्णा जी की स्त्री पात्रों की विशेषता है। मित्रो–मरजानी की मित्रो हिन्दी कथा साहित्य की अभूतपूर्व स्त्री पात्र है। मित्रों जैसी स्त्रियाँ समाज हमेशा से हैं, उन्हें कभी साहित्य के मुख्य केन्द्र में रख कर नहीं लिखा गया। मित्रो कोई मनोविश्लेषणात्मक या असामान्य चरित्र नही है। बल्कि वह हमारे बीच का पात्र है बस कथा जगत में कृष्णा जी ने इस तरह की स्त्रियों का प्रवेश पहली बार न सिर्फ कराया अपितु सहानुभूतिपूर्ण चित्रण भी किया। देह की जरूरत और व्यक्तिगत तोड़क 'टैबू' को कृष्णा जी ने मित्रों के माध्यम से खत्म किया। पति की अपूर्णता और अक्षमता को 'मित्रो' पति धर्म के नाम नही स्वीकार करती। पति की नपुंसकता उसके माँ बनने में बाधक बनती है। काम तृप्त करवाने के लिए वह बाहर पर पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित करने को तत्पर होती है। मित्रों स्वयं को जान कर सम्पूर्ण स्त्री बनना चाहती है। शरीर भूख के लिए मर्यादा, लज्जा का आवरण ओढ़ कर वह कुलवधू बन कर नही रहना चाहती। कृष्णा जी ने स्त्रीवाद की धारणाओं को तोड़ कर बौद्धिकता पर बल दिया है। रघुवीर सहाय मित्रों के सन्दर्भ में लिखते हैं– ''इस गृहस्थी मे पता नही कहाँ से टपक पड़ी है, उसने सब कुछ अस्त व्यस्त कर दिया है। ऐसा सजीव संदेह पात्र किसी परिवार को तोड़ देता, पति को पागल कर देता। लेकिन मित्रों को ऐसे धर्म भीरू, मध्यवर्गीय, आदर्श परिवार में डालकर कृष्णा सोबती ने बेलौस (सच्चा) टक्कर की योजना की है। यह टक्कर बहुत तेज है लेकिन खत्म नही होती।''[7]

यह कहा जा सकता है कि कृष्णा जी ने 'मित्रों' जैसी स्त्रियों पर गहरी संवेदना व्यक्त की है और सामाजिक मानदण्डों की पुर्नव्याख्या की है। आधुनिक स्त्री के परिवर्तित रूप आपके कथा संसार धीरे–धीरे उभरते हैं। परम्परागत रूढ़ियों में स्त्री को जितना दबाया और कुचला गया, समकालीन कथा साहितय में स्त्री उन्हीं वर्जनाओं को तोड़ती नजर आती है। साथ ही यही स्त्रियाँ अस्तित्व बोध और व्यैक्तिक स्वतंत्रता के लिए जाग्रत भी हुई है। कृष्णा जी ने सृजनात्मक धरातल पर स्त्री के स्वाभाविक यौन इच्छा पर जोर दिया है।

दिलो दानिश की 'छुन्ना' ऐसी स्त्री है जो विधवा हो जाने के बाद अपने भाई के साथ रहती है। वह ऐसी पात्र है जो अपनी परिस्थितियों से तंग आकर अपने आत्म सम्मान के लिए 'भुवन' से पुनर्विवाह करती है। कृष्णा जी ने महक, कुटुम्ब और छुन्ना जैसी स्त्रियाँ जो अस्तित्व की बोझिलता से ग्रस्त हैं, उनकी कैफ़ियत को प्रस्तुत किया है। कथाकार कृष्णा ने जहाँ एक ओर 21वीं सदी की ओर नये युग का सूत्रपात करती हैं वहाॅ दूसरी ओर मध्ययुगीन संस्कारों को भी स्वीकार करती हैं। विधवाओं के प्रति समाज सदा से अमानुष रहा है। छुन्ना उसे बदलना चाहती है। उसका आत्म सम्मान उसकी चेतना को हमेशा जागृत करता रहता है। वह वैधव्य को छोड़ अपना सुखद भविष्य बनाना चाहती है। वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर आर्थिक स्वावलंबी बन सुखद जीवन चाहती है। वह सफेद साड़ी पहन कर समाज और परिवार की नजरों से छुपकर जीवन नही जीना चाहती। वह समाज द्वारा निर्मित नियम कानून की गिरफ़्त से मुक्त हो, एक नये समाज की स्थापना करना चाहती है। समकालीन दौर में यह समस्या आम थी। समाज के लगभग हर घर में एक छुन्ना थी, जो अभिशप्त जीवन जीने के लिए लाचार थी। कृष्णा जी ने ऐसी स्त्री की समस्याओं पर प्रकाश डाला, जो समाज की झूठी मर्यादाओं का भोग बनती है। वह इस सन्दर्भ में कहती हैं– ''उसका प्रतिद्वंदी एक व्यक्ति न होकर, समाज है। वरन् समाज भी नहीं, समाज की चेतना को ओक्टोपसिय पंजे में जकड़ने वाली संस्कार ग्रस्तता है जो स्त्री–पुरुष को पूरक न मान स्वामी–दासी, शोषक–शोषित भोक्ता–भोग्या मानती है।''[8] इसी क्रम में 'ऐ लड़की' की चित्रा पुरुषवादी समाज में अपनी मर्जी से जीना चाहती है। इसलिए वह विवाह के बंधन में बंधना

नहीं चाहती। कृष्णा जी ने चित्रा के माध्यम से स्त्री के भीतर एक स्त्री की खोज की है। वह परम्परागत रूढ़ियों और मान्यताओं के नीचे दबी हुई स्त्री मन की समस्त वर्जनाओं को नकारती है। उनकी यह पात्र आत्मविश्वास के साथ सुखद जीवन को गढ़ने में संघर्षरत दिखाई पड़ती है। समकालीन स्त्रियों में नौकरी के कारण आत्मनिर्भरता बढ़ी है। यह स्त्रियाँ ज्यादातर अविवाहित रहना चाहती है। उनके लिए विवाह से महत्वपूर्ण अपना कैरियर है। यह स्त्रियाँ विवाह को एक समझौता या मैत्री सम्बन्ध के रूप में स्वीकार करती है। विवाह में बराबरी का सम्मान चाहती है। चित्रा कहती है– ''मैं किसी को नहीं पुकारती। जो मुझे आवाज़ देगा, मैं उसे जवाब दूँगी।''[9] कृष्णा जी ने चित्रा जैसी स्त्रियों के माध्यम से यह विचार भी प्रकट किया है कि जब बिना विवाह किए वैवाहिक जीवन का सुख भोगा जा सकता है तो विवाह के बंधन में बंधने की क्या आवश्यकता है? कृष्णा जी स्त्री की उस स्थिति का परिचय देती है। जिसमें वह स्त्री अपने पिता या पति के अधीन न रहकर अपना स्वयं का स्वतंत्र अस्तित्व बनाने की हिम्मत रखे। बदलते समय के अनुरूप अब पुरानी मान्यताएं गढ़ी जा रही है।

3. तीसरे चरण की स्त्रियाँ :–

कृष्णा सोबती के समकालीन कथा साहित्य में तीसरे चरण की स्त्रियाँ आत्मसजगता कीओर अग्रसर दिखाई पड़ती है। इस वर्ग में अम्मू, महकबानो, कुटुम्बप्यारी, आरण्या जैसी स्त्री पात्र है। स्त्री का जीवन त्याग तपस्या का है, वह घर परिवार के लिए, पति बच्चों के लिए, अपनों के लिए त्याग की मूर्ति बनी रहती है। स्त्री स्वेच्छा से अपनाएं बंधनों से मुख नही मोड़ पाती है। यह इस जाति की नियति है। किन्तु अब समय बदल रहा है और बदलते समय के साथ जीवन को देखने और जीने का नजरिया भी बदल रहा है। कृष्णा सोबती की स्त्री भावना में भी परिवर्तन आया है। वह कमजोर पडती है बिखरती भी है किन्तु हार नहीं मानती। अपने आत्मविश्वास के साहारे वह नई ऊर्जा का संचार कर आगे बढ़ती है।

'ऐ लड़की' की अम्मू सशक्त महिला है। अम्मू के विचारों में हमें प्रखर नारी चेतना दिखाई देती है। पूरी कहानी में अम्मू स्त्री के संघर्षों से चित्रा को अवगत कराती रहती है। वह कहती किसी भी स्त्री को समस्याओं से भागना या पीछा नही छुड़ाना चाहिए बल्कि उनका सामना डट कर करना चाहिए। अम्मू शरीर से भले ही अस्वस्थ है परन्तु पढ़ना–लिखना, घूमने–फिरने की शौकिन, कुछ कर दिखाने का अदम्य साहस उनमें भरपूर है। स्त्री जिन नामों के अलंकारों से जीवन जीती है वह हर मोड़ पर कुर्बानी ही देती है। इन सबसे अलग अम्मू अपना अलग अस्तित्व स्वीकार करती है। वह कहती है– ''मैं तुम सबकी माँ ज़रूर हूँ, पर अलग हूँ। मैं मैं हूँ। मैं तुम नहीं और तुम मैं नहीं।''[10] अम्मू हर अवस्था में दूसरों की भावनाओं का सम्मान करती है परन्तु 'मैं' को भी जीती हैं। कृष्णा जी की अम्मू में एक भारतीय परम्परावादी स्त्री हैं साथ ही अम्मू स्त्री स्वतंत्रता की माँग करती भी नजर आती है। कृष्णा जी स्त्री की स्थिति सुधार के संदर्भ में अम्मू के माध्यम से कहती हैं– ''उसका वक़्त कब सुधरेगा जब वह अपनी जीजिविषा आप कमाने लगेगी। सोचने की बात है– मर्द काम करता है, तो उसे इवज़ में अर्थ– धन प्राप्त होता है। औरत दिन–रात जो खटती है वह बेगार के खाते में ही न।''[11]

इसी क्रम महकबानो आती है जिसे कृष्णा जी ने स्त्री के सभी गुणों से शोभित किया है उसमें प्रेम है, स्नेह है, त्याग है, समर्पण है वह एक आदर्श नारी है किन्तु समाज उसे वकील साहब की रखैल मानता है। महकबानो वकील साहब की पत्नी से कभी बैर नहीं रखती। महकबानो के व्यक्तित्व में आत्मस्वाभिमान की झलक कई प्रसंगों में देखी जा सकती है। एक प्रसंग दृष्टव्य है– ''जरूर रखिए साहिब खानदानी कंगन ठहरा हम वकील साहब से इतना तो पूछने से रहे कि हमें भी आप क्यों देने चले आये थे। हम तो न मांगने गये थे आपसे। आपने कहा पहनिए, हमने पहन लिया। अब किसका है उसको पहुँचे तो हमें भी कलंक क्यों होने लगी।''[12] एक समय आता है जब महकबानो अपने अस्तित्व के लिए लड़ती है किन्तु स्त्री का सहजगुण उस समय भी उसमें दिखता है। समीक्षक राकेश कुमार लिखते हैं– ''उसका अपनी सत्ता के प्रति सचेतन होना ही है। महक का अपनी तय भूमिका से बाहर निकलना और उसके स्व की पुनर्रचना है... अपने कद की हो जाती है, जब वह खुद को जान लेती है।''[13]

इसी उपन्यास की दूसरी स्त्री का चरित्र भी समाज की मान्यताओं एवं परम्पराओं को मानने को तैयार नहीं। वह अपने पति पर एकाधिकार चाहती है। वह अपने पति से बदला लेना चाहती है। वह सोचती है कि यदि पति दूसरी औरत रख सकता है तो पत्नी दूसरा पुरुष क्यों नहीं रख सकती है। कुटुंब प्यारी स्त्री जीवन के इस विधान को दृढ़ता से अस्वीकार करती है। कुटुम्ब प्यारी का प्रतिरोध की भावना महक के प्रतिशोध से ज्यादा स्थूल है– ''भैरो बाबा से भभूत मंत्र लेते–लेते वे सीधे उसकी अंकशायिनी हो जाती हैं।''[14]

हम यह कह सकते हैं कि देह की भाषा से लिया गया प्रतिकार ऐसा ही होता है।

कृष्णा जी ने समकालीन दौर की समस्याओं में इस समस्या को बड़े ही मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता के पश्चात मोहभंग की स्थिति के कारण विवाह व्यवस्था का ढाँचा चरमरा–सा गया। एक समय विवाह धार्मिक संस्कार था किन्तु समय के साथ संस्कार समझौते में परिवर्तित होता गया। कृष्णा जी ने विवाह सम्बन्धी पौराणिक मूल्यों को समाप्त होते देख उसका यथार्थ चित्रण 'दिलो–दानिश' में किया है।

कृष्णा सोबती ने अपने कथा साहित्य में समकालीन समय में बदलते युग बोध की जटिल सामाजिक संरचना को बेबाकी से उकेरा है। 'समय–सरगम' की आरण्या वृद्ध होते हुए ईशान से प्रेम कर विवाह बंधन में बंधती है। दोनों वैचारिक धरातल पर एक दूसरे से भिन्न है किन्तु भावनात्मक रूप से एक हैं इस उपन्यास की स्त्री आरण्या के माध्यम से कृष्णा जी ने वृद्ध संसार के मनोविज्ञान को भली–भाँति समझकर आगामी पीढ़ी के लिए सन्देश देती है। वह यह बताती है कि जीवन निर्वाह के लिए स्त्री हो या पुरुष दोनों को एक दूसरे के साथ सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। आरण्या केवल आरण्या नही बल्कि उन समस्त आधुनिक भारतीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो पुरुष की अनुगामिनी नहीं बल्कि सहधर्मिणी बनना चाहती है। आरण्या कृष्णा जी के सभी स्त्री पात्रों में सबसे सशक्त स्त्री है। ''आरण्या पूर्णतः आधुनिक विचारों से बनी है। उसमें आत्मविश्वास की कमी नही। यह आत्मविश्वास ही उसके विकास की सीढ़ी है। आरण्या पढ़ी–लिखी आधुनिक नारी है जो अपने फैसले स्वयं करना जानती है। अच्छे–बुरे का चुनाव स्वयं करती है और अपनी जिम्मेदारी खुद उठाती है। आरण्या दूसरों पर आश्रित नहीं बल्कि स्वावलम्बी बनना चाहती है। उसमें आत्मविश्वास है कि वह अपनी जिम्मेदारी खुद उठा सकती है। वह नये प्रगतिशील विचारों को मान्य करती है। रूढ़ि परम्परा के बंधनों में वह बँधकर रहना नहीं चाहती। उम्र के अंतिम पड़ाव में भी वह अपने अधिकारों के प्रति संघर्षरत दिखाई देती है। रूढ़ि परम्परा से चले आ रहे नियमों को आँख बंद करके स्वीकारना उसके नियमों के खिलाफ है। वह अपना जीवन दर्शन ईशान के सामने व्यक्त करती रहती है।''[15]

निष्कर्षतः इस तरह से कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री स्वतंत्रत चेतना का क्रमिक विकास दिखाई देता है। आपने स्त्री को पुरानी मानसिकता या रूढ़िवादी मानसिकता से मुक्त करके समाज में उसके नवीन रूप को प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची

1. कृष्णा सोबती : शब्दों के आलोक में, पृ0 186
2. साक्षात्कार, आजकल सोबती से सुनील जोगी की बातचीत, पृ0 80
3. राजेन्द्र यादव, औरों के बहाने, पृ0 40
4. सूरजमुखी अंधेरे के, कृष्णा सोबती, पृ0 47
5. कृष्णा सोबती : व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ0 शंकर ए0 राठोड, पृ0 155
6. सूरजमुखी अंधेरे के, पृ0 9
7. कृष्णा सोबती कृत, कृतिकार और कृतित्व, पृ0 5
8. एक नजर कृष्णा सोबती पर, रोहिणी, पृ0 160
9. ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, पृ0
10. ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, पृ0 73–74
11. वही, पृ0 56
12. दिलो दानिश, कृष्णा सोबती, पृ0 115
13. राकेश कुमार, हंस, जनवरी 1995, पृ0 115
14. वही, पृ0 46
15. कृष्णा सोबती के कथात्मक साहित्य में नारी पात्र, डॉ0 आशा दत्तात्रय कांबले, पृ0 122

भारतीय समाज में आधुनिक जीवन–मूल्यों का संकट

ऋतुजा सिंह*

"साहित्य मनुष्य का ही कृतित्व है और मानवीय चेतना के बहुविध प्रयत्नों में से एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रत्युत्तर है। इसलिए हम आधुनिक साहित्य के बहुत-से पक्षों को या आयामों को केवल तभी बहुत अच्छी तरह से समझ सकते हैं जब हम उन्हें मानव मूल्यों के इस व्यापक संकट के संदर्भ में देखने की चेष्टा करें"।

- *धर्मवीर भारती*

साहित्य और समाज का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। साहित्य केवल समाज का प्रतिबिंब नहीं होता बल्कि समाज को दिशा प्रदान करने वाला माध्यम भी होता है। किसी भी युग का साहित्य उस समय की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक परिस्थितियों का दर्पण होता है। इसलिए जब समाज में परिवर्तन होता है तो उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है।

रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि **"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है।"** यह कथन स्पष्ट करता है कि साहित्य समाज की बदलती चेतना और मूल्यों का साक्ष्य होता है।

भारतीय समाज की संरचना सदियों तक परिवार, संस्कृति और नैतिक मूल्यों पर आधारित रही है। संयुक्त परिवार व्यवस्था में व्यक्ति केवल अपने लिए नहीं बल्कि पूरे परिवार और समाज के लिए उत्तरदायी माना जाता था। परिवार बच्चों को संस्कार, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व का पाठ पढ़ाता था। किंतु आधुनिकता, शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा वैश्वीकरण के प्रभाव ने जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है।

इन बदलते परिदृश्य के साथ आज व्यक्ति की प्राथमिकताएँ बदल गई हैं। सफलता का अर्थ नैतिक उत्कृष्टता नहीं बल्कि आर्थिक उपलब्धि माना जाने लगा है। व्यक्ति अपने कैरियर, प्रतिष्ठा और भौतिक सुख-सुविधाओं को सर्वोच्च महत्व देने लगा है। फलस्वरूप पारिवारिक संबंधों, सामाजिक उत्तरदायित्वों तथा मानवीय संवेदनाओं में परिवर्तन दिखाई देता है। यही परिवर्तन आधुनिक जीवन-मूल्यों के संकट का मूल कारण है।

जीवन-मूल्य वे आदर्श मान्यताएँ और सिद्धांत हैं, जो व्यक्ति के व्यवहार को दिशा प्रदान करते हैं। मूल्य व्यक्ति को यह निर्धारित करने में सहायता करते हैं कि कौन-सा कार्य उचित है और कौन-सा अनुचित हैं। भारतीय चिंतन परंपरा में जीवन-मूल्यों को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत तथा भारतीय दर्शन में मानव जीवन को नैतिक और मूल्यपरक बनाने पर विशेष बल दिया गया है।
"सत्यं वद, धर्मं चर" तथा "मातृदेवो भवः, पितृदेवो भवः" जैसे उपदेश भारतीय संस्कृति में जीवन-मूल्यों की महत्ता को स्पष्ट करते हैं।

जीवन-मूल्यों को मुख्यतः निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

नैतिक मूल्य - सत्य, ईमानदारी, न्याय।

सामाजिक मूल्य - सहयोग, सहिष्णुता, समानता।

पारिवारिक मूल्य - प्रेम, सम्मान, त्याग, उत्तरदायित्व।

आध्यात्मिक मूल्य - करुणा, आत्मसंयम, परोपकार।

राष्ट्रीय मूल्य - देशभक्ति, सामाजिक चेतना, लोकतांत्रिक दृष्टिकोण।

* शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

समाज की स्थिरता और विकास के लिए इन मूल्यों का संरक्षण आवश्यक है।

आधुनिकता और मूल्य परिवर्तन

आधुनिकता ने मानव जीवन में अनेक सकारात्मक परिवर्तन किए हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शिक्षा का प्रसार, महिला सशक्तिकरण, लोकतांत्रिक चेतना तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता आधुनिकता की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं किंतु आधुनिकता के दौर में दूसरा पक्ष यह भी है की भौतिकवाद और उपभोक्तावाद के प्रभाव से व्यक्ति की प्राथमिकताएँ समय के साथ बदल रही हैं। आज जीवन का मूल्यांकन नैतिकता की अपेक्षा आर्थिक सफलता के आधार पर किया जाने लगा है। ऐसे में महात्मा गांधी ने अपने विचार देते हुए कहा था कि-

"नैतिकता के बिना व्यापार और चरित्र के बिना ज्ञान समाज के लिए घातक है।"

वर्तमान समय में यह कथन अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। आधुनिक समाज में प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र हो गई है कि व्यक्ति अनेक बार संबंधों और संवेदनाओं की उपेक्षा करके केवल सफलता प्राप्त करने में लगा रहता है।

वैश्वीकरण और बदलते जीवन-मूल्य

वैश्वीकरण ने विश्व को एक-दूसरे के निकट ला दिया है। संचार क्रांति और इंटरनेट ने भौगोलिक दूरियों को कम किया है। रोजगार और शिक्षा के अवसरों का विस्तार हुआ है। लेकिन इसके साथ ही पारिवारिक संरचना और सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन आया है।

आज लाखों युवा शिक्षा और रोजगार के लिए महानगरों तथा विदेशों में रह रहे हैं। इससे आर्थिक उन्नति तो हुई है, किंतु पारिवारिक निकटता में कमी आई है। माता-पिता और बच्चों के बीच भावनात्मक दूरी बढ़ रही है। समकालीन जीवन की यह विडंबना है कि तकनीकी रूप से लोग पहले से अधिक जुड़े हुए हैं लेकिन भावनात्मक रूप से पहले से अधिक दूर हो गए हैं। उदाहरण के लिए अनेक वृद्ध माता-पिता अपने बच्चों के विदेश में बस जाने के कारण अकेले जीवन व्यतीत करने को विवश हैं। आर्थिक सहायता मिलने के बावजूद वे भावनात्मक सुरक्षा और आत्मीयता से वंचित रह जाते हैं। भारत में वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या इस सामाजिक परिवर्तन का स्पष्ट संकेत है। पहले वृद्ध माता-पिता परिवार का अभिन्न अंग माने जाते थे, जबकि आज अनेक स्थानों पर उन्हें बोझ समझा जाने लगा है।

पारिवारिक मूल्यों का ह्रास

पारिवारिक मूल्य समाज की आधारशिला होते हैं। परिवार ही वह संस्था है जहाँ व्यक्ति जीवन के प्रारंभिक संस्कार प्राप्त करता है। परंपरागत भारतीय परिवारों में बड़ों का सम्मान, सामूहिक निर्णय, पारस्परिक सहयोग और भावनात्मक जुड़ाव प्रमुख विशेषताएँ थीं। किंतु आधुनिक जीवन-शैली के कारण इन मूल्यों में परिवर्तन दिखाई देता है।

आज संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवारों ने ले लिया है। परिवार के सदस्य अपने-अपने कार्यों और लक्ष्यों में व्यस्त रहते हैं। परिणामस्वरूप संवाद की कमी उत्पन्न होती है और संबंध औपचारिक होते जाते हैं। पहले परिवार के सभी सदस्य एक साथ भोजन करते थे, जिससे संवाद और आत्मीयता बनी रहती थी। आज अनेक परिवारों में प्रत्येक सदस्य अपने समयानुसार भोजन करता है और मोबाइल या टेलीविजन में व्यस्त रहता है। यह स्थिति पारिवारिक मूल्यों के क्षरण का संकेत देती है।

आधुनिक जीवन-मूल्यों के संकट का सबसे स्पष्ट प्रभाव परिवार संस्था पर ही दिखाई देता है। मोहन राकेश का प्रसिद्ध नाटक आधे-अधूरे आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के विघटन का सशक्त दस्तावेज है। नाटक की नायिका सावित्री अपने पारिवारिक जीवन से संतुष्ट नहीं है। नायक महेंद्रनाथ बेरोजगारी और असफलता से ग्रस्त है। बच्चों और माता-पिता के बीच संवादहीनता की स्थिति बनी रहती है। परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में रहते हुए भी भावनात्मक रूप से एक-दूसरे से कटे हुए हैं।

नाटक यह स्पष्ट करता है कि केवल आर्थिक संसाधनों से परिवार का निर्माण नहीं होता। परिवार प्रेम, विश्वास और पारस्परिक सम्मान पर आधारित होता है। जब ये तत्व समाप्त हो जाते हैं, तब परिवार केवल एक औपचारिक संस्था बनकर रह जाता है। आधे-अधूरे आधुनिक जीवन की उस त्रासदी को सामने लाता है जिसमें व्यक्ति अपनी पूर्णता की खोज में स्वयं को और अपने संबंधों को खो देता है।

पीढ़ीगत संघर्ष

आधुनिक समाज में पीढ़ीगत संघर्ष एक महत्वपूर्ण समस्या बन चुका है। पुरानी पीढ़ी परंपराओं और संस्कारों को महत्व देती है जबकि नई पीढ़ी स्वतंत्रता और व्यक्तिगत निर्णयों को प्राथमिकता देती है।

ज्ञानरंजन की कहानी पिता में इस संघर्ष का मार्मिक चित्रण मिलता है। कहानी का पिता केवल एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक पूरी मूल्य-व्यवस्था का प्रतिनिधि है। नई पीढ़ी उससे प्रेम तो करती है किंतु उसके मूल्यों को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाती।

इसी प्रकार उषा प्रियंवदा की कहानी वापसी में गजाधर बाबू की स्थिति आधुनिक परिवार में वृद्धों की उपेक्षा को उजागर करती है। सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें अनुभव होता है कि परिवार में उनकी महत्वता कम हो गई है। ये दोनों रचनाएँ स्पष्ट करती हैं कि आधुनिक समाज में पीढ़ियों के बीच संवाद का संकट बढ़ता जा रहा है। पारिवारिक संबंध उपयोगिता पर आधारित होते जा रहे हैं।

ममता कालिया का उपन्यास दौड़ आधुनिक जीवन-मूल्यों के संकट का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण करता है। उपन्यास का पात्र सिद्धार्थ अपने कैरियर और व्यावसायिक जीवन में इतना व्यस्त है कि पिता की मृत्यु के समय भी घर नहीं पहुँच पाता। वह अपनी माँ से कहता है कि अंतिम संस्कार की व्यवस्था किसी और से करवा दी जाए।

यह प्रसंग आधुनिक जीवन की विडंबना को उजागर करता है। आर्थिक सफलता और पेशेवर उपलब्धियाँ व्यक्ति को परिवार से दूर ले जाती हैं। परिणामस्वरूप भावनात्मक संबंध कमजोर पड़ जाते हैं। लेखिका ने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ यह दिखाया है कि आधुनिकता की दौड़ में व्यक्ति अपने सबसे महत्वपूर्ण मानवीय संबंधों को खोने लगता है।

सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न

भीष्म साहनी की कहानी चीफ की दावत आधुनिक समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा की मानसिकता का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती है। कहानी में व्यक्ति अपनी सामाजिक छवि और प्रतिष्ठा को इतना महत्व देता है कि मानवीय संबंध भी उसके लिए साधन बन जाते हैं। यह प्रवृत्ति आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति की देन है, जहाँ व्यक्ति का मूल्यांकन उसके चरित्र से अधिक उसके सामाजिक दर्जे के आधार पर किया जाता है।

तकनीकी युग और मानवीय संवेदनाएँ

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने संचार को सरल बनाया है। मोबाइल, इंटरनेट और सोशल मीडिया ने मानव जीवन को अभूतपूर्व गति प्रदान की है किंतु इसके नकारात्मक प्रभाव भी सामने आए हैं। परिवार के सदस्य एक-दूसरे से बातचीत करने के बजाय मोबाइल स्क्रीन पर अधिक समय व्यतीत करते हैं। वास्तविक संवाद कम होता जा रहा है।

परिणामस्वरूप अकेलापन, अवसाद और मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। यह स्थिति मानवीय संवेदनाओं के क्षरण की ओर संकेत करती है।

जीवन-मूल्यों की पुनर्स्थापना की आवश्यकता

वर्तमान परिस्थितियों में जीवन-मूल्यों की पुनर्स्थापना अत्यंत आवश्यक है।

परिवार, शिक्षा और साहित्य इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

परिवार बच्चों में संस्कार और नैतिक चेतना का विकास कर सकता है। शिक्षा केवल रोजगार का माध्यम न होकर चरित्र निर्माण का साधन भी होना चाहिए। साहित्य समाज को आत्मचिंतन की प्रेरणा प्रदान करता है। **प्रेमचंद** का यह कथन आज भी प्रासंगिक है–

"साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, जीवन का मार्गदर्शन भी है।"

आधुनिक जीवन-मूल्यों के परिवर्तन का प्रश्न हिंदी साहित्य और सामाजिक चिंतन दोनों में लंबे समय से विमर्श का विषय रहा है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद ने सामाजिक नैतिकता, पारिवारिक संबंधों तथा मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखकर अनेक रचनाएँ लिखीं। उनके साहित्य में व्यक्ति और समाज के संबंधों का नैतिक आधार स्पष्ट दिखाई देता है। बाद के साहित्यकारों ने बदलते सामाजिक परिवेश में मूल्य-संकट को नए रूप में देखा।

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है। यह कथन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन साहित्य में भी अभिव्यक्त होता है। **हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने भारतीय संस्कृति के मूल में मानवीय संवेदना और सह-अस्तित्व की भावना को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार संस्कृति का वास्तविक विकास मनुष्य को अधिक मानवीय बनाता है।

समकालीन हिंदी साहित्य में मोहन राकेश, ममता कालिया, ज्ञानरंजन, उषा प्रियंवदा तथा भीष्म साहनी आदि ने आधुनिक जीवन की जटिलताओं, पारिवारिक विघटन और मूल्य-संकट को केंद्र में रखा। इन रचनाकारों की कृतियाँ आधुनिक समाज में व्यक्ति की मानसिकता और बदलते संबंधों को समझने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

विशेष

मोहन राकेश का आधे-अधूरे केवल एक परिवार की कहानी नहीं है बल्कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की त्रासदी का प्रतीक है। नाटक का प्रत्येक पात्र किसी न किसी प्रकार के अधूरेपन से ग्रस्त है। सावित्री आर्थिक और भावनात्मक सुरक्षा चाहती है, महेंद्रनाथ आत्मविश्वास की कमी से जूझता है और बच्चे अपने-अपने स्तर पर असंतोष का अनुभव करते हैं।

यहाँ परिवार केवल एक साथ रहने वाले व्यक्तियों का समूह बनकर रह गया है। संवाद का अभाव, आपसी अविश्वास और भावनात्मक दूरी पारिवारिक विघटन के प्रमुख कारण बनते हैं। नाटक यह स्थापित करता है कि आधुनिक जीवन की भौतिक उपलब्धियाँ पारिवारिक संतोष की गारंटी नहीं हैं।

ज्ञानरंजन की पिता और उषा प्रियंवदा की वापसी दोनों रचनाएँ पीढ़ीगत संघर्ष को अलग-अलग स्तरों पर प्रस्तुत करती हैं। पिता में संघर्ष वैचारिक है। पुरानी पीढ़ी जीवन को अनुशासन, मर्यादा और परंपरा के आधार पर देखती है जबकि नई पीढ़ी स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय को महत्व देती है।

दूसरी ओर वापसी में संघर्ष अधिक सूक्ष्म और भावनात्मक है। गजाधर बाबू का दर्द इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि परिवार में उनकी आवश्यकता समाप्त होती प्रतीत होती है। वे आर्थिक रूप से सक्रिय नहीं रहे इसलिए उनका सामाजिक और पारिवारिक महत्व भी कम हो गया है।

दोनों रचनाएँ इस प्रश्न को उठाती हैं कि क्या आधुनिक समाज में व्यक्ति का मूल्य केवल उसकी उपयोगिता से निर्धारित होगा?

ममता कालिया का दौड़ वैश्वीकरण के प्रभावों को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। सिद्धार्थ आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है जो सफलता, करियर और प्रतिस्पर्धा के दबाव में जी रहा है। पिता की मृत्यु के समय उसका उपस्थित न हो पाना केवल व्यक्तिगत असंवेदनशीलता नहीं है बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की विडंबना है, जिसमें पेशेवर दायित्व पारिवारिक दायित्वों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

यह उपन्यास प्रश्न उठाता है कि यदि विकास की कीमत मानवीय संबंधों का विघटन है, तो क्या उसे वास्तविक विकास कहा जा सकता है?

भीष्म साहनी की चीफ की दावत आधुनिक सामाजिक मानसिकता का सटीक चित्रण करती है। कहानी में सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए व्यक्ति अपने संबंधों को भी साधन बना लेता है। यह प्रवृत्ति आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में अधिक स्पष्ट दिखाई देती है, जहाँ व्यक्ति की पहचान उसके पद, वेतन और सामाजिक नेटवर्क से निर्धारित होने लगी है। मानवीय संबंधों की आत्मीयता धीरे-धीरे औपचारिकता में बदलती जा रही है।

जीवन-मूल्यों के संरक्षण में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था रोजगारपरक कौशलों पर अधिक बल देती है जबकि नैतिक और मानवीय शिक्षा अपेक्षाकृत उपेक्षित है। यदि शिक्षा का उद्देश्य केवल आर्थिक सफलता तक सीमित रह जाए, तो समाज में मूल्य-संकट और गहरा हो सकता है। इसलिए आवश्यक है कि शिक्षा में नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व, पर्यावरण चेतना तथा संवेदनशीलता को भी शामिल किया जाए।

आधुनिक जीवन-मूल्यों का परिवर्तन एक बहुआयामी सामाजिक प्रक्रिया है। आधुनिकता ने जहाँ व्यक्ति को स्वतंत्रता, अवसर और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है, वहीं उसने संबंधों, परिवार और नैतिक मूल्यों के समक्ष नई चुनौतियाँ भी खड़ी की हैं।

आधे-अधूरे, पिता, वापसी, दौड़ तथा चीफ की दावत जैसी कृतियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि आधुनिक समाज में मूल्य-संकट केवल नैतिक समस्या नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक समस्या भी है। इन रचनाओं के पात्र आधुनिक मनुष्य की विडंबना को व्यक्त करते हैं—भौतिक रूप से समृद्ध होते हुए भी भावनात्मक रूप से असुरक्षित और अकेला है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिकता को अस्वीकार किए बिना उसके साथ मानवीय मूल्यों का संतुलन स्थापित किया जाए। आर्थिक विकास, तकनीकी प्रगति और वैश्विक अवसर तभी सार्थक होंगे जब उनके साथ संवेदनशीलता, पारिवारिक आत्मीयता, सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक चेतना भी जुड़ी होगी। यही संतुलन भविष्य के स्वस्थ, मानवीय और प्रगतिशील समाज का आधार बन सकता है।

निष्कर्ष

आधुनिक जीवन-मूल्यों में परिवर्तन एक स्वाभाविक सामाजिक प्रक्रिया है किंतु जब यह परिवर्तन मानवीय संबंधों और नैतिक चेतना को कमजोर करने लगे तब यह चिंता का विषय बन जाता है। समकालीन हिंदी साहित्य ने इस संकट को गहराई से समझा और अभिव्यक्त किया है। आधे-अधूरे में पारिवारिक विघटन, पिता में पीढ़ीगत संघर्ष, वापसी में वृद्धों की उपेक्षा, दौड़ में वैश्वीकरण से उत्पन्न संबंध-संकट तथा चीफ की दावत में सामाजिक प्रतिष्ठा की मानसिकता—ये सभी आधुनिक जीवन-मूल्यों के बदलते स्वरूप को उजागर करती हैं।

अतः आवश्यक है कि आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन स्थापित किया जाए। आर्थिक विकास के साथ-साथ नैतिकता, संवेदनशीलता, पारिवारिक उत्तरदायित्व और मानवीय मूल्यों को भी समान महत्व दिया जाए। यही एक स्वस्थ, संवेदनशील और प्रगतिशील समाज के निर्माण का आधार बन सकता है। मानव जीवन मूल्यों पर आधारित होता है। मूल्य ही व्यक्ति के आचरण, व्यवहार, सामाजिक संबंधों तथा जीवन-दृष्टि को निर्धारित करते हैं। भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, करुणा, कर्तव्यपरायणता तथा पारिवारिक एकता जैसे जीवन-मूल्यों को सदैव महत्वपूर्ण माना गया है। किंतु वर्तमान समय में वैश्वीकरण, उदारीकरण, उपभोक्तावाद, तकनीकी विकास तथा तीव्र सामाजिक परिवर्तन के कारण इन मूल्यों के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन दिखाई देता है। आज व्यक्ति की पहचान उसके नैतिक चरित्र की अपेक्षा उसकी आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा भौतिक उपलब्धियों के आधार पर निर्धारित होने लगी है। परिणामस्वरूप

पारिवारिक संबंधों में आत्मीयता का स्थान औपचारिकता लेती जा रही है और मानवीय संवेदनाएँ कमजोर होती दिखाई देती हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य में सभी विधाओं ने अपने समयानुसार इसे रेखांकित करते हुए मानवीय मूल्य-संकट को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। जैसे ममता कालिया के दौड़, मोहन राकेश के आधे-अधूरे, ज्ञानरंजन की पिता, उषा प्रियंवदा की वापसी तथा भीष्म साहनी की चीफ की दावत जैसी रचनाएँ आधुनिक समाज में जीवन-मूल्यों के विघटन, पारिवारिक संकट तथा पीढ़ीगत संघर्ष का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती हैं।जिसमें आधुनिक जीवन-मूल्यों के बदलते स्वरूप तथा उनके सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : आधुनिकता, जीवन-मूल्य, पारिवारिक मूल्य, पीढ़ीगत संघर्ष, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, समकालीन हिंदी साहित्य।

संदर्भ सूची

ममता कालिया, दौड़, वाणी प्रकाशन।
मोहन राकेश,आधे-अधूरे, 1969,राधाकृष्ण प्रकाशन।
ज्ञानरंजन,पिता,1965,कहानी पत्रिका।
उषा प्रियंवदा, वापसी,1960, नयी कहानी पत्रिका।
भीष्म साहनी,चीफ की दावत,1973,पटरिया संग्रह।
रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास,1929।
हजारी प्रसाद द्विवेदी,साहित्य का मर्म,1949, लखनऊ विश्वविद्यालय।
महात्मा गांधी,हिंद स्वराज,1909,इंडियन ओपिनियन।
स्वामी विवेकानन्द, संपूर्ण विवेकानन्द साहित्य।

भारत एवं दक्षिण– पूर्व एशियाई देशों के मध्य संबंधः एक अध्ययन

डॉ. सत्य प्रकाश सिंह*
आनन्द कुमार सिंह**

सारांश –

प्रस्तुत अध्ययन में भारत एवं दक्षिण - पूर्व एशिया के देशों के मध्य संबंधों की विवेचना की गई है। इस अध्ययन में दक्षिण- पूर्वी एशियाई देशों के साथ भारत के संबंधों की प्राचीनता एवं गहराई को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन में स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार दक्षिण- पूर्व एशियाई देशों के लिए भारत महत्वपूर्ण है और ठीक उसी प्रकार भारत के लिए दक्षिण - पूर्व एशियाई देश क्या महत्व रखते हैं।

कुंजी शब्द - डिजिटल कनेक्टिविटी, लुक ईस्ट पॉलिसी, एक्ट ईस्ट पॉलिसी, हीनयान

भारत और दक्षिण- पूर्व एशियाई देशों के द्विपक्षीय संबंध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामरिक तथा राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी रहे हैं। भारत और आसियान के सदस्य देशों के बीच संबंधों की जड़ें प्राचीन काल तक फैली हुई है। जब भारतीय व्यापारियों विद्वानों और धर्म प्रचारकों ने समुद्री मार्गों के माध्यम से दक्षिण पूर्व एशिया के क्षेत्र में संपर्क स्थापित किया ।भारतीय संस्कृति धर्म भाषा कला और स्थापत्य का प्रभाव दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, विशेष कर इंडोनेशिया, थाईलैंड, कंबोडिया, वियतनाम ,मलेशिया और म्यांमार जैसे देशों में। भारतीय संस्कृति का गहरा इतिहास रहा है। बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म के प्रचार ने इन क्षेत्रों के साथ भारत के संबंधों को मजबूत बनाया और इस सांस्कृतिक निकटता ने आधुनिक काल में भी राजनीतिक और आर्थिक सहयोग के लिए मजबूत आधार प्रदान किया। औपनिवेशिक काल में भी दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में भारतीय प्रवासी समुदायों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इन देशों से सहयोग प्राप्त हुआ है, जिससे भारत और इस क्षेत्र के बीच भावनात्मक और ऐतिहासिक संबंध और भी मजबूत हुए (शेट्टी 2009 पृष्ठ 91)।

भारत और दक्षिण- पूर्व एशियाई देशों के द्विपक्षीय संबंधों में सामरिक और सुरक्षा सहयोग महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। हिंद- प्रशांत क्षेत्र में बढ़ती भू- राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और समुद्री सुरक्षा से संबंधित चुनौतियो ने भारत और दक्षिण - पूर्व एशियाई देशों के बीच रक्षा सहयोग को मजबूत किया है। भारत ने कई दक्षिण - पूर्व एशियाई देशों के साथ संयुक्त सैन्य अभ्यास , नौसैनिक सहयोग ,आतंकवाद विरोधी प्रयास और समुद्री सुरक्षा संबंधी पहल को आगे बढ़ाया, विशेष रूप से दक्षिण चीन सागर क्षेत्र में शांति और स्थिरता बनाए रखने के लिए और आसियान देशों के बीच सहयोग बढ़ा है ।भारत ने क्षेत्रीय सुरक्षा और स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए आसियान केंद्रित मंचों जैसे- ईस्ट एशिया समिट और आसियान क्षेत्रीय मंच में सक्रिय भागीदारी भी की है, जिससे भारत की क्षेत्रीय भूमिका और अधिक मजबूत हुई है। आर्थिक सहयोग के अतिरिक्त भारत और दक्षिण - पूर्व एशियाई देशों के बीच संपर्क और कनेक्टिविटी परियोजनाएं भी द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। भारत ने पूर्वोत्तर भारत को दक्षिण- पूर्व एशिया से जोड़ने के लिए विभिन्न परियोजनाएं शुरू की है, जिसमें सड़क, रेल और समुद्री संपर्क शामिल है ।भारत- म्यांमार - थाईलैंड त्रिपक्षीय राजमार्ग परियोजना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है जो क्षेत्रीय व्यापार और पर्यटन को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध हो रही है। इसके अलावा डिजिटल कनेक्टिविटी और ऊर्जा सहयोग के क्षेत्र में भी भारत और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के बीच संबंध मजबूत हुए हैं (सिंघल 1998 पृ. 155 - 157)

* प्रोफेसर – राजनीति विज्ञान विभाग, कुंवर सिंह पीजी कॉलेज, बलिया।
** शोध छात्र, जन नायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया

म्यांमार-

भारत और म्यांमार के द्विपक्षीय संबंध ऐतिहासिक सांस्कृतिक और सामरिक दृष्टिकोण से अत्यंत गहरे और बहुआयामी हैं ।म्यांमार का प्रारंभिक इतिहास दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में केंद्रीय इरावदी घाटी में पहले ज्ञात सिटी - स्टेट के उद्भव से जुड़ा हुआ है। इस सिटी - स्टेट की स्थापना दक्षिण की ओर प्रवास करके आए तिब्बती- बर्मन भाषी पियू लोगों द्वारा की गई थी। पियू संस्कृति भारतीय सभ्यता, व्यापार ,संस्कृति, शिल्प, कला और राजनीतिक संरचनाओं से गहन रूप से प्रभावित थी ।जिसका प्रभाव म्यांमार के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने पर लंबे समय तक बना रहा। (हाल, 1994 पृ. 218)

19वीं शताब्दी के दौरान म्यांमार के साम्राज्य ने ब्रिटिश साम्राज्य के साथ कई युद्धों का सामना किया ,जिसमें पहले और दूसरे एंग्लो - वर्मा युद्ध के परिणाम स्वरुप म्यांमार का अधिकांश क्षेत्र ब्रिटिश नियंत्रण में आ गया ।इस दौरान भारतीय नागरिकों सैनिकों और व्यापारियों की महत्वपूर्ण उपस्थिति म्यांमार की आर्थिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । रंगून अब (यंगून) ब्रिटिश वर्मा की राजधानी बना और यह कोलकाता तथा सिंगापुर के बीच महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र के रूप में उभरा। भारत- म्यांमार के ऐतिहासिक संबंधों की जड़े इस औपनिवेशिक अनुभव में गहराई से निहित है , जिससे दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक और आर्थिक आदान-प्रदान का एक मजबूत आधार स्थापित हुआ । 1991 के बाद भारत ने अपनी " लुक ईस्ट पॉलिसी" के माध्यम से म्यांमार के साथ संबंधों को पुनर्जीवित किया । इस नीति के तहत आर्थिक सामरिक और और संरचना सहयोग पर विशेष जोर दिया गया ।भारत ने म्यांमार के तेल और गैस परियोजनाओं में निवेश किया, साथ ही इंडो- म्यांमार- थाईलैंड त्रिपक्षी कॉरिडोर और कलादान मल्टी मॉडल परियोजना जैसी कनेक्टिविटी परियोजनाओं का विकास किया । इन प्रयासों ने भारत के पूर्वोत्तर राज्यों को दक्षिण पूर्व एशियाई बाजारों से जोड़ने में मदद की और क्षेत्रीय आर्थिक नेटवर्क को मजबूत किया ।2014 से वर्तमान तक भारत की "एक्ट ईस्ट पॉलिसी "ने भारत - म्यांमार संबंधों को बहुआयामी और रणनीतिक रूप दिया ।इस नीति के तहत दोनों देशों ने समुद्री सुरक्षा ,व्यापार, निवेश ,ऊर्जा, डिजिटल तकनीक, शिक्षा स्वास्थ्य और पर्यटन के क्षेत्र में सहयोग को तीव्र किया ।म्यांमार के साथ भारत नियमित नौसैनिक अभ्यास और समुद्री निगरानी ने बंगाल की खाड़ी और अंडमान सागर में सुरक्षा सुनिश्चित की ।ऊर्जा सहयोग के अंतर्गत भारत ने म्यांमार के तेल ,गैस और संरचना परियोजनाओं में निवेश बढ़ाया, जिससे दोनों देशों की ऊर्जा सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित हुई (लाल राइब्स एवं राय 2006 पृ. 345)।

सिंगापुर -

भारत और सिंगापुर के द्विपक्षीय संबंध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से अत्यंत गहरे और बहु आयामी हैं ।सिंगापुर का क्षेत्र प्राचीन काल में मलय सभ्यता के अंग के रूप में कई भारतीय राज्यों जैसे श्री विजय और मजाप हित के संपर्क में रहा। मलय संस्कृती में भारतीय प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है ।जिससे मलाया भाषा में भारतीय शब्दों की बड़ी संख्या प्राचीन प्रतिको और पौराणिक संस्थाओं में भारतीय तत्व शामिल हैं ।सिंगापुर शब्द स्वयं" संस्कृत "मूल का है, जिसका अर्थ "सिंह नगर" है ।प्राचीन कथाओं के अनुसार फोर्ट कैनिंग हिल का शाही और धार्मिक संगठन भारतीय धार्मिक परंपराओं, विशेष रूप से माउंट मेरु धारणा से प्रभावित था ।पुरातात्विक शोधो में हिंदू और बौद्ध धर्म से संबंधित कला कृतियों की खोज इस सांस्कृतिक जुड़ाव की पुष्ट करती है ।1822 में जॉन क्राफर्ड द्वारा किए गए अध्ययन से पता चला कि फोर्ट कैनिंग हिल पर हिंदू या बौद्ध मंदिरों को नष्ट किया गया था। 1827 में स्थापित श्री मरियम्मन मंदिर सिंगापुर का सबसे पुराना हिंदू मंदिर है, जो भारतीय धर्म और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का प्रतीक है। 19वीं शताब्दी में भारतीय प्रवासियों ने सिंगापुर में स्थाई रूप से बसना शुरू किया । रंगून और अन्य क्षेत्रों में तमिल मुस्लिम व्यापारी प्रमुख भूमिका निभा रहे थे । 1819 से द्वितीय विश्व युद्ध तक भारत और सिंगापुर दोनों ब्रिटिश उपनिवेश के अधीन थे, जिसके परिणाम स्वरुप दोनों देशों के बीच संपर्क पुनर्जीवित हुआ और भारतीय प्रवासी समुदाय का आकार धीरे-धीरे बढ़ा। 1824 की पहली जनगणना में भारतीयों की संख्या 7% थी जो 1860 तक कुल जनसंख्या का 16% हो गई (भारत सरकार 1953 पृ.3)

1965 में सिंगापुर की स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समुदाय का सामाजिक और आर्थिक विकास दो प्रमुख चरणों में हुआ। 1965 - 1990 के दौरान भारतीय समुदाय का अनुपात कुल जनसंख्या में घटकर 6.4 प्रतिशत हो गया ,जिसका कारण ब्रिटिश सैनिक बल की वापसी और प्रवासी भारतीयों के स्वदेश वापसी थी ।1990 के बाद भारतीय समुदाय की निरंतर वृद्धि हुई और 2014 से आधुनिक समय में भारत सिंगापुर संबंधों में बहुआयामी सुधार और रणनीतिक सहयोग के नए आयाम स्थापित हुए(मजूमदार 1979 पृ. 16)। 2014 से सिंगापुर और भारत के द्विपक्षीय संबंधों में विशेष रूप से" एक्ट ईस्ट पॉलिसी" और बहुपक्षीय रणनीतिक मंचों के माध्यम से सुरक्षा, व्यापार निवेश ,शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ऊर्जा और सांस्कृतिक सहयोग को प्राथमिकता दी गई। दोनों देशों ने उच्च स्तरीय बैठकों और नेतृत्व वार्ताओं के माध्यम से कूटनीतिक और रणनीतिक सहयोग को मजबूत किया।

वियतनाम -

भारत और वियतनाम के संबंध ऐतिहासिक सांस्कृतिक आर्थिक और रणनीतिक दृष्टिकोण से अत्यंत प्राचीन और बहुआयामी रहे हैं। पहली से छठी शताब्दी तक वियतनाम फ़ुनान राज्य का भाग था ,जो भारत के साथ गहरे वाणिज्य और सांस्कृतिक संबंधों में रहा। उन्होंने भारतीय साहित्य, धर्म और कला को अपनाया और इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण डनांग में चाम संग्रहालय में चाम मूर्तिकला में देखा जा सकता है । हीनयान बौद्ध धर्म की वियतनाम में प्रवृत्ति भिक्षुओं के योगदान और चिकित्सकीय तथा वैज्ञानिक ज्ञान के हस्तांतरण में वियतनामी समाज में गहरा प्रभाव डाला (सरदेसाई, 1968, पृष्ठ संख्या 24)।

संस्कृति और शैक्षिक दृष्टि से भारत और वियतनाम ने उच्च शिक्षा, छात्र आदान-प्रदान कला और संस्कृति योग और आयुर्वेद, बौद्ध धर्म और साहित्य परियोजनाओं में सहयोग किया। भारतीय संस्कृति केंद्र और बौद्ध भिक्षु संस्थान वियतनाम में भारतीय दर्शन, कला और संस्कृति के प्रसार में योगदान दे रहे हैं। आर्थिक क्षेत्र में भारत और वियतनाम के बीच व्यापार, निवेश, ऊर्जा, सूचना प्रौद्योगिकी ,स्मार्ट शहर और आधारभूत संरचना विकास में सहयोग निरंतर बड़ा है ।भारत वियतनाम मुक्त व्यापार समझौता और आसियान के बहुपक्षीय मंचों के माध्यम से आर्थिक और राजनीतिक सहयोग को मजबूती प्रदान कर रहा है। राजनीतिक और सामरिक दृष्टि से भारत और वियतनाम के संबंध हिंद - प्रशांत रणनीति, दक्षिण- पूर्व एशिया की स्थिरता और समुद्री सुरक्षा के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। नियमित रक्षा अभ्यास नौसैनिक सहयोग और समुद्री सीमाओं के निगरानी के माध्यम से दोनों देशों ने क्षेत्रीय सुरक्षा और समुद्री व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा सुनिश्चित की है। इसके साथ ही वियतनाम और भारत ने संयुक्त सामरिक तकनीकी और निवेश परियोजनाओं के माध्यम से द्विपक्षीय संबंधों को व्यापक और बहुआयामी बनाया है (टिन. अंग . एम. 1967 पृष्ठ संख्या 157)।

इंडोनेशिया -

भारत और इंडोनेशिया के संबंध हजारों वर्षो से विकसित होते रहे और यह संबंध व्यापार, संस्कृति, धर्म ,कला और शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में गहरा और बहुआयामी रहा है। ऐतिहासिक साक्ष्यों से स्पष्ट है होता है ,की पहली शताब्दी ई . पू.में भारतीय व्यापारी समुद्र मार्गों के माध्यम से बाली जावा और सुमात्रा तक पहुंचे। इस यात्रा को बाली यात्रा कहा गया ,जिसमें उड़ीसा के पारादीप से समुद्र मार्ग से इंडोनेशिया द्वीपों तक व्यापारिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। इसी प्रकार कुताई क्षेत्र में चौथी शताब्दी के प्रारंभ में मिले खंभों और शिलालेखों ने पल्लव शैली और संस्कृत भाषा में लिखे अभिलेखों के माध्यम से भारतीय कला और प्रशासनिक प्रभाव को उजागर किया। पूर्वी जावा में 760 ईस्वी में बने बद्दुत (कांडी)और आठवीं नौवीं शताब्दी के बीच बने बोरोबुदुर और परमबनन मंदिर भारतीय वास्तुकला धार्मिक परंपराओं और बौद्ध- हिंदू मिश्र संस्कृति का उदाहरण है (कूलर, 2002 ,पृष्ठ संख्य 69)।

आधुनिक काल में भारत इंडोनेशिया संबंध नई ऊंचाइयों तक पहुंचे हैं।2014 के बाद द्विपक्षीय व्यापार, निवेश रणनीति सहयोग ,समुद्री सुरक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी डिजिटल अर्थव्यवस्था ,शिक्षा, योग और संस्कृति में सहयोग में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। दोनों देशों ने इंडो पेसिफिक रणनीति के तहत सुरक्षा और समुद्री मार्गों की निगरानी, सामरिक अभ्यास और नौसैनिक सहयोग को प्राथमिकता दी है। भारत - इंडोनेशिया मुक्त व्यापार समझौते और आसियान की बहुपक्षीय मंचों के माध्यम से आर्थिक सहयोग और

को बढ़ाया गया है। प्राचीन समुद्री व्यापार, शिक्षा , कला के आदान-प्रदान से लेकर आधुनिक रणनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग तक यह संबंध 21वीं शताब्दी में और अधिक बहुआयामी और स्थाई बन गया है। भविष्य में शिक्षा, विज्ञान ,तकनीकी ,व्यापार और संस्कृति के क्षेत्र में यह संबंध क्षेत्रीय स्थिरता और वैश्वीक रणनीतिक हितों के लिए महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा (अमृत, 2009, पृष्ठ संख्या 547 - 572)।

थाईलैंड -

भारत और थाईलैंड के बीच गहरी और सौहार्दपूर्ण संबंधों की जड़े शताब्दियो पुराने परस्पर आदान-प्रदान में निहित हैं । थाई संस्कृति के विकास पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव आज भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह संबंध प्राचीन काल से विकसित होते हुए आज एक मजबूत बहुआयामी रणनीतिक और सामरिक साझेदारी के रूप में विकसित हो रहे हैं। दक्षिण - पूर्व एशिया और भारतीय उपमहाद्वीप के बीच प्राचीन समुद्री मार्गों द्वारा स्थापित सांस्कृतिक और व्यापारिक संपर्क में समय के साथ स्थाई संवाद आदान-प्रदान और साझेदारी का मार्ग प्रशस्त किया। भारत और थाईलैंड के बीच संबंध सिर्फ आधुनिक राजनयिक 20वीं सदी के उत्पाद नहीं है ,बल्कि वे सदियों पुराने सांस्कृतिक ,धार्मिक, भाषा और सामाजिक आदान-प्रदान का परिणाम है। 2014 के बाद भारत - थाईलैंड आर्थिक संबंधों ने स्पष्ट विस्तार प्राप्त किया है । द्विपक्षीय व्यापार निवेश और सहयोग के आयाम का विस्तार वस्तुओं और सेवाओं के पारंपरिक व्यापार तक सीमित नहीं रहा। आधुनिक अर्थव्यवस्था, सूचना प्रौद्योगिकी, स्मार्ट सिटी समाधान, ऊर्जा संसाधन, फार्मास्यूटिकल्स ,कृषि विज्ञान, पर्यटन और व्यावसायिक नवाचार दोनों देशों के बीच साझा हितों के क्षेत्र बन गए हैं। भारत- आसियान मुक्त व्यापार समझौते ने व्यापार बाधाओं को कम किया और वस्तुओं तथा सेवाओं के अधिक मुक्त प्रवाह को सक्षम किया, जिससे दोनों देशों की अर्थव्यवस्थाओं को लाभ हुआ। भारत से थाईलैंड को औद्योगिक मशीनरी ,फार्मा उत्पाद, कपड़े, ऑटो भाग तथा तकनीकी वस्तु में निर्यात होती है ।जबकि थाईलैंड से भारत इलेक्ट्रॉनिक्स ,ऑटोमोबाइल ,मशीनरी तथा कृषि उपकरणों का आयात करता है जो व्यापारिक विविधीकरण को बढ़ावा देता है (व्योह, 2005, पृष्ठ संख्या, 169 - 188)।

मलेशिया -

भारत और मलेशिया के बीच संबंधों की जड़े कई शताब्दियों पुराने परस्पर आदान-प्रदान में निहित हैं।लगभग 1500 वर्ष पूर्व मलेशिया के गंगा नेगरा और पुराना केदाह में श्री विजय जैसे भारतीय राज्य सत्ता के प्रमाण प्राप्त हुए हैं ।पल्लव राजाओं और चोल राजाओं के शासनकाल में तमिल्कम और मलाय प्रायद्वीप के राज्यों के बीच गहरे संबंध स्थापित थे।

भारत और मलेशिया के बीच रिश्ते प्राचीन सभ्यताओं से लेकर आधुनिक वैश्विक वास्तु तक एक विस्तृत गहन और रण नीतिक साझेदारी का प्रतीक है ,जिनके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक ,आर्थिक और सामरिक आयाम सदियों से विकसित होते रहे हैं ।दोनों देशों के बीच संबंधों का प्रमाण आज भी ऐतिहासिक उत्खनन प्राचीन समुद्री व्यापारिक मार्ग और तमिल तथा भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव में स्पष्ट रूप से देखा जाता है। लेकिन 2014 के बाद यह साझेदारी ,"एक्ट ईस्ट पॉलिसी "के तहत और अधिक संगठित सामरिक तथा बहुपक्षीय दृष्टिकोण के साथ विकसित हुई है ।भारत की "एक्ट ईस्ट पॉलिसी "ने दक्षिण - पूर्व एशिया के सहस्राब्दी अवधियों पुराने सांस्कृतिक संबंधों को एक समावेशी विदेश नीति में परिणत कर दिया, जिसेमे मलेशिया जैसे महत्वपूर्ण साझेदार को क्षेत्रीय स्थिरता आर्थिक समृद्धि और सामरिक संतुलन के संदर्भ में केंद्रीय भूमिका दी गई है। मलेशिया न केवल आसियान के प्रमुख सदस्य के रूप में बल्कि भारत के लिए आर्थिक राजनीतिक तथा सामरिक सहयोग का एक मजबूत आधार भी रहा है, जो आज वैश्विक परिदृश्य में द्विपक्षीय तथा क्षेत्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में और अधिक प्रासंगिक बन गया (शेट्टी, 2009, पृष्ठ संख्या 91)।

भारत के साथ दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के संबंधों का अवलोकन इस क्षेत्र में ऐतिहासिक ,सांस्कृतिक, आर्थिक और सामरिक आयामों को समेकित रूप से प्रस्तुत करता है ।लगभग 2000 वर्ष पहले ही दक्षिण- पूर्व एशिया में हिंदू और बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ था, और भारतीय व्यापारी एवं संस्कृति इस क्षेत्र में गहरी पैठ बना चुके थे।इंडोनेशिया ,मलेशिया ,थाईलैंड, म्यांमार ,वियतनाम, और सिंगापुर जैसे देशों में भारतीय लिपियों, स्थापत्य ,कला ,साहित्य और धार्मिक परंपराओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतीय प्रवासियों ने भी स्थानीय समाज और अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया।सामरिक सहयोग, समुद्री

सुरक्षा और आतंकवाद विरोधी पहल, क्षेत्र के लिए अहम है ।कुल मिलाकर भारत और दक्षिण- पूर्व एशियाई देशों के संबंध बहुआयामी और गहरे हैं और आधुनिक वैश्विक परिदृश्य में यह सहयोग आर्थिक, सांस्कृतिक और सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ -

1- अमृत एस.एस. (2009)बंगाल की खाड़ी के पार तमिल प्रवासी अमेरिकी ऐतिहासिक समीक्षा 114(3) 547- 572

2- कूलर. रिचर्ड .एम(2002) बर्मा की कला और संस्कृति, नॉर्दर्न इलिनाइस विश्वविद्यालय प्रेस, पृष्ठ संख्या 69।

3- टिन.आंग. एम. (1967) भारत - वियतनाम संबंध :सामरिक, आर्थिक और राजनीतिक आयाम, नई दिल्ली एशियन पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ संख्या 157।

4- भारत सरकार सूचना मंत्रालय (1953) भारत और दक्षिण पूर्व एशिया, नई दिल्ली सूचना मंत्रालय पृष्ठ संख्या 3।

5- मजूमदार.आर.सी.(1979)भारत और दक्षिण - पूर्व एशिया, दिल्ली पृष्ठ संख्या 16।

6- व्योह. आर (2005,) भारत- थाईलैंड व्यापारिक संबंध और आर्थिक सहयोग नई दिल्ली :दीप और दीप पब्लिकेशंस पृष्ठ संख्या 169 - 188।

7- सिंघल.एस.सी.(1998)भारत और दक्षिण पूर्व एशिया: क्षेत्रीय सहयोग एवं संपर्क, नई दिल्ली: ए . पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, पृष्ठ संख्या 155- 157।

8- शेट्टी .एस. डी ,,(2009)भारत - मलेशिया संबंध :व्यापार सुरक्षा एवं सामरिक सहयोग, नई दिल्ली, कलिंगा पब्लिकेशंस पृष्ठ संख्या 91।

9- हाल . डी.जी.ई.(1994) दक्षिण पूर्व एशिया का इतिहास (चतुर्थ संस्करण) लंदन: मैकमिलन, पृष्ठ संख्या 218।

नागार्जुन की काव्य चेतना

भूमिका विक्रम सिंह*
विपिन सिंह**

सार:-

प्रस्तुत लेख हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रमुख जनकवि नागार्जुन के काव्य व्यक्तित्व और उनकी जनपक्षधर चेतना पर केंद्रित है। नागार्जुन को प्रगतिवादी काव्यधारा का सशक्त कवि माना जाता है, जिन्होंने अपनी रचनाओं में समाज, राजनीति, शोषण और आम जनता के जीवन-संघर्षों को अभिव्यक्ति दी। गरीब कृषक परिवार में जन्म लेने के कारण उनके जीवन में अभाव और संघर्ष का गहरा अनुभव रहा, जिसने उनके काव्य को यथार्थवादी और संवेदनशील बनाया।

नागार्जुन ने परंपरागत रूढ़ियों, सामाजिक असमानताओं और राजनीतिक विसंगतियों के विरुद्ध अपनी कविताओं के माध्यम से आवाज उठाई। उनकी कविताओं में किसान, मजदूर, निम्न-मध्यवर्ग और वंचित समाज के दुःख-दर्द का जीवंत चित्रण मिलता है। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर स्वतंत्र भारत की राजनीतिक परिस्थितियों तक को अपनी रचनाओं का विषय बनाया और भ्रष्टाचार, सत्ता के दुरुपयोग तथा सामाजिक अन्याय पर तीखा व्यंग्य किया।

उनकी कविता में मानवीय संवेदना के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण के प्रति गहरी चेतना भी दिखाई देती है। 'अकाल और उसके बाद' जैसी कविताएँ मानव जीवन को व्यापक पारिस्थितिकी तंत्र से जोड़ती हैं। उनकी भाषा लोकजीवन से जुड़ी, सरल और प्रभावशाली है, जिसने हिंदी कविता को नया आयाम दिया।

नागार्जुन का काव्य संसार जीवन, संघर्ष, विद्रोह, करुणा और परिवर्तन की चेतना से निर्मित है। वे केवल कवि नहीं, बल्कि जनआकांक्षाओं और सामाजिक परिवर्तन के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। उनकी कविताएँ आज भी अपनी सामाजिक प्रासंगिकता और जनपक्षधर दृष्टि के कारण महत्वपूर्ण बनी हुई हैं।

बीज शब्द:- प्रगतिवाद, समाज, राजनीति, शोषण, यथार्थवादी, किसान, मजदूर।

नागार्जुन आधुनिक युग के शीर्ष कवियों में से एक हैं नागार्जुन को जनता के दुख- दर्द को आम जुबान में बयान करने वाला कवि कहा जाता है।[1] नागार्जुन हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के सशक्त साहित्यांदोलन प्रगतिवाद के कवि माने जाते हैं डॉ. रामदरस मिश्र के अनुसार "प्रगतिवाद उस काव्यधारा का नाम है जो मार्क्सवाद दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध का अपना लक्ष्य बनाकर चली"[2]

नागार्जुन की 75 वी वर्षगांठ के अवसर पर हिंदी जगत की महत्वपूर्ण पत्रिका आलोचना, जो की नागार्जुन केंद्रित थी, में नागार्जुन के संदर्भ में उसके वैशिष्ट्य को वर्तमान प्रासंगिकता के साथ जोड़ते हुए स्पष्ट करती है कि - " पिछले तीन-चार दशकों की हिंदी कविता पर जिन कवियों का सर्वाधिक प्रभाव रहा उनमें नागार्जुन अग्रणी हैं। उनकी कविता ने बाद के कवियों को नया रास्ता दिखाया। उनकी कविता ने साधारण जीवन को उदात्तता दी। सामान्य भाषा को गौरव दिया। निराला, कबीर, सरहपा होते हुए संस्कृत की लोकधर्मी परंपरा

* शोधार्थी– हिंदी विभाग, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली
Mobile: +91-6388422995, Email-bhoomikavikramsingh2002@gmail.com
** शोधार्थी– हिंदी विभाग, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली
Mobile: +91-9794943087, Email : ssinghvipin098@gmail.com

की फिर से खोज की। बौद्ध, लोकायत और मार्क्सवादी दर्शनों का समाहार करते हुए उन्हें काव्य का अस्त्र बनाया।"[3]

नागार्जुन का जन्म एक गरीब कृषक परिवार में हुआ। यहाँ इसका उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है ताकि उनकी काव्य रचना के संदर्भ में उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि समझी जा सके। नागार्जुन विद्रोही स्वभाव के कवि थे, उन्होंने यथास्थिति, परंपरा आदि से विद्रोह किया। स्पष्ट ही इसका उदाहरण हम उनके जीवन में देख पाते हैं । उन्होंने अपने विषय में लिखा-

पैदा हुआ था मैं,
दीन-हीन अपठित किसी कृषक-कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव
ठेठ बचपन से
कवि! मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का....
............मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व
रुद्ध है, सीमित है,
आटा-दाल-नमक-लकड़ी के जुगाड़ में!

– ('रवि ठाकुर' शीर्षक कविता से उद्धृत)

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि नागार्जुन का जन्म ऐसे कुल में हुआ था, जिसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। इसी वजह से इनकी शिक्षा सुव्यवस्थित ढंग से नहीं हुई। नामवर सिंह, नागार्जुन के संदर्भ में 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ ' में कहते है कि - "आर्थिक परिस्थितियों के कारण निरंतर प्रवासी का सा जीवन बिताने वाले नागार्जुन के हृदय में मिथिला के लिए इतनी हूक उठती है इसे सहृदय ही अनुभव कर सकते है।"[4]

खगेंद्र ठाकुर के अनुसार - "नागार्जुन होने का मतलब है क्रांतिकारी होना, जनचेतना का रचनाकार होना, अद्भुत साहस के साथ, इसको, उसको, सबको जरूरत के अनुसार रगड़ना यह मामूली बात नहीं है। साहस के साथ ताकत भी जरूरी है । डेढ़ हड्डी के नागार्जुन की काया वाले नागार्जुन में अक्षय साहस था।"[5] नागार्जुन की जीवटता के विषय में रामविलास शर्मा ने कहा हैं कि, " जहाँ मौत नहीं हैं, बुढ़ापा नहीं हैं, जनता के असंतोष और राज्यसभाई जीवन का संतुलन नहीं है, वह कविता है नागार्जुन की। ढाई पसली के घुमंतू जीव, दमे के मरीज़, गृहस्थी का भार–फिर भी क्या ताकत है नागार्जुन की कविताओं में! और कवियों में जहाँ छायावादी कल्पनाशीलता प्रबल हुई है, नागार्जुन की छायावादी काव्य-शैली कभी की खत्म हो चुकी है। किसान और मज़दूर जिस तरह की भाषा समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है।"[6]

नागार्जुन सामाजिक समस्याओं पर सधे हुए लेखक का परिचय देते है। उनका रचना संसार अत्यंत वृहत है। जनपदीय संस्कृति तथा लोक-जीवन पर उनका लेखन वृहत रहा है "नागार्जुन कुछ रचनाएं आधुनिक हिंदी कविता में शिष्ट गंभीर हास्य तथा सूक्ष्म चुटीले व्यंग की दृष्टि से अलग पहचान रखती है।"[7]

नागार्जुन के संदर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपने जीवन में स्वतंत्रता पूर्व का भी भारत देखा और उसके उपरांत भी उन्होंने राजनीतिक परिस्थितियों को एक सचेत व्यक्ति के रूप में परखा इसलिए स्वाधीनता संग्राम के दिनों में प्रभात गीत एवं उद्बोधन गीत रचे तो स्वतंत्र भारत के विभिन्न आंदोलनों के लिए उन्होंने गीत और कविताएं लिखी, एक तरफ स्वाधीनता आंदोलन में लिखे गए गीतों में निष्ठा झलकती है तो दूसरी तरफ स्वतंत्र भारत के आंदोलनों के संदर्भ में लिखे गए गीतों में तीखा व्यंग देखने को मिलता है रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार- "आंदोलन के वैविध्य और बदलते स्वरूप से नागार्जुन की आस्था में भी परिवर्तन आते गए हैं गांधी, मार्क्स, विनोबा, जयप्रकाश अलग-अलग समय में कवि के नायक रहे।"[8]

राजनीति पर व्यंग करती हुई उनकी कुछ कविताएं निम्न है-

दो हज़ार मन गेहूँ आया दस गाँवों के नाम
राधे चक्कर लगा काटने, सुबह हो गई शाम
सौदा पटा बड़ी मुश्किल से, पिघले नेताराम
पूजा पाकर साध गये चुप्पी हाकिम-हुक्काम
भारत-सेवक जी को था अपनी सेवा से काम
खुला चोर-बाज़ार, बढ़ा चोकर-चूनी का दाम
भीतर झुरा गई ठठरी, बाहर झुलसी चाम
भूखी जनता की ख़ातिर आज़ादी हुई हराम

- ('नया तरीका' शीर्षक से)

उपर्युक्त पंक्तियों में स्वतंत्र भारत में उपजते भ्रष्टाचार पर नागार्जुन का तीखा व्यंग मिलता है। नागार्जुन का यही वैशिष्ट्य है। उनकी रचनाओं एवं वास्तविक जीवन में बीच सामंजस्य प्राप्त होता है। नागार्जुन की कविताएं राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक पक्षों के विभिन्न आयामों को यथार्थ धरातल पर उद्घाटित करती हैं नागार्जुन ने समसामयिक चेतन तथा युगीन यथार्थ को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है।

वरिष्ठ साहित्यकार विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, "नागार्जुन की तुलना बिल्कुल सही कबीरदास से की जाती है। कबीर की तरह की वे परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के समुच्चय है। जीवन के प्रति उनमें गहरी आसक्ति है। वे तीव्र सौंदर्यानुभूति के रचनाकार हैं और इसीलिए गहरी घृणा और तिलमिला देने वाले व्यंग्य के सहज कवि है।"[9]

नागार्जुन ने जहां एक ओर कविता के माध्यम से तत्कालीन समाज के गरीब किसान तथा शोषित मजदूरों की पीड़ा - व्यथा को रखा है, वही दूसरों ओर मुखौटधारी भोग - विलास में लिप्त नेताओं के यथार्थ को भी प्रस्तुत किया हैं -

"जमींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्यापारी हैं। अंदर - अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है।"

नागार्जुन का काव्य संसार प्रगतिशील चेतना से युक्त है। उन्होंने अपने साहित्य में जनसामान्य की प्रतिष्ठित किया है। शोषित, पीड़ित समाज के प्रति उनकी गहरी संवेदना है। विश्वम्भर मानव के अनुसार, "नागार्जुन कोरे लेखक नहीं है। उन्होंने राजनीतिक आंदोलन में शरीक होकर जेल यात्राएं भी की है। यह कोटि - कोटि जन के प्रतिनिधि कवि है।"[10] नागार्जुन का संघर्ष उनकी रचनात्मकता में भी है।

हिंदी साहित्य को नागार्जुन ने अपनी कविताओं के माध्यम से ऊर्जा एवं असीम शक्ति से परिपूर्ण किया है। नागार्जुन का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही बहुआयामी है। "देश की साधारण जनता से कवि का लगाव जितना गहरा और आत्मीय होगा, कविता के वर्ण और आस्वाद में उतनी विविधता होगी, कवि की संवेदना उतनी ही सघन होगी, कविता का यथार्थवाद उतना ही गंभीर होगा और काव्य की जीवनशक्ति उतनी ही दुर्दम होगी।"[11] ये पक्तियां नागार्जुन की कविताओं के संदर्भ में एकदम सटीक है। निरंतर परिवर्तनशीलता चेतना की प्रमुख विशेषता होती है।[12] यह चेतना स्पष्टता नागार्जुन के विपुल काव्य संस्कार में परिलक्षित होती है। नागार्जुन के लेखन में उनके समय और समाज में सक्रिय राजनीतिक दमन, आर्थिक शोषण तथा सांस्कृतिक ठहराव के खिलाफ हस्तक्षेप प्रकट होता है। नागार्जुन यथार्थ में संघर्ष की चेतना को शामिल करने के पक्षधर हैं। उन्होंने लिखा है -

" नई-नई सृष्टि रचने को तत्पर
कोटि-कोटि कर-चरण
देते रहे अरहर स्निग्ध इंगित

और मैं अलस-अकर्मा
पड़ा रहूं चुपचाप!
यह कैसे होगा?

('यह कैसे होगा' शीर्षक कविता से)

नागार्जुन की कविताओं में भारतीय निम्न मध्यवर्ग के अनेक चित्र प्राप्त होते है। नागार्जुन अपने काव्य में मामूली, उपेक्षित तथा असहाय जिंदगी का चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनके जीवन अनुभवों में विविधता है। नामवर सिंह नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताओं के संकलन की भूमिका में उनकी संवेदना क्षमता के बारे में लिखा है कि जो वस्तु औरों की संवेदना को आहूति छोड़ जाती है वही नागार्जुन के कवित्व की रचना भूमि है। नागार्जुन के निम्न मध्यवर्गीय जीवन विषय में चित्र प्रस्तुत करते हुए, उसका अत्यंत यथार्थ रूप अपनी कविताओं में रखा है -

कटी दरी पर बैठा है, चिर रोगी बेटा।
राशन के चावल से ककड़ बीन रही
पत्नी बेचारी
गर्म भार से अलस शिथिल है अंग अंग
मुंह पर उसके मटमैली आभा।

पूर्व में हिंदी के प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह का नागार्जुन के संवेदनशीलता के संदर्भ का उदाहरण रखें तो निश्चित ही नागार्जुन की उस दूरदृष्टी से परिचय मिलेगा, जिसका किसी अन्य कवि में पाया जाना मुश्किल है।

नागार्जुन के काव्य में न केवल मानव समाज का यथार्थ चित्रण है, अपितु पारिस्थितिकी तंत्र में उपस्थित अन्य जीवी के प्रति भी नागार्जुन की चेतना दिखती है। 'अकाल और उसके बादाम' कविता में इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता हैं -

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुटिया सोई उनके पास
कई दिनों तो लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

उपर्युक्त 'अकाल' और 'उसके बाद' शीर्षक कविता कविता में आकार में भले ही छोटी हो, लेकिन यह कविता संवेदनात्मक संरचना के नवाचार में अद्‌वितीय है। नागार्जुन 'अकाल' के सामान्य अर्थ को विस्तार देते हुए इस कविता को पारिस्थितिकी तंत्र के अन्य जीवों से भी जोड़ते है,जैसे- कुटिया, छिपकली, चूहा, कौआ आदि। भले ही इस कविता में कवि ने मनुष्य का कही जिक्र न किया हो, लेकिन पारिस्थितिकी तंत्र के केंद्रीय जीव मनुष्य का अन्य जीवों के साथ संबंध स्थापित करते है। अमिताभ राय के अनुसार, " यह कवि का वैशिष्ट्य है कि वह इंसान का प्रयोग न करके भी पूरी कविता को उसकी केंद्रीय धुरी पर टांक दे।.....नागार्जुन ने मनुष्यों की परिकल्पना पारिस्थितिकी तंत्र अथवा पूरे परिवेश के बीच की है।"[13]

नागार्जुन भाषा के स्तर पर भी नए जीवन सम्बन्धों की तलाश करते हैं।

नागार्जुन की कविताओं में संघर्ष के चित्रों की प्रधानता है। नागार्जुन तात्कालिकता की क्षमता से युक्त कवि है। नागार्जुन की कविताओं में आवर्ती सार्थकता दिखाई पड़ती है, जो कि समय- समय ले अपनी प्रासंगिकता सिद्‌ध करती हैं -

आओ रानी, हम ढोएंगे पालकी
यही हुई हैं राय जवाहरलाल की

रफू करेंगे फटे पुराने जाल की
यही हुई हैं राय जवाहरलाल की
आओ रानी हम ढोएंगे पालकी।

उपर्युक्त पक्तियों के माध्यम से अक्सर विभिन्न मौकों पर लोग व्यंग्य अपने हिसाब से करते हैं।

नागार्जुन जीवन के अनुभवों, अभिभूतियों और संवेदनाओं के कवि है। नागार्जुन अपनी कविता 'प्रतिबद्ध हूं' में सामाजिक परिवर्तन की अर्थ छवि प्रस्तुत करते है -

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ -
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त -
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ...
अविवेकी भीड़ की 'भेड़या-धसान' के खिलाफ़...

नागार्जुन उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से समाज में परिवर्तन के लिए अपनी प्रतिबद्धता प्रकट करते है। गिरीश्वर मिस्र के अनुसार, "जो समाज से जुड़ेगा उसकी विसंगतियों से विचलित होगा, उसकी चिंता करेगा वह कभी तटस्थ नहीं रह सकता। नागार्जुन बाबा साफगोई से स्पष्टता समाज के वंचित का पक्ष लेते है, किसी तरह का नफ़ा नुकसान का हिसाब - किताब किए बिना।"[14]

मनुष्य तथा प्रकृति के संघर्ष में उपयोगिता नजरिया, आधुनिक युग के लिए चुनौती है। नागार्जुन की प्रकृति से जुड़ी अनेक कविताएं प्रकृति के विविध चित्रों को प्रकट करती हैं -

अमल धवल गिरि के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,

उपर्युक्त पंक्तियों तथा साहित्यकारों - आलोचकों के नागार्जुन के संबंध में कहे गए कथनों के आधार पर नागार्जुन का एक जनकवि के रूप में हिंदी साहित्य में महत्व समझ सकते है। नागार्जुन का रचना संसार विशाल है, उसमें जीवन, समाज, पारिस्थितिकी के अन्य जीवी के विभिन्न चित्र मिलते है। नागार्जुन ने अपने समय के यथार्थ को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। खगेंद्र ठाकुर के अनुसार, " नागार्जुन ने अपने काव्य में संवेदनशीलता के नया धरातल दिया है, जो यथार्थवाद, वैज्ञानिकता, मानवीय करुणा और अनवरत संघर्षशीलता से बना हुआ है।"[15]

निष्कर्ष :- नागार्जुन की कविता में जीवन के अनेक रूप, नदी पहाड़, पशु राजनीति, क्रांति, विद्रोह आदि मिलते है। नागार्जुन की काव्य चेतना में आशा, विजय और विश्वास का शक्तिशाली स्वर है। वर्तमान भारत में जो दृष्टिगत है, नागार्जुन उसके रचयिता है।

संदर्भ:-

1. www.jansatta.com/editors-pic/hindi-poet-nagarjun-and-hins-poetry-a-review/139583/
2. रामदरश मिश्र, हिंदी कविता: आधुनिक आयाम, वाणी प्रकाशन,पृष्ठ संख्या -16
3. आलोचना पत्रिका, राजकमल प्रकाशन, 43 वा◌ॅं अंक
4. नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -80
5. खगेंद्र ठाकुर, नागार्जुन, साहित्य अकादेमी, पृष्ठ संख्या -6
6. रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -153

7. हिंदी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृष्ठ संख्या -236
8. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -100
9. विश्वनाथ त्रिपाठी, अभी के कवि है, नागार्जुन शीर्षक लेख पुस्तक वार्ता पत्रिका, अंक -61, पृष्ठ संख्या -04
10. विश्वम्भर मानव, आधुनिक कवि, लोकभारती प्रकाशन पृष्ठ संख्या -171
11. अजय तिवारी, नागार्जुन की कविता, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -27
12. स. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृष्ठ संख्या -247
13. अमिताभ राय, वागर्थ पत्रिका में नागार्जुन केंद्रित लेख से, अंक -275, पृष्ठ संख्या -75
14. गिरीश्वर मिश्र, ठेठ हिंदुस्तानी कवि शीर्षक लेख, पुस्तक वार्ता, अंक -61,पृष्ठ संख्या -12
15. खगेंद्र ठाकुर, नागार्जुन का कवि कर्म, प्रकाशन विभाग, पृष्ठ संख्या -107

भारत में दलित चेतना का इतिहास और बिहार की राजनीति में उसका प्रभाव

विशुनी पासवान*

सारांश (Abstract)

15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता हासिल करने के साथ भारतीय समाज की पुनर्रचना के प्रयासों के एक विराट दौर का अंत हुआ। इस दौर में कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हालिस की गई, अनेक अविस्ममरणीय संघर्ष हुए, कई प्रश्नों पर काफी जद्दोजहद के बाद सर्वानुमति बनी और नेतृत्व की एक नई पीढ़ी सामने आई। तथापि औपनिवेशिक शासन ने इन प्रयासों और संघर्षो को आच्छादित कर रखा था। इस शासन के खात्मे के साथ वह कुहरा छँटा गया और हमारे समाज के सारे अंदरूनी तनाव, संघर्ष, संश्रय तथा सामंजस्य सूर्य की जीवनदायिनी रोशनी में जगमगा उठे। स्वतंत्रता भारतीय समाज की सनरचना के एक नए दौर का, खुले एवं निर्द्वंद्व संघर्षों के एक लंबे दौर का प्रस्थान–बिंदु थी। हमारा समाज एक ही साथ आह्लादित तथा आहत था, उसकी रंगों में गरम खून भी दौड़ रहा था और उसके शरीर पर जमे हुए खून के साथ जख्म भी थे। भारतीय समाज की सनरचना पर चिंतन–मंथन और उसके लिए कोशिशें काफी पहले शुरू हो चुकी थी। इस सनरचना के प्रश्न को केंद्र पर कई वैचारिक–राजनीतिक धाराएँ जन्म ले चुकी थीं और तीस का दशक आते–आते उन्होंने लगभग स्पष्ट शक्ल हासिल कर ली थी। तीस के दशक में स्वतंत्रता के बाद के भारत में होनेवाले वैचारिक–राजनीतिक संघर्षों की जमीन लगभग तैयार हो गई थी, विभाजन रेखाएँ खींची जा चुकी थीं। इसीलिए आगे बढ़ने से पहले उन पर एक संक्षिप्त नजर डालना कतई अप्रासंगिक नहीं होगा। यहाँ इन वैचारिक–राजनीतिक प्रवृत्तियों की मोटी–रूप रेखा प्रस्तुत की जा रही है।

मुख्य शब्द : स्वतंत्रता, औपनिवेशिक शासन, हिंदू–मुस्लिम एकता, समाजवाद और उदारवादी

प्रस्तावना

भारतीय समाज के विभिन्न समुदायों और हितों के समन्वय के साथ–साथ इस धारा ने कमजोर तथा दलित वर्गों के पक्ष में मजबूत दबाव बनाने का प्रयास किया। कांग्रेस से जुड़े रहते हुए और उससे परे जाते हुए पूरे देश में आश्रमों की श्रृंखला के जरिए एक नस सामाजिक नेतृत्व की पूरी प्रणाली विकसित की। इस प्रणाली ने अनेक राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं को जन्म दिया।[1] जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में न मालमू कितने लोग इससे प्रभावित और प्रेरित हुए। इसने आंदोलन के नए–नए रूपों, रचनात्मक कार्यों, बोल–चाल, रहन–सहन, आदि सभी क्षेत्रों में सामाजिक–राजनीतिक नेतृत्व की एक नितांत अनूठी पीढ़ी तैयार की जो स्वतंत्रता आंदोलन की रीढ़ शक्ति बनी। अनेक आंदोलनों को भी हम नेतृत्व की इस शैली का अनुकरण करते पाते हैं।[2]

सन् 20 में 'यंग इंडिया' में लिखते हुए गांधीजी ने भारतीय समाज की सनरचना के लिहाज से दो अहम प्रश्नों– दलित प्रश्न और हिंदू–मुस्लिम एकता के प्रश्नों का जिक्र किया। उसके अनुसार, इन प्रश्नों के समाधान के बिना स्वराज दुर्लभ होगा। हमारा स्वतंत्रता आंदोलन दूसरे प्रश्न के समाधान में विफल रहा– परिणाम हुआ भयानक दंगों और आबादी के सबसे बड़े स्थानांतरण के बीच मिली आजादी। इस विफलता कासाया भारतीय समाज पर आज तक छाया है।[3] पहले प्रश्न के समाधान की दिशा में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कुछ सफलता तो मिली, कुछ सर्वानुमति बनी, लेकिन उसका समाधान आज तक नहीं हुआ। दलित वर्गों की सत्ता में भागीदारी और उनके उत्थान के उठाए गए अनेक सामाजिक–आर्थिक कदमों के पचास वर्ष बाद भी उनके साथ सामाजिक भेदभाव एवं अत्याचार की घटनाएँ इस बात की गवाह है।[4]

---

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, मालवांचल विश्वविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

[1] मीर, फातिम – एप्रेंटिसशिप ऑफ ए महात्मा, फीनिक्स, डरबन, 1970.

[2] मिश्र, रमेश चंद्र – संत साहित्य और समाज, आर्य प्र. मंडल, दिल्ली, 1994.

[3] यादव, के.सी. एवं यादव, आर.एस. – ए प्रफैक्चर्ड लीगेसी : गांधी, दलित्स एंड दि प्रेजेंट – डे इंडिया, गांधी मार्ग, अप्रैल–जून

[4] मीर, फातिम – दि मेंकिंग ऑफ दि महात्मा, इंडियन होराइजंस, 1994.

'नेहरूवादी समाजवादी धारा। फेबियन समाजवाद और उदारवादी पश्चिमी लोकतंत्र से प्रभावित जवाहरलाल नेहरू ने भारत में अपनी खोज के जरिए उसकी बहुलतावादी समन्वयकारी धारा से– अशोक एवं अकबर की परंपरा से खुद को जोड़ा। उदारवादी जनतंत्र, जनवादी समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर भारतीय समाज की 'आधुनिक' फनर्रचना के वे प्रतिनिधि फरुष बने।[5]

बहरहाल, स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े बुद्धिजीवियों ने नेहरू की जो छवि गढ़ी वह शायद नेहरू के भी गले नहीं उतरती। यथार्थ को दो विपरीत ध्रुवों, सफेद–स्याह में बाँट कर देखने की दृष्टि से ग्रसित इन ने नेहरू बनाम गांधी, नेहरू बनाम सुभाष, नेहरू बनाम पटेल, नेहरू बनाम प्रसाद, अदि के जरिए नेहरू को एकमात्र आधुनिक, सेक्युलर, जनवादी और समाजवादी घोषित कर स्वतंत्रता आंदोलन का अतिसामान्यीकरण करने और उसे एकआयामी बनाने की पूरी कोशिश की। नेहरू की यह छवि बाद में नेहरू–गांधी वंशवाद की स्थापना में काफी मददगार साबित हुई। बहरहाल, स्वतंत्रता आंदोलन के महत्त्वपूर्ण नेताओं के साथ नेहरू की कभी–कभी मतभिन्नताएँ ही यथार्थ नहीं थी, यथार्थ वह भी था कि नेहरू आजीवन इन सभी नेताओं के साथ मिलकर काम करते रहे, उनमें समानताएँ भी थीं और सहयोग की एक लंबी परंपरा भी।[6]

नेहरू के बोल–चाल, रहन–सहन, कार्यशैली आदि पर उनके विचारों कास्पष्ट असर था। अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित मध्यवर्ग के एक बड़े तबके, पश्चिम उदारवादियों तथा सामाजिक–जनवादियों के वे सबसे पसंदीदा राजनेता थे। उनके प्रधानमंत्री बनने में यह भी एक महत्वपूर्ण कारक था। सामाजिक न्याय की धारा। यह धारा तीस का दशक आते–आते दो स्पष्ट धाराओं में बँट चुकी थी। एक धारा दलित प्रश्न के समाधान के आधार पर भारतीय समाज की फनर्रचना की हिमायती थी।[7] दलित वर्ग इस धारा के सामाजिक आधार थे और इसके सबसे सशक्त प्रवक्ता थे डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर। यह धारा यूरोप, खासकर ब्रिटेन में प्रचलित विभिन्न संवैधानिक स्कलों, फांसीसी प्रबोधन (एनालइटनमेंट) काल के कई विचारकों, उपयोगितावादी और कुछ हद तक समाजवादी तथा अराजकतावादी विचार शाखाओं से प्रेरणा ग्रहण करती थी। भारतीय विचार परंपरा में यह बौद्ध मत तथा संत–परंपरा की श्रृंखला में खुद को देखती थी। ब्राह्मणवादी सामाजिक ढाँचे के खात्मे और उसकी जगह स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और समानता के आधार पर भारतीय समाज को फनर्गठित करने की प्रक्रिया में यह दलित वर्ग के लिए विशेष संरक्षण तथा प्रोत्साहन की हिमायती थी। भारत के विभिन्न अंचलों में चले अनेक सामाजिक आंदोलनों (मालाबार में नारायण गुरु, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले, महादेव गोंविद राडाडे, छत्रपति साहूजी महाराज, मद्रास में परियन रामास्वामी नायकर, उत्तर भारत में जनेऊ आंदोलन से लेकर कई छोटे–बड़े आंदोलन आदि) की पृष्ठभूमि में यह धारा तीस के दशक में एक सशक्त वैचारिक–राजनीतिक धारा बन चुकी थी। इस धारा से जुड़े कई नेता (जैसे बिहार में जगजीवन राम, मद्रास में कामराज नाडर आदि) तब महात्मा और कांग्रेस के नेतृत्व से भी जुड़े थे।

भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अंबेडकर थे और इसने दलित वर्गों को भारतीय संविधान के साथ भावनात्मक रूप से जोड़ने में बड़ी भूमिका निभाई।

सामाजिक न्याय की दूसरी धारा बिहार में यूँ तो तीस के दशक तकसंगठित रूप ले चुकी थी। फिर भी एक सशक्त वैचारि–राजनीतिक प्रवृत्ति के रूप में वह स्वतंत्रता के बाद ही सामने आई– लोहियावादी समाजवाद के रूप में।[8] ब्राह्मणवादी सामाजिक ढाँचे की आलोचना के साथ यह धारा पिछड़ी जातियों के उत्थान के आधार पर भारतीय समाज की फनर्रचना का पक्षधर थी।[9]

'हिंदुत्व की वैचारिक–राजनीतिक धारा। यह धारा हिंदुत्व के आधार पर भारतीय समाज की फनर्रचना करना चाहती थी। हिंदू एकजुटता को आधार बनाते हुए यह, जाहिर है, मुस्लिम तथा ईसाई समुदायों को अपना निशाना बानती और उनके हिंदूकरण पर जोर देती। तीस के दशक में ही विनायक दामोदर सावरकर इस धारा के प्रमुख विचारक और सिद्धांतकर के रूप में सामने आए। यह धारा भी उन दिनों यूरोप में प्रचलित उग्र राष्ट्रवादी विचार शाखाओं, खासकर नाजीवाद से काफी प्रभावित थी और यह उसके संगठन के रूप, कार्यशैली, पोशाक, 'रिजीजन' और 'राष्ट्र' की उनकी परिभाषा एवं समझ में अभिव्यक्त होता।

उन दिनों बिहार में हिंदू सभा एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से यह वैचारिक–राजनीतिक धारा सक्रिय थी। हिंदू सभा तो फरानी संस्था थी, लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना बिहार में 1938 में हुई–

---

[5] मुखर्जी, डी.पी. – मॉडर्न इंडियन कल्चर, हिंद किताब, मुंबई, 1948.

[6] मुखर्जी, हीरेंद्रनाथ – गांधी, आंबडे कर एडं एक्सटर्पेशन ऑफ अनटचेबिलिटी, पी.पी. हाउस, नई दिल्ली, 1982.

[7] मेंडे, टिबारे – कॉन्वर्सेशन विद नहे रू, सके र एडं वारबर्ग, लदं न, 1956.

[8] बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, नई दिल्ली, 2001.

[9] मेश्राम, जी.टी. – रिपोर्ट ऑफ दि डिप्रेस्ड क्लास कॉन्प्रफेंस, नागफर, 1942.

पटना मुख्यालय था और बाबूराव दिवाकर मुख्य संगठक। भागलफर शाखा का भी उसी वर्ष गठन हुआ। तब संघ का आधार काफी सीमित था। उसके कई जिला प्रभारी भी नागफर से भेजे बए संगठक थे– एस. एस. हरकारे (मुजफ्फरपुर), ए.डी. बी. लोखंडे (गया शहर), रामकृष्ण भावे (चंपारण), प्रभाकर राव पंचखरे (सारण) भास्करजी जिंजार्दे (भागलफर), मधुकर राव (मुंगेर), वादडेकर (दरभंगा), आदि। 1940 से 44 के बीच इन जिला शाखाओं का गठन किया गया था। गया के मुख्य संगठक कृष्ण बल्लभ नारायण प्रसाद सिंह जिले के प्रमुख जमींदारों में थे। कट्टर सवर्ण उच्च जाति जमींदार, वकील आदि इसके मुख्य सामाजिक आधार थे।[10]

बिहार के दलित नेताओं ने धर्मांतरण का विरोध किया था, वहीं वे जाहिर है, हिंदू 'एकजुटता' से भी काफी आशंकित थे। आगे भी दलित आंदोलन का संश्रय उदारवादी, प्रगतिशील हिंदुओं, समाजवादी तथा वामपंथी शक्तियों के साथ ही बना।

– कम्युनिस्ट धारा। यह धारा वर्ग आधार पर – मजदूर वर्ग के नेतृत्व में मजूदर–किसान संश्रय पर आधारित जनवादी क्रांति के जरिए भारतीय समाज की पुनर्रचना की हिमायती थी। यह धारा मार्क्सवाद–लेनिनवाद को अपने मार्ग दर्शक विचारध् ाारा मानती थी और भारतीय समाज में चला आ रही अ–वैदिक संप्रदायों और संत–परंपरा के कुछ हिस्सों के साथ खुद को जोड़ती थी। बिहार में 20 अक्टूबर, 1939 को सुनील मुखर्जी के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी की प्रातींय शाखा का गठन हुआ था और उसके आरंभिक नेता किसान सभा आंदोलन में सक्रिय थे।

उन दिनों दलित और पिछड़े आंदोलन के प्रति कम्युनिस्टों ने या तो अवहेलना किया या फिर विघटनकारी आंदोलन के रूप में उसके विरोध का रुख ही अख्तियार किया था। इन आंदोलनों के प्रति एक समुचित कार्यनीति विकसित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

मुस्लिम लीग की वैचारिक–राजनीतिक धारा को छोड़कर ऊर्यक्त छः प्रमुख विचारधारात्मक–राजनीतिक प्रवृत्तियों के अलावा कई अनुशंगी धाराएँ भी थीं। अनेक आंचलिक–भाषाई समूह भी थे। कुछ आंचलिक–भाषाई आंदोलन और पिछड़ी जातियों के उत्थान का आंदोलन एक–दूसरे के साथ घुलमिल कर चले। बहरहाल, ये प्रवृत्तियाँ बंद श्रेणियाँ नहीं थीं। उनके बीच संवाद भी चलता रहता। उनके अनुयायियों और कार्यकर्ताओं के बीच आना–जाना होता रहता। अनेक लोग एक ही अंतर्विरोधों की ही अभिव्यक्तियाँ थीं– भारतीय राष्ट्र और साम्राज्यवाद के बीच अंतर्विरोध, जमींदारों और किसानों तथामजदूरों और पूंजीपतियों के बीच अंतर्विरोध, उच्च जाति सवर्णों और पिछड़ों तथा दलितों के बीच सामाजिक भेदभाव तथा उत्पीड़न से उत्पन्न अंतर्विरोध, विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच अंतर्विरोध, आदि। कोई समाज एक ही साथ अपने भीतर पहचान की अनेक परतें लिए रहता है। बहरहाल, स्वतंत्रता के बाद जनतांत्रिक प्रणाली में इन सभी वैचारिक–राजनीतिक प्रवृत्तियों के बीच अपने–अपने जनाधारों के साथ प्रतियोगिता चली और कालक्रम से लगभग सभी धाराएँ आंचलिक, प्रादेशिक या फिर केंद्रीय स्तर पर सत्ता में सहभागी बनी।

बहरहाल, इसी जद्दोजहद् के बीच, इसी संघर्ष और संश्रय के बीच दलित आंदोलन को अपनी राह बनानी थी।

इस संक्षिप्त पृष्ठभूमि के बाद, अब बिहार के दलित आन्दोलन की चर्चा जरूरी है। आजादी के आरंभिक वर्षों में दलित आंदोलन की माँगों के परिप्रेक्ष्य में कई कदम उठाए गए। संविधान की धारा 17 के तहत अस्पृश्यता पर, किसी भी रूप में उसके व्यवहार पर पाबंदी लगा दी गई। प्रदेश में (1949) एवं केंद्रीय स्तर पर (दि अनटचेबिलिटी एक्ट, 1955) अस्पृश्यता को दंडनीय अपराध बना दिया गया। विधान सभा और संसद में सीटों के आरक्षण पर पहले ही अमल हो चुका था, सरकारी नौकरियों में आरक्षण भी लागू किया गया। दलित छात्रों/छात्राओं के लिए छात्रवृत्तियों और छात्रावासों तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्थिा प्रणाली शुरू की गई। केंद्रीय स्तर पर न्यूनतम मजदूरी कानून (1948) बना, दलितों और आदिवासियों के लिए पृथक कल्याण विभाग और उसका एक पृथक मंत्रालय बनाया गया। आगे चलकर, उनके रोजगार तथा व्यवसाय के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु निगम बने.....अतीत की तुलना में यह सब महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं। फिर भी जमीनी स्तर पर स्थिति अब भी काफी हद तक पहले की तरह ही थी। दलितों के प्रति सवर्ण जातियों की मानसिकता में खास परिवर्तन नहीं आया था। उनके साथ भेदभाव औरउन पर अत्याचार की घटनाएँ घटती ही रहतीं। उसके बीच साक्षरता अब भी नाम–मात्र ही थी। उनकी विशाल आबादी अब भी कमिया थी। जमींदारी–उन्मूलन का इस पर कोई खास असर नहीं पड़ा था।

---

[10] फाइल नं. 6/1944 (कांफिडेंशियल), राज्य अभिलेखागार, पटना।

आजादी के समय दलितों की स्थिति

जुलाई, 1949 में हरिजन के उत्थान के लिए पंचवर्षीय योजना तैयार करने के उद्देश्य से बिहार सरकार ने एक हरिजन जाँच समिति का गठन किया था। इस समिति के अध्यक्ष थे ए.वी. ठक्कर और इसके सदस्य थे– अर्थशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर और पब्लिक इंस्ट्रक्शन के निदेशक गोरखनाथ सिन्हा, फराने पटना विश्वविद्यालय के कुलपति सारंगधर सिंह, प्रो. बलदेव नारायण, बिहार हरिजन सेवक संघ के एन.एन. सिन्हा, महावीर दास और विधायकगण चंद्रिका राम, जमुना प्रसाद सिन्हा, भागवत प्रसाद और जयदेव प्रसाद। समिति ने नवंबर 1952 में अपनी रिपोर्ट सौपी थी।[11]

समिति ने अपनी जाँच–पड़ताल के क्रम में पटना, मुजफ्फरफर, आरा, बेतिया, भागफर, फरुलिया, रांची, दरभंगा, छपरा और डाल्टनगंज का दौरा किया। वे सुदूर गाँव में गए। एक प्रश्नावली की 5000 प्रतियाँ वितरित की, हालाँकि मात्र 85 लोगों ने उनका जवाब देना मुनासिब समझा। समिति ने हरिजनों की वास्तविक जरूरतों और उनको पूरा करने के उपायों पर विचार करते हुए अपनी अनुशंसाओं को आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक और राजनीतिक श्रेणियों में वर्गीकृत किया। समिति की रिपोर्ट के कुछ महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे :

1. हरिजनों की आर्थिक दुर्दशा में कोई खास फर्क नहीं आया था। गाँव में अधिकांश हरिजन कमिया थे। उनसे बेगार श्रम लिया जाता था। 1920 के बिहार एंड उड़ीसा कमियौती एग्रीमेंट एक्ट से उन्हें कोई राहत नहीं मिली थी। वे कर्ज में डूबे थे और सूद की दर सालाना 20 से 75 फीसदी तक थी। समिति ने कमियौती एक्ट के बारे में लोगों को जागरूक करने और बेगार तथा कमियौती को दंडनीय अपराध घोषित करने की सिफारिश की थी।
2. समिति ने पाया कि हरिजनों के पास प्रायः अपना घर नहीं था। गाँवों में वे अलग–अलग टोलों में रहते थे, जहाँ मामूली सुविधाएँ भी नहीं थी। शहरों में भी वे काफी गंदी बस्तियों में बसे थे और मैला ढोने से लेकर कपड़े साफ करने जैसे कामों में लगे थे। समिति ने गाँवों में परती जमीन हरिजनों को बंदोबस्त करने, हर साल उनके लिए लगभग 200 घर बनवाने और इन घरों में सस्ते दर पर बिजली उपलब्ध कराने का सुझाव दिया था। साथ ही, दो सौ परिवारों को एक साझा कुटीर उद्योग के साथ सामुदायिक रूप से बसाने का भी प्रस्ताव था। नगरपालिका के भंगियों के लिए समिति ने समान काम के लिए फरुष और महिलाओं को समान वेतन देने, स्थायी रोजगार की व्यवस्था करने, साप्ताहिक पगार देने और मान्यता प्राप्त एजेंसियों से नकद ट्टण देने का सुझाव रखा था।
3. शिक्षा के क्षेत्र में स्थिति यह थी कि 1851 में मैट्रिक की परीक्षा देने वाले कुल 37,721 छात्रों में हरिजन छात्रों की संख्या मात्र 392 थी। समिति ने मुफ्रत ट्यूशन, आम और तकनीकी संस्थाओं में भर्ती, स्कूल तथा कॉलेज लाइब्रेरी की सुविधा, फस्तक अनुदान, छात्रवृत्ति तथा छात्रावासों के प्रबंध का सुझाव रखा था।
4. समिति ने क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट कमिटी की सिफारिशों का भी समर्थन किया था। हालाँकि रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक यह एक्ट रद्द किया जा चुका था।
5. समिति ने पाया क स्थानीय निकायों और अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं में दलितों का प्रतिनिधित्व नाम मात्र ही था। यही हाल सरकारी नौकरियों में भी था। समिति की नजर में राजनीतिक इच्छा–शक्ति की कमी के कारण इस सिलसिले में नीतियों का कार्यान्वयन नहीं हो पाया था। निर्देशों का पालन करने के बजाए उनका उल्लंघन ज्यादा हुआ था। समिति ने सिफारिश की थी कि सरकारी सेवाओं में जब तक हरिजनों की संख्या प्रदेश में उनकी आबादी के अनुपात के बराबर नहीं हो जाती, तब तक तमाम पदों पर उन्हें बीस प्रतिशत आरक्षण दिया जाए।

सिर्फ विधानसभा और संसद में उनका प्रतिनिधित्व (पूना समझौते के कारण) ठीक–ठाक था (भारतीय संविधान के तहत बिहार विधान सभा में उनके लिए 1952 में 46 सीटें आरक्षित थीं। इन 46 हरिजन विधायकों में कांग्रेस में 38, सोशलिस्ट पार्टी के 3, झारखंड पार्टी के 2, और अन्य 3 विधायक थे)।

प्रसंगवश, विधान सभा में उन दिनों दलितों का प्रतिनिधित्व पिछड़ी जायितों की तुलना में काफी ज्यादा था। 1946 में जब (भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत) दलितों के लिए 15 सीटों आरक्षित थीं, तब करीब 42 लाख आबादीवाले यादव समुदाय के मात्र 2 विधायक थे और कुर्मी तथा कोइरी समुदाय के 7।[12] (कायस्थ विधायक थे 20, भूमिहार ब्राह्मण 16 और राजपूत 18 थे)।

---

[11] दि इंडियन नेशनत्र 2 दिसंबर, 1952.

[12] विधान सभा वाद, विवाद; 3 फरवरी, 1947, पृ. 205.

हरिजन उत्थान के नाम पर किये जाने वाले खर्च की बावत विधानसभा में (मार्च, 1949) काफी गर्मागर्म चर्चा हुई थी। कटौती प्रस्ताव के जरिए मामला उठाते हुए मुहम्मद अब्दुल गनी ने यह तथ्य पेश किया कि अनुसूचित जाति के मुतल्लिक एस्टैब्लिशमेंट पर/नौकराने पर 2,07,573 रुपये!5 इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए राम गुलाम चौधरी ने कहा कि 16 जिलों के लिए चार प्रमंडलीय कल्याण अधिकारियों पर करीब 59,360 रु. खर्च हुए। 'अगर उसे हरिजन लड़कों की शिक्षा पर खर्च किया जाता तो कहीं ज्यादा अच्छा होता। इस प्रांत में हरिजनों की संख्या 43,40,369 है। उसमें करीब दस लाख लड़कों को शिक्षा दिलानी है। पंजाब ने हरिजनों के लिए 20 लाख रुपया दिया है और भूमिहीन हरिजनों को 2–3 एकड़ जमीन दिया गया है। मद्रास ने भी हरिजनों के उत्थान के लिए करीब–करीब 20 लाख रुपया दिया है। मद्रास ने भी हरिजनों के उत्थान के लिएकरीब–करीब 20 रुपया दिया है। बिहार सरकार को भी इस मद में कम से कम 20 लाख रुपए देना चाहिए।' उन्होंने आगे कहा कि इस मद में जो रुपया खर्च होता है, उसका बहुत बड़ा हिस्सा केन्द्र सरकार देती है। '1947–48 में 80,000 रुपये हरिजन छात्रवृत्ति के वास्ते केंद्र सरकार ने दिए थे। हमारे प्रांत में बहुत कम रुपए मिले हैं। पटना में मेहतर, मुसहर वगैरह जातियों से 950 दरख्वास्तें आई थीं, जिनमें केवल 20 लड़कों को छात्रवृत्ति दी गई। 47–48 में इस मद में जितने रुपए रखे गये थे, सन् 49 में कम कर दिए गए हैं। लड़कों के रहने के मकान की तरफ सरकार का उतना ध्यान नहीं है जितना ऑफिस का खर्च बढ़ाने की तरफ। सारे प्रांत में सिर्फ 100 लड़कों को छात्रवृत्ति मिली है। नतीजन बहुत से लड़के पढ़ाई छोड़कर चले गए। एक हरिजन जो बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का विशारद है, जिसका नाम महंगीराम डोम है, सरकार के कल्याण विभाग के लिए उम्मीदवार था, लेकिन उसको बहाल नहीं किया गया। मुजफ्रफरफर कॉलेज के एक इंटर फेल उम्मीदवार की बहाली की गई। क्या विशारद पास हरिजन से इंटर फेल उच्च वर्ग का हिंदू अच्छा होता है?' इस बहस में शक्ति कुमार ने भी हिस्सा लिया और इस बात पर क्षोभ व्यक्त किया कि पिछले वर्ष की तुलना में उस साल (1949 में) बहुत कम लड़कों को छात्रवृत्ति दी गई थी।

कल्याण विभाग में (जिस विभाग का उद्देश्य ही हरिजन–आदिवासी उत्थान था) हरिजनों की नियुक्ति का मामला इसी समय उठा था। इस विभाग में प्रमंडलीय हरिजन कल्याण अधिकारी तीन थे (पटना, तिरहुत और भागलपुर)। इन उच्च पदों पर दो ब्राह्मणों और एक कायस्थ थे। जिला कल्याण पदाधिकारियों के पदों पर (जिसके लिए योग्यता मेट्रिकुलेट और हरिजन–सेवा की प्रवृत्ति थी) कई हरिजनों की नियुक्ति की गई थी– 18 जिला कल्याण पदाधिकारियों में 10 हरिजन थे (पाँच कायस्थ और एक–एक ब्राह्मण, राजपूत और भूमिहार थे। छः के छः जिला आदिवासी कल्याण पदाधिकारी कायस्थथे)।6 लेकिन दिलचस्प मामलो तो निम्न पदों– किरानियों तथा चपरासियों में की गई बहाली का था। 1948 से 1949 के अप्रैल तक कुल 16 नियुक्तियाँ की गईं। लेकिन इनमें सिर्फ एक हरिजन चपरासी पद पर बहाल हुआ। चपरासी के पद पर एक ब्राह्मण की भी बहाली हुई थी। इसको लेकर भी विधान सभा में काफी बहस हुई जिसमें चेतू राम, सुंदर पासी, भागवत प्रसाद, सरदार हरिहर सिंह, शक्ति कुमार, जगन्नाथ सिंह आदि ने भाग लिया था। सरकार का कहना था कि योग्य हरिजन नहीं मिले। जगलाल चौधरी ने स्पष्टीकरण दिया, 'हाँ, योग्य हरिजन कल्याण विभाग और सचिवालय के अन्य विभागों में लिए जा सकते हैं। एक हरिजन की बहाली भी हुई है। इसके लिए उचित आदेश तो पहले ही दिए जा चुके हैं। यदि अफसरान उन आदेशों के पालन में ढीले पाए जाएँगे तो फिर से चेतावनी दी जाएगी अन्यथा विशेष आदेश की आवश्यता नहीं है।' यह था हरिजन कल्याण विभाग का हाल।

पुलिस विभाग में हरिजनों की यही स्थिति थी। 1954 तक बिहार के फलिस विभाग में मात्र 5 हरिजन जमादार थे जिनमें से एक को छोड़कर सभी आजादी के पहले नियुक्त हुए थे (एक की नियुक्ति 1950 में हुई थी)। आबकारी विभाग में एक भी सुपरिटेंडेंट या इंस्पेक्टर हरिजन नहीं था। उस विभाग में कुल 335 दारोगाओं में 19 और 1,235 सिपाहियों में 56 हरिजन थे।

बहरहाल, आजादी के तुरंत बाद, 7 फरवरी, 1948 को ही बिहार सरकार ने प्रदेश सरकार के अधीन पदों और सेवाओं में हरिजनों के लिए आरक्षण का आदेश जारी कर दिया था। बाद में 31 जुलाई, 1951 को नियुक्ति विभाग की ओर से नए निर्देश जारी किए गए। 1953 में इस नीति की समीक्षा करते हुए सरकार ने प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के पदों में दलितों के लिए साढ़े बारह फीसदी आरक्षण लागू किया (1951 की जनगणना में प्रदेश की कुल आबादी में दलित जातियों का यही अनुपात था)। उन चतुर्थवर्गीय सेवाओं और पदों में जिनसे राज्य की ओर से सीधी भर्ती की जाती थी, दलितों के लिए पच्चीस फीसदी सीटों का आरक्षण किया गया था। प्रमंडलों, जिलों और अंचलों में जहाँ स्थानीय अधिकारियों द्वारा बहाली की जाती थी, वहाँ के लिए एक फार्मूला बनाया गया जिसकी मूल बात आबादी के अनुपात में दलितों का आरक्षण थी। विधान सभा में विधायकगण उपर्युक्त आदेशों और नियमों की रोशनी में ही सरकार द्वारा की गई नियुक्तियों पर सवाल उठा रहे थे।

बिहार हरिजन बिल, 1949

1920 और 1930 के दशक में चले अस्पृश्यता–निवारण आंदोलन की स्वाभाविक परिणति के रूप में आजाद भारत की बिहार विधान सभा में फरवरी, 1949 में जगलाल चौधरी ने बिहार हरिजन बिल, 1949 पेश किया। इस बिल के तहत अस्पृश्यता को दंडनीय अपराध घोषित करते हुए, उसके लिए छः महीने की सजा और पाँच सौ रुपए के जुर्माने का प्रावधान था। बिल पर काफी जोरदार बहस हुई जिसमें राम बसावन राम, प्रभुनाथ सिंह, ललीफुर्रहमान, ललित मोहन सिंह, कालिका प्रसाद सिंह, चेतू राम, यमुना राम, शक्ति कुमार, राम गुलाम चौधरी, जीतू राम, लंबोदर मुखर्जी आदि विधायकों ने हिस्सा लिया। इसी चर्चा के बहाने बिहार में हरिजनों की स्थिति और सवर्ण समाज के रवैये पर अच्छी–खासी बहस भी हो गई। प्रस्ताव पेश करते हुए जगलाल चौधरी ने इस बहस का आगाज किया, 'इस बिल का मकसद है कि हरिजनों के खिलाफ कुछ चलन....जैसे कुओं से पानी न निकालने देना, मंदिरों में न जाने देना, औरों के सामने सवारी पर न बैठने देना, या सवारी वालों द्वारा उन्हें सवारी पर बैठाने से इनकार कर देना, होटलों में भोजन न करने देना, स्कूलों में और लड़कों के साथ न बैठने देना, इत्यादि... दूर किया जाए... आज तीस वर्षों से इंडियन नेशनल कांग्रेस तथा स्वर्गीय महात्मा गांधी के अथक परिश्रम के बाद और महात्म गांधी की मृत्यु के बाद अभी तक ये रिवाज अधिकांश लोगों में प्रचलित हैं.....यहाँतक कि कहीं–कहीं तो ऐसा हुआ है कि कोई हरिजन अपने दरवाजें पर खाट पर बैठा है और सामने से कोई उच्च वर्ग के आदमी जाते हैं तो उस हरिजन को उठ खड़ा होने के लिए बाध्य करते हैं.....इन्हीं बाधाओं को दूर करने के लिए यह कानून आपके सामने लाया गया है....'[13]

विधेयक पर विधानसभा में हुई दिलचस्प बहस की प्रस्तुति के बाद किसी टिप्पणी की जरूरत नहीं गई। यह बिल शीघ्र ही अधिनियम बन गया। बाद में इस अधिनियम को और सख्त बनाते हुए 'दि बिहार हरिजन एमेंडमेंट एक्ट, 1951 पारित किया गया।

इस संशोधित अधिनियम के पारित होने के करीब दो साल बाद इसकी धज्जियाँ उड़ाते हुए संत विनोबा और उनके दल पर बैद्यनाथधाम (देवघर) मंदिर के सामने हमला हुआ– महात्मा गांधी पर हुए हमले के करीब 19 साल बाद।

19 सितंबर, 1958 को संत विनोबा भावे अपने सहयोगियों और कुछ हरिजन बच्चों को साथ लेकर जब बैद्यनाथ मंदिर के प्रांगण में पहुँचें तो कुछ पंडे 'विनोबाजी लौट जावो', 'धर्म की रक्षा करो' जैसे नारे लगाने लगे। काफी शोरगुल होने लगा। हो–हल्ले के बीच विनोबा जी खुद लौटने लगे। लौटने के समय कुछ पंडों ने उन पर प्रहार किया। उन्हें और उनके दल के कुछ सदस्यों को हल्की चोंटे आईं, लेकिन उनके दल की कुसुम देशपांडे और देवघर कांग्रेस कमिटी के सचिव चंद्रेश्वर प्रसाद गंभीर रूप से घायल हो गए। ये लोग विनोबा जी को बचाने के क्रम में गंभीर रूप से आहत हुए थे। इस घटना की गूँज पूरे प्रदेश में सुनाई पड़ी– विभिन्न तबकों के लोगों, अखबारों, आदि ने इसकी कड़ी निंदा की। मुद्रिका सिंह ने 23 सितंबर को विधान सभा में काम रोको प्रस्ताव रखा। पहले तो प्रस्ताव की शब्दावली को लेकर ही काफी हंगामा हुआ। मूल प्रस्ताव में 'पंडों के दल द्वारा विनोबा पर हमले और संत विनोबा भावे की रक्षा करने में तथा सार्वजनिक पूजा–स्थल,मंदिर में हरिजनों के प्रवेश के संवैधानिक अधिकार को संरक्षण देने में सरकार की विफलता' की बात कही गई थी। काफी बहस के बाद प्रस्ताव को बदले हुए रूप में पेश किया गया– 'पंडा' शब्द हटा लिया गया और हरिजनों के मंदिर प्रवेश से संबंधित वाक्य भी गोल कर दिया गया। प्रस्ताव पर बहस में रामचरित्र सिंह, विनोदानंद झा, हरिहर प्रसाद सिंह, महेश प्रसाद सिंह, कूर्परी ठाकुर, मुरली मनोहर प्रसाद, मुद्रिका सिंह, दारोगा प्रसाद राय, प्रभुनाथ सिंह, बुहरानुद्दीन खां, शक्ति कुमार, कृष्ण बल्लभ सहाय, यमुना राम, बुद्धिनाथ झा 'कैरव', रामानंद तिवारी, धनराज शर्मा, नंद किशोर नारायण, कमलदेव नारायण सिंह, बिंदेश्वरी प्रसाद मंडल, जगतनारायण लाल, चंद्रिका राम आदि ने हिस्सा लिया। सदन ने हमले की निंदा की, लेकिन सरकार ने अपनी उदासीनता अथवा असफलता की बात स्वीकार नहीं की।'

बुद्धिनाथ झा 'कैरव' ने घटना का विस्तृत विवरण देते हुए बताया कि '... ..जिस समय संत विनोबा भावे देवघर पहुँचे, मैं बराबर उनकी सेवा में और आवश्यक प्रबंध में लगा रहा। उनका यह नियम है कि जिस देवस्थान में हरिजनों को नहीं जाने दिया जाता है, उसमें वे दर्शन को नहीं होते हैं। इस बात को उन्होंने अपने एक भाषण में भी कहा था। इसके बाद वहाँ के मुख्य फजारी के साथ पत्र–व्यवहार हुआ। अपने पत्र में वहाँ के मुख्य फजारी ने लिखा कि हरिजनों के प्रवेश में साधारणतः वहाँ कोई रुकावट नहीं आते हैं.....मुझे कोई आपत्ति नहीं है कि आप हरिजनों को लेकर यहाँ आवें....और लोग क्या करेंगे, उकनी जवाबदेही मैं नहीं लेता हूँ.... विनोदानंद झा, महेश्वर झा, म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन, प्रमुख पंडों और कुछ लोग जो कार्यकर्त्ता थे, उन लोगों ने कुछ व्यक्तियों से मेरी

[13] दि सर्चलाइट, 1 अप्रैल, 934.

बातचीत हुई और मुझे मालूम हुआ कि सब प्रबंध ठीक है। हमारे ऐसे आदमी को शक था कि पंडे लोग इतनी जल्दी इतने सभ्य हो गए कि विनोबाजी के साथ हरिजनों को खुशी से मंदिर में जाने देंगे.....विनोबाजी निश्चित समय पर कुछ हरिजन बच्चों को साथ लेकर चले।सरकारी अधिकारियों को कोई सूचना नहीं थी, सरकारी अधिकारियों की खबर रखनी चाहिए और रखते भी हैं। हमने सुना था कि सरकार की तरफ से विनोबाजी के साथ एक सी.आई.डी. संरक्षक भी है। वह वहाँ मौजूद था, उसे भी चोट लगी....हमारे साथी ने कहा कि एस.डी.ओ. साहब डिप्टी मिनिस्टर की आवभगत में थे, मगर यह बात बिल्कुल गलत है....वहाँ का वातावरण वैसा नहीं था, जो किसी प्रकार का संदेह किया जाता.... वह (विनोबा भावे) भारत के एक महान व्यक्ति हैं। इसीलिए इंतजाम के लिए बिनोदा बाबू और प्रमुख लोगों मंदिर के प्रांगण में खुद मौजूद थे..... सरकार की उदासीनता उसमें नहीं है।' उन्होंने कहा कि ...'उस घटना को लेकर बिहार की सभी जनता और विशेषकर देवघर की जनता का सर नीचा हे। विनोबा के साथ दुर्व्यवहार को लेकर सभी शर्मिदा हैं।'

कर्पूरी ठाकुर इससे संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने इसे बिल्कुल थोथी दलील करार दिया कि 'अफसरों ने पूरी जवाबदेही से काम लिया।' उन्होंने सदन को महात्मा पर हुए हमले की याद दिलाई और कहा कि यह हमला तब हुआ जबकि सरकार बिहार विधान सभा में 'दि बिहार हरिजन एक्ट, 1949' पारित कर चुकी है और यह कानून बन चुका है। उन्होंने मंदिर के प्रबंधन को पंडों के हाथों से लेकर एक समिति को सौंपने की भी माँग की। साथ ही इस पूरी घटना की जाँच कराने की भी मांग की गई।

मुरली मनोहर प्रसाद ने कहा कि देवघर में, कहा जाता है, पंडों के बीच एक समूह है जो 'सोंटा समाज' के रूप में जाना जाता है। इस सोंटा समाज ने देवघर के लोगों और वहाँ जाने वाले तीर्थयात्रियों में आंतक मचा रखा है। उनकी गतिविधियों के बारे में सबको पता है और स्थानीय अधिकारीगण सचमुच सतर्क और सावधान होते तो पर्याप्त कदम उठाते।[14]

बहरहाल, विनोबा भावे पर हमले की चारों तरफ निंदा हुई, लेकिन समाज में हरिजनों की प्रताड़ना और समय–समय पर उन पर हमले जारी थे। 1 अप्रैल, 1954 कोविधान सभा में कर्पूरी ठाकुर और वशिष्ठ नारायण सिंह ने पटना जिले के मसौढ़ी थाना अन्तर्गत सेवती गाँव में मोसम्मता सुंदरी मुसहरनी पर उसी गाँव के बेदादर सिंह द्वारा 28 मार्च 1954 को हमला करने और उसके घर में आग लगाने के प्रश्न पर कार्यस्थगन प्रस्ताव रखा था। 31 मार्च को फनः इसी बेदादर सिंह के संबंधियों पवित्र सिंह और बदरी सिंह ने मोसम्मात को मारा–पीटा। सरकार की ओर से रामचरित्र सिंह ने जाँच कराने का आश्वासन दिया।[15]

दलित नेता जानते थे कि कानून का, कड़ाई से कानून के क्रियान्वयन के लिए सरकार पर दबाव बनाने का अपना महत्त्व है, लेकिन समाज की मानसिकता में परितर्वन एक दीर्घकालीन संघर्ष की माँग करता था, 3 दिसंबर, 1952 को, उपर्युक्त घटनाओं के काफी पहले, बिहार दलित वर्ग संघ द्वारा अपने सम्मान में आयोजित एक समारोह में जगजीवन राम ने लोगों को याद दिलाया कि स्वतंत्रता आंदोलन में हरिजनों का योगदान अन्य उच्च वर्गों की तुलना में रत्ती भर भी कम नहीं रहा। 'अंग्रेजों ने फूट डालने की कोशिश की, आबादी की एक हिस्से को दूसरे हिस्से के खिलाफ खड़ा करने का प्रयास हुआ ताकि वे अपना प्रभुत्व बनाए रख सकें, लेकिन हरिजन उनके द्वारा बिछाए जाल में नहीं फँसे। उन्होंने अपने देशवासियों के साथ कंधा–से–कंधा मिलाकर काम किया....माँगने से सिर्फ भीख मिलती है, अधिकार माँगे नहीं जातेऋ इसके विपरीत, उन्हें जबर्दस्ती छीना जाता है....यह सोचना गलत है कि हरिजनों में क्रांतिकारी भावना का अभाव या फिर वे अन्याय को बर्बरताओं के खिलाफ अपना सिर नहीं उठा सकते....अगर लंबे समय तक हरिजनों को उनके न्यायोचित अधिकारों से वंचित रखा गया, तो भारत वर्गयु(में उलझ सकता है....'[16] करीब साढ़े तीन महीने के बाद प्रथम मुंगेर जिला पिछड़ा वर्ग सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में भी जगजीवन राम के यही तेवर थे। यह सम्मेलन ताराफर के शहीद बाग में आयोजित किया गया था। सम्मेलन में करीब पचास हजार लोग उपस्थित थे। मुंगेरमुख्यमंत्री का गृह जिला था। पिछड़े तथा दलित नेताओं और मंत्रियों की उपस्थिति एवं उनके तेवर कांग्रेसी नेतृत्व और मुख्यमंत्री के लिए एक संदेश था। इस सम्मेलन के माहौल का जायजा लेने के लिए कुछ नेताओं के भाषणों का संक्षिप्त उ(रण ही पर्याप्त होगा।[17]

जगजीवन राम : ''मैं वर्ग संघर्ष नहीं चाहता। पर जिनके पास लक्ष्मी है, उनसे मैं यह कहना आवश्य चाहता हूँ कि बर्दाश्त करने की एक सीमा होती है और उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि बाँध टूट जाने पर जल की धारा इतनी तीव्र

---

[14] विधान सभा वाद, विवाद; 1 अप्रैल, 1954.

[15] विधान सभा वाद, विवाद; 1 अप्रैल, 1954.

[16] दि इंडियन नेशन, 4 दिसंबर, 1952.

[17] पिछड़ा वर्ग' (पिछड़ा वर्ग संघ का प्रमुख पत्र) वर्ष 5, अंक 3–4, 18 मई, 1953

हो जाती है कि प्रलय भी मचा सकती है... हमने आवाज उठाई है– जमीन उसकी हो, जो उसे जोतता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब तक ऐसी व्यवस्था नहीं हो जाती तब तक खेतों की उपज बढ़ नहीं सकती। वस्तुतः खेत उसका ही होना चाहिए जिसकी बाजुओं में हल चलाने की शक्ति हो....जब हरिजनों और पिछड़ी जातियों को कुछ रियायत होती है तो लोग समझते हैं कि उनका बहुत उपकार कर दिया गया। पर मैं आपसे कहता हूँ जो उपकार की भावना से आता है, उसे आप स्वीकार न करें– वह तो आपका हक है.... एक दिन ऐसा भी समय आ सकता है, जब हम समझ लेंगे कि इस प्रकार हमें हम प्राप्त नहीं होगा, तो विद्रोह और विध्वंस भी करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। मैं उच्च वर्ग के लोगों का ध्यान दुनिया में हुई क्रान्ति के इतिहास की ओर ले जाना चाहता हूँ और उनसे कहता हूँ, यदि वे चाहते हैं कि भारत में उनकी फनरावृत्ति न हो तो वे अपना दृष्टिकोण बदलें.....मैं सकुंचित और जातीयता के दृष्टिकोण से नहीं देखता वरन् राष्ट्रीयता से ही इन चीजों को देखता हूँ, जो काँग्रेस का बुनियादी उसूल है। आप लोग इस बात को नोट कर लें कि समाज को बदलने का रास्ता काँटों का नहीं, वरन् आग का रास्ता होता है....''

वीरचंद पटेल : ''पिछड़ा वर्ग का आन्दोलन भारत का सबसे बड़ा आंदोलन है– उसमें भी बड़ा जो अंग्रेजों के समय में उसकी दासता से मुक्ति के लिए राष्ट्रपिता बापू के नेतृत्व में चलाया गया था....जगजीवन बाबू की वाणी में हिन्दुस्तान कीभावी क्रांति बोल रही थी....'' (वीर पटेल तब बिहार सरकार के उपमंत्री थे)

रामरूप प्रसाद राय : ''कांग्रेस किसी जाति या समुदाय की बपौती नहीं ..... हिंदुस्तान की आजादी में दलित और पिछड़े वर्ग ने भी अहम बलिदान दिया है...अभी मैंने कल सुल्तानगंज थाने में भागलफर कमिश्नरी के शहीदों की लिस्ट टंगी देखी है, उसमें 65 में से 48 पिछड़े वर्ग के थे। पिछड़ा वर्ग राष्ट्र की रीढ़ है, समाज की रीढ़ है, यह कांग्रेस की भी रीढ़ है....देश की बागडोर अपने हाथों में लेने का, अपना अधिकार और उचित हिस्सा मांगने का, दया की भीख नहीं....जगजीवन राम भारत के स्तालिन हैं। जिस तरह भूखे नंगे चमार के लड़के ने रूस की काया पलट दी, श्री राम हिंदुस्तान की काया पलट देंगे। वह जो मंत्र हमें आज दे रहे हैं, वह मंत्र प्रफांस की जनक्रांति से पहले प्रफांस की जनता को रूसो से मिला था.....'

इस सम्मेलन में बिहार सरकार के न्याय मंत्री शिवनंदन प्रसाद मंडल, अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ के मंत्री द्वारका प्रसाद अरुण, बिहार लेखक संघ के सभापति शुकदेव प्रसाद वर्मा 'विप्लवेंद्र', विधायिका सुमित्रा देवी आदि के भी ऐसे ही भाषण हुए।

दरअसल, पिछड़ों और दलितों की इस गोलाबंदी का मकसद सरकार और पार्टी पर दबाव पैदा करना था। यह कांग्रेस की अंदरूनी राजनीति और रस्साकशी का एक अंग था। इस गोलबंदी से मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह भी काफी नाराज थे और उन्होंने जातीयता फैलाने के प्रयासों पर खुलकर बोला भी था (आर्यावर्त; 9 मई, 1953)। हालांकि 'पिडड़ा वर्ग' ने अपने उसी अंक में इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा, 'विगत 6 मई, 1953 को ताराफर में बिहार के मुख्यमंत्री डॉ. श्रीकृष्ण सिंह ने किसानों के बीच अपने भाषण क्रम में पिछड़ा वर्ग और दलित वर्ग के नेताओं के प्रति जो निराधार आरोप लगाया है, उस पर पिछड़ा वर्ग परिवार रोष एवं क्षोभ प्रकट करता है।'

इसी समय 8 से 11 दिसंबर, 1954 को पिछड़ा वर्ग आयोग ने दो दलों में बिहार के विभिन्न जिलों का दौरा किया।[18] इसने करीब 2000 लोगों के साक्ष्य लिए, अनेक संगठनों से मुलाकात की। करीब 200 संस्थाओं ने उसे स्मारपत्र सौंपा। भागलफर नगरपालिका के उपाध्यक्ष महावीर दास ने अपने ग्यारह–सूत्री स्मारपत्र में 'अपराधी जातियों' के फर्नवास, अस्पृश्यता–निवारण और गैर–सरकारी एजेन्सियों के मार्फत लागू कराने, आदि की माँग रखी। रघुनंदन राम, जगलाल चौधरी, जयदेव प्रसाद, दुलारचंद राम, किशोरी राम आदि विधायकों और पार्षदों ने भी आयोग से मुलकात की। इन्होंने भी अस्पृश्यता समापत करने, पर्याप्त शैक्षणिक सुविधाएँ देने तथा सरकारी सेवाओं में नियुक्तियों की गारंटी करने की माँग रखीं। बेतिया में विधायक जगन्नाथ प्रसाद स्वतंत्र के नेतृत्व में 500 हरिजन कार्यकर्ता आयोग से मिले और हरिजनों को जमीन देने की माँग की। चंपारण जिला दलित वर्ग संघ तथा बेतिया सबडिविजनल संघ की ओर से भी ज्ञापन दिए गए।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि दलित आंदोलन जहाँ एक ओर कांग्रेस के ऊपर दबाव बनाने के लिए पिछड़ा वर्गों के साथ अपने संश्रय के संकेत दे रहा था, वहीं नीची जमीनी स्तर पर उसे कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से भी चुनौती मिल रही थी और उन दिनों कम्युनिज्म के विश्वव्यापी प्रसार, खासकर चीनी क्रांति की पृष्ठभूमि में यह चुनौती काफी वास्तविक थी। तथापि उपर्युक्त दोनों संभावनाओं को मूर्त रूप देने में अभी दशाब्दियों का वक्त लगना था।

स्वतंत्रता के बाद सरकारी और गैर–सरकारी दोनों स्तरों पर दलित वर्गों के उत्थान के लिए दीर्घकालिक तथा फौरी योजनाओं पर भी काफी चर्चा चली। अनेक कार्यक्रमों और योजनाओं के प्रारूपों पर बहस–मुबाहसे के बीच सर्वानुमति के कई मुद्दे उभरे और उन्हें कानून तथा अधिकारिक कार्यक्रम का हिस्सा भी बनाया गया। 1951

---

[18] दि सर्चलाइट, 11 और 12 दिसंबर, 1954.

में भारतीय दलित वर्ग संघ16 के महासचिव और बिहार के सांसद चंद्रिका राम ने हरिजनों केलिए एक सामग्रिक योजना तैयार की थी जिसमें करीब–करीब सभी पहलुओं – सामाजिक मुक्ति, शैक्षणिक सुविधाएँ, सार्वजनिक सेवाओं में नौकरी, नशाबंदी, जाँच आयोग की स्थापना, सामाजिक तथा धार्मिक अयोग्यताओं की समाप्ति, आर्थिक न्याय, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रशासनिक और वित्तीय उपयों को समेटने की कोशिश की गई थी। इस योजना में संविधान के प्रावधानों, राज्यों द्वारा पारित कानूनों तथा विभिन्न समितियों तथा आयोगों के सुझावों को भी ध्यान में रखा गया था।[19]

पूरे पचास के दशक के दौरान बिहार राज्य दलित वर्ग संघ ने दलित–प्रश्न को केंद्र कर समाज में जनजागरण अभियान चला रखा था। प्रखंड से लेकर राज्य–स्तरीय सम्मेलन तो हो ही रहे थे, साथ ही विभिन्न अंचलों/प्रखंडों में सामाजिक मेलों का आयोजन किया जाता था। अस्पृश्यता–निवारण के लिए अनेक कार्यक्रम भी चलाए जा रहे थे। आजादी के पहले के ऐसे कार्यक्रमों की तुलना में फर्क यह हुआ था कि अब विधायकों एवं मंत्रियों की उपस्थिति के कारण ये सरकारी समारोहों में दबलते जा रहे थे। यहाँ दलित वर्ग संघ की इन गतिविधियों का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया जा सकता है।

1958 में पूरे साल बिहार के अनेक प्रखंडों में सामाजिक मेलों का आयोजन किया गया।[20] इस समय तक केंद्रीय स्तर पर भी अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 लागू हो चुका था। इस अधिनियम के तहत 'कोई भी अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को सार्वजनिक भोजनालय, होटल, धर्मशाला, मंदिर, नदी, तालाब, कुआँ, शिक्षा–संस्था, छात्रावास आदि में प्रवेश या उनका उपयोग करने से रोकता है, तो उसे 6 मास तक का कारवास या 500 रु. का अर्थदंड या दोनों एक साथ दिए जा सकते हैं।' सामाजिक मेलों में दलितों से संबंधित संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों की भी जानकारी दी जाती। डॉ. बाबा साहब अंबेडकर के धर्मांतरण के मद्देनजर उन दिनों जगजीवन राम का एक उद्धरण बार–बार उद्धृत किया जाता,'हरिजन जनता राम और कृष्ण को किसी दूसरी हिंदू से कम प्रेम नहीं करती और वह हिंदू धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म में दीक्षित होने की भी सलाह नहीं सुनेगी.... . कायरों को हर समाज में कुचला जाएगा, किंतु हरिजन कायर नहीं हैं। इन मेलों का आरंभ प्रभात फेरी से होता। फिर हरिजन मुहल्लों की सफाई की जाती। सार्वजनिक कुओं से पानी निकाला जाता। मंदिरप्रवेश का कार्यक्रम होता। फिर प्रसाद वितरण और भजन–कीर्तन चलता। इन मेलों में हरिजन–समस्या को केंद्र कर कुछ चुनिंदा नेताओं के व्याख्यान होते, फिर सार्वजनिक सभा होती। शाम में जनसंपर्क विभाग की ओर से सामाजिक प्रश्नों पर बनी फिल्मों का प्रदर्शन किया जाता और स्थानीय लोग अपने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते। इन कार्यक्रमों में हरिजन तथा गैर–हरिजन सभी लोग भाग लेते। ये सभी मेले गाँव में आयोजित किए जाते। 1958 में आयोजित ऐसे कुछ प्रमुख अस्पृश्यता–निवारण सामाजिक मेलों की सूची इस प्रकार है–[21]

1. 15 मार्च, 1958–रूपसागर बिगहा, गया। मेले का उद्घाटन सिंचाई मंत्री दीप नारायण सिंह ने किया। अन्य प्रमुख उपस्थित नेताओं में थे चंद्रिका राम, शक्ति कुमार और भागवत प्रसाद, एम.एल.सी.।
2. 16 मार्च, 1958 – गढ़फरा, थाना बखरी, जिला– मुंगेर।
3. 13 अप्रैल, 1958, नौआगढ़ी, मुफसिल थाना, मुंगेर।
4. 17 अप्रैल, 1958 – पटनदेई, घुड़मुड़िया, नवादा। (उद्घाटनकर्ता चंद्रिका राम)
5. 19 अप्रैल, 1958 – अतरी गया। (उद्घाटनकर्ता सांसद किशोरी राम)
6. 27 अप्रैल, 1958 – धुरीआ पिपरा, थाना बारून, औरंगाबाद।
7. 27 नवंबर, 1958 – बेलागंज, गया (सभापति थे गया जिला दलित वर्ग संघ के शक्ति कुमार)
8. 29 नवंबर, 1958 – ठक्कर बापा जन्म दिवस समारोह हरिजन दिवस के रूप में मनाया गया। ग्राम रमुनिया, जिला मुंगेर।

1956 ई. में राज्य दलित वर्ग संघ के गया में हुए वार्षिक अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव के अनुरूप राज्य सरकार ने अन्य सामाजिक संस्थाओं की भांति बिहार राज्य दलित वर्ग को अस्पृश्यता निवारण के प्रसार कार्य हेतु 1957–58 में पहले पहल इस शर्त के साथ अपना 27,060 रु. का अनुदान दिया था कि दिए गए अनुदान की 20 प्रतिशत राशि संघ अपने पास से मिलाकर खर्च करे तथा संघ केवल पाँच जिलों– पटना, गया, शाहाबाद, मुंगेर और भागलफर तक ही अपना कार्यक्षेत्र रखे। इन दोनों शर्तो का पालन करना संघ के लिए काफी कठिन था।

---

[19] चन्द्रिका राम, 'ए प्लान फॉर हरिजन्स एंड अदर बैकवर्ड क्लासेज' नई दिल्ली, 1951.

[20] आर्यावर्त, 5 अप्रैल 1955.

[21] बिहार राज्य दलित वर्ग संघ का वार्षिक प्रतिवेदन, 1958–59, पटना, 1959.

1958–59 में यह राशि बढ़ाकर 37,186 रु. कर दी गई। इस योजना के तहत संघ ने अस्पृश्यता निवारण हेतु कई कार्य किए। 1958–59 में ही सार्वजनिक सेवा में दलित वर्गों के आरक्षण का मामला फनः चर्चा में आया। दस साल बाद इसकी अवधि बढ़ाने का प्रश्न था। इस विषय पर अखबारों में संपादकीय लिखे गए। दलित तथा पिछड़े वर्ग की परिभाषा पर तर्क–वितर्क हुए। इन सुविधाओं पर फनर्विचार की माँग की गई, तो इन सुविधाओं की समय–सीमा बढ़ाने की आवाज बुलंद करनेवाले भी पीछे नहीं रहे। कांग्रेस के कई नेता, नौकरशाही में जमे कट्टर सवर्ण लोग और समाज में मौजूद कट्टरपंथी शक्तियाँ दरअसल दलितों के लिए आरक्षण को कबूल नहीं सकी थी। वे 'दस साल बीत गए, अब और नहीं', 'योग्यता की अवहेलना तथा कार्यकुशलता के क्षय' के कारण 'देश की हो रही बर्बादी' को रोकने की बात कर रहे थे। नवंबर, 1959 में मदुरै में भारतीय दलित वर्ग संघ के 16वें वार्षिक अधिवेशन में यह मुद्दा प्रमुख रूप से उठा। इस सम्मेलन में देश भर के करीब 3000 प्रतिनिधि उपस्थित थे।[22] अपने उद्घाटन भाषण में जगजीवन राम ने दलित वर्गों के लिए आरक्षण जारी रखने के खिलाफ अखबारों में छपे वक्तव्यों का जवाब दिया। सामुदायिक विकास विभाग के केंद्रीय उपमंत्री बी.एस. मूर्ति ने भूमि सुधार में देरी करने वाले राज्यों को चेतावनीदी और कहा कि हरिजन सब कुछ देख–सुन रहे हैं। उन्होंने 9 करोड़ परती जमीन को दलित वर्गों के बीच वितरीत करने और उन पर कोऑपरेटिव खेती का भी सुझाव रखा। सम्मेलन में सरकार से काफी बोर्ड तथा टी बोर्ड की तर्ज पर टैनरी बोर्ड बनाने का भी आग्रह किया गया। खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी को कड़ाई से लागू करने और दलितों की शिक्षा के प्रश्न पर भी जोर दिया गया। 29 जनवरी 1961 को बगहा (चंपारण) में आयोजित चंपारण जिला दलित वर्ग संघ के सम्मेलन में एक बार फिर जगजीवन राम ने भूमि सुधार और विभिन्न रूपों को कोऑपरेटिव खेती की जरूरत पर बल दिया।

आरक्षण जारी रखने के प्रश्नों पर प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू को भी अपना रुख स्पष्ट करना पड़ा। मौका था 5 फरवरी, 1961 को आयोजित अखिल भारतीय अनुसूचित आदिम जाति सम्मेलन। अपने उद्घाटन भाषण में नेहरू जी ने कहा, 'जाति–भेद खत्म करने का बराबर प्रयत्न किया जा रहा है। पिछड़ी जातियों को सरकार से सहायता लेने का पूरा–पूरा हक हैं किन्तु उन्हें अपनी तरक्की करने के लिए स्वयं भी कोशिश और परिश्रम करना चाहिए....इसलिए मैं इस बात को कतई पसंद नहीं करता हूँ कि किसी विशेष जाति या धर्म के लोगों का कोई सम्मेलन हो। सरकार तीसरी पंचवर्षीय योजना में अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा कर देगी जिससे सभी को समान अवसर मिलेगा.... जबकि सरकार की ओर से पिछड़ी जातियों की शिक्षा पर इतना खर्च किया जा रहा है तब दस वर्षों बाद यह स्थिति कदापि नहीं रहेगी कि सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखा जाए और न उनको इस तरक की मांग ही उचित प्रतीत होगी। अगले दस वर्षों में अनुसूचित अथवा पिछड़ी जाति नाम की कोई चीज नहीं रह जाएगी।. ...'[23]

खैर, दस वर्षों बाद इन वर्गों की क्या स्थिति हुई, यह हम बाद में देखेंगे। यहाँ हम देखेंगे कि खुद उन दिनों बिहार में दलित वर्ग के नेता, आजादी के तेरह वर्षों बाद,अपनी तत्कालीन और भावी स्थिति के बारे में क्या सोच रहे थे।

10–11 जुलाई, 1960 को बिहार दलित वर्ग संघ का ग्यारहवाँ अधिवेशन गांधी सरोवर, पटना सिटी में आयोजित हुआ। अध्यक्षता की थी बिहार सरकार के उपमंत्री चंद्रिका राम ने। इस सम्मेलन में दलित प्रतिनिधियों के बीच दलितों के उत्थान से संबंधित लगभग सभी प्रश्नों पर प्रगति की अत्यंत धीमी चाल को लेकर गहरा असंतोष था। अध्यक्ष भी इस असंतोष को व्यक्त करने में नहीं चूके।[24]

दलितों की स्थिति में सुधार किस गति से हो रहा था, इसे जाने के लिए साठ के दशक के कुछ आंकड़ों पर ध्यान दिया जा सकता है। सन् 61 की जनगणना में[25] बिहार में दलितों की आबादी थी 65,36,875 जो कुल आबादी (4,64,55,610) का 14.05 फीसदी थी। अनुसूचित जातियों के मुख्य श्रमिकों को खेत मजदूरों का अनुपात 54.93 फीसदी था, जबकि काश्तकारों का मात्रा 23.88 फीसदी। अनुसूचित जातियों में मात्र 5.9 फीसदी साक्षर थे।[26] (अखिल भारतीय पैमाने पर यह 10.3 फीसदी था)

---

[22] हिंदुस्तान स्टैंडर्ड; 11 नवंबर, 1959.

[23] आवाज, 6 फरवरी, 1961.

[24] उन दिनों बिहार विधान सभा में 'दि बिहार लैंड रिफॉर्म्स (एमेंडमेंट) एक्ट, 1960 पारित किया गया।

[25] 1961 की जनगणना रिपोर्ट

[26] 1921 की जनगणना में अछूतों के श्रेणीकरण को लेकर काफी अस्पष्टता थी। उनके बीच साक्षरता दर तब 1.5 प्रतिशत बताई गई थी। 1931 की जनगणना में जिन जातियों की 'एक्सटीरियर कास्ट्स' (बाह्य जातियों) के रूप में वर्गीकृत किया गया, उसमें साक्षरता दर बिहार और उड़ीसा प्रदेश में मात्र 0.6 प्रतिशत थी।

बिहार में कुल खेत मजदूरों में दलित खेत मजदूरों का अनुपात 39.88 फीसदी था। 1965–66 में वितरित कुल जमीन (22,580 एकड) का मात्र 4.69 फीसदी (1. 60 एकड़) दलितों के बीच वितरित किया गया था। पूरे भारत में यह सबसे कम था। मद्रास में कुल वितरित जमीन का 61.86 फीसदी, गुजरात में 58.60 फीसदी, महाराष्ट्र में 39.24 फीसदी, उत्तर प्रदेश में 38.94 फीसदी और पश्चिम बंगाल में 37.65 फीसदी दलितों के बीच वितरित किए गए थे। स्वतंत्रता के बाद अगस्त 1965 तक अनुसूचित जातियों और जनजातियों के नाम पूरे देश में 39,16,676 एकड़ परती जमीन बंदोबस्त की गई थी। इसका करीब आधा हिस्सा (17,85,000 एकड़) सिर्फ महाराष्ट्र में ही बंदोबस्त किया गया था। बिहार में इस दौरान बंदोबस्त की गई परती जमीन थी मात्र 1,04,032 एकड़।[27] जुलाई 1960 से जून 1961 के बीच नेशनल सैंपल सर्वे द्वारा किएगए एक सर्वेक्षण (सोलहवाँ राउंड) के अनुसार बिहार के ग्रामीण इलाकों में 65.99 फीसदी अनुसूचित परिवार ट्टणगस्त थे (शहरी इलाकों में यह अनुपात 54.49 था)।[28]

सरकारी नौकरियों में, जैसा कि हम पहले जिक्र कर चुके हैं, 1953 से ही प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणियों के साढ़े बारह प्रतिशत पद दलितों के लिए आरक्षित थे। चतुर्थवर्गीय पदों पर यह आरक्षण पच्चीस फीसदी था। 1960 के एक आदेश के जरिए राज्य सरकार ने सभी चतुर्थवर्गीय पदों को अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों से भरने का निश्चय किया था, लेकिन बाद में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय के आलोक में उसे अपना आदेश वापस लेना पड़ा।[29]

बहरहाल, सरकारी नौकरियां में आरक्षण की वास्तविक स्थिति का अंदजा निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है–

बिहार में सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जातियों का वास्तविक प्रतिनधित्व

क्र. सं.	सेवा की श्रेणी	कुल कार्य बल		अनुसूचित जातियों की संख्या		प्रतिशत	
		1957	1964	1957	1964	1957	1964
1.	प्रथम श्रेणी	476	688	2	4	0.4	0.6
2.	द्वितीय श्रेणी	4,695	5,924	80	204	1.7	3.4
3.	तृतीय श्रेणी	64,905	1,12,830	1,781	4,962	2.7	4.4
4.	चतुर्थ श्रेणी	24,424	40,150	3,325	7,75	13.6	17.6

1966 के दौरान बिहार में केंद्र सरकार तथा राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में कुल 27,156 रिक्तियों की अधिसूचना जारी की गई। इनमें मात्र 512 रिक्तियाँ अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित रखी गई और इन 512 आरक्षित रिक्तियों में मात्र 137 नियुक्तियाँ कीगईं।[30]

निष्कर्ष

साक्षरता, जमीन वितरण और सरकारी नौकरियों में नियुक्तियों की बावत ये आंकड़े दलितोत्थान की गति का खुलासा कर देते हैं। केंद्र और राज्य सरकार भी इस तथ्य से भली–भांति अवगत थी। संसद और विधान सभा में इस संदर्भ में प्रश्न उठते रहते थे। इस पृष्ठभूमि में, हरिजन कल्याण के लिए केंद्रीय सलाहकार बोर्ड की अनुशंसा पर भारत सरकार के समाज कल्याण के लिए केंद्रीय सलाहकार बोर्ड की अनुशंसा पर भारत सरकार के समाज कल्याण मंत्रालय ने 27 अप्रैल, 1965 को अस्पृश्यता के प्रश्न और अनुसूचित जातियों के आर्थिक उत्थान तथा शैक्षणिक विकास की समस्या की समीक्षा करने के लिए एक समिति गठित की। समिति के अध्यक्ष एल. इलीाया पेरूमल थे। अन्य सदस्य थे– बी.के. गायकवाड़ (सांसद, उपाध्यक्ष), सी. दास (सांसद), आर अच्युतन (सदस्य), पी.एल. मजुमदार (समिति गठन के कुछ ही दिनों बाद इनका निधन हो गया), नारायण दीन, वी.वी. वाज (कानून मंत्रालय में ऑफिसर ऑन स्पेशल ड्यूटी)। समिति ने बिहार समेत अन्य राज्यों का दौरा किया और तीन प्रश्नों– अस्पृश्यता–निवारण, आर्थिक उत्थान और शैक्षणिक विकास – पर 1969 में अपनी विस्तृत रिपोर्ट सौंपी। (अच्युतन ने समिति की रिपोर्ट से अपनी असहमति दर्ज करते हुए अपना 'नोट ऑफ डिसेंट' रखा था)।

राजनीतिक रूप से दलित अभी भी मुख्यतः कांग्रेस के साथ थे। 1952 में कुल दलित विधायक (46) में कांग्रेस के विधायकों की संख्या 38, 57 में यह संख्या थी 40 में 34 और 62 में थी 41 में 32। लेकिन कांग्रेस के अंदर दबाव पैदा कर दलितोत्थान के काम में तेजी जाने का प्रयास कारगर नहीं हो रहे थे। दलितों के बीच से एक छोटा मध्यवर्ग आकार ले रहा था, लेकिन यह आजादी के बाद का मध्यवर्ग था।

---

[27] इलया पेरूमल समिति की रिपोर्ट, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 1969.

[28] वही।

[29] वही।

[30] वही।

शिक्षा, नौकरी में आरक्षण के साथ–साथ मजदूरी और जमीन के प्रश्न पर ग्रामीण इलाकों में टकराव तेजी से बढ़ रहे थे। 50 और 60 के दशक में बिहार के कई ग्रामांचलों में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में चले जुझारू किसान आंदोलन में दलित खेत मजदूरों की महत्वपूर्णभूमिका रही थी। सन् 66–67 में बिहार भयानक अकाल के दौर से गुजर रहा था। साथ ही कांग्रेस–विरोधी व्यापक जन आंदोलन से भी।

27 मार्च, 1967 को 19 कांग्रेसी सांसदों का एक शिष्टमंडल प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से मिला और उनसे अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए चलाए जा रहे विशेष कार्यक्रमों की प्रगति से संबंधित कई मुद्दे उठाए। पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में अनुसूचित जातियों के कल्याण पर 72 करोड़ रुपये खर्च किए जा चुके थे। यह तय हुआ कि इन जातियों के उत्थान के लिए दो मुद्दों पर शीघ्र कार्रवाई करने की जरूरत है– एक केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जातियों की भर्ती में सुधार, और दूसरा अनुसूचित जातियों के खेतिहर मजदूरों के नाम जमीन की बंदोबस्ती में तेजी लाना। एक का उद्देश्य नए उभरते दलित मध्यवर्ग को संतुष्ट करना था, जबकि दूसरे का उद्देश्य दलित खेत मजदूरों के विक्षोभ को शांत करना। यह भी निश्चय किया गया कि इन दोनों मामलों में काम की प्रगति की समीक्षा करने के लिए गृह मंत्रालय के अतिरिक्त सचिव एम.आर. यारडी की अगुवाई में एक छोटा कार्यदल बनाया जाए। बहरहाल, ये साठ के दशक के तूफानी दिन थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- खैरमोडे, चांगदेव डॉ. भीरामव आंबेडकर, खंड 7 व 9, महाराष्ट्र राज्य मंडल, 1988.
- गंजारे, एस.पी. (सं)– डॉ. बाबा साहेब आंबेडकरांचे भाषणे, खंड 2, अशोक पक्र ाशन, नागर
- गणवीर, रत्नाकर – महाड समता सगंर, भुसावल, 1981.. गणवीर, रत्नाकर – डॉ. बाबसाहेब आंबेडकराचें बहिष्कृत भारतातील अग्रलेख, रत्नमित्रा प्रकाशन, नागफर, 1981.
- गांधी, मो.क. – सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन, अहदाबाद, 1957.
- गांधी, राजमोहन – ए गुड बोटमन : एक एपोर्ट्रेट ऑफ गाधी, वाइकिंग, 1995.
- गोरे, एस.एस.– दि सोशल कांटेक्स्ट ऑफ एन आइडियोलॉजी, सजे पब्लिकशेन, नई दिल्ली, 1993.
- गोखले, जयश्री– फ्रॉम कंसेशंस टु कॉन्फ्रंटेशन, पॉप्युलर प्रकाशन मुंबई, 1993.
- घुर्ये, जी.एस.– कास्ट एडं रेस इन इंडिया, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, 1993.
- चंचरीक, कन्हैयालाल, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण
- मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण, 2000.
- जगताप, मुरलीधर– युगपुरुष महात्मा फुले, शिक्षा विभाग, मुंबई, 1993.
- जॉन्स, कैनेथे विलियम – सोशियों रिलिजस मूवमेंटस इन ब्रिटिश इंडिया, दि न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1989.
- जेलियॉट, एलीनर– फ्रॉम अनटचेबिल टु दलित, मनोहर प्र., दिल्ली, 1992.
- डॉक्युमेंट्स ऑफ हिस्ट्री आफ दि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, वॉ. 2, 1923–25.
- तेंडुलकर, डी.जी.– महात्मा, खंड 2, 3 व 7, पब्लिकेशंसा डिवीजन, दिल्ली,
- देसाई, महादवे – महादवे भाई की डायरी, भाग 2 व 3, जनजीवन प्र., अहमदाबाद।
- देसाई, महादेव – महादेवभाई की डायरी, भाग 1, 3, 5, 7, व 9, सर्वसेवा संघ, वाराणसी, 1972.
- देसाई, नीरा– वुमन इन इंडिया : इंपैक्ट ऑफ भक्ति मूवमेंट ऑन दि स्टेटस ऑफ इंडियन वुमन।
- नागराज, डी.आर.–दि फ्रलेमिंग फीट, साउथ फोरम प्रेस, बेंगलूर, 1993. ? नसे फील्ड– ब्रीफ व्यू ऑफ दि कास्ट सिस्टम।
- नहेरू, जवाहरलाल – आत्मकथा, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982.
- नैयर, सुशीला– महात्मा गांधी, वॉ. 4 (सत्याग्रह एट वर्क), नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1989.
- नैयर, सुशीला– महात्मा गांधी, वॉ. 5 (इंडिया अवेकंड), नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1989.
- प्यारे लाल – दि अर्ली फेज, वॉ. 1, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1965.
- प्यारे लाल– महात्मा गांधी : दि लॉस्ट फेज, वॉ, 1, बुक 2, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1966.
- प्यारे लाल – दि एपिक फास्ट, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1942. पंथम, थॉमस एव ं ड्यूश, कैनेथ एन. (सं.) – मॉडन पोलिटिकल थॉट इन
- इंडिया, सेज पब्लिकेशन, दिल्ली, 1986.
- पंडित, नलिनी – गांधी, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्लीन 1993.
- पंडित, नलिनी – आंबेडकर, ग्रंथाली, मुंबई, 1996.
- पंडित, नलिनी –जातिवाद आणि वर्गवाद, लाके वाड्मय गृह, मुंबई, 1996.
- पंडित, विवेक – एक हैंडबुक ऑफ पिवेंशन ऑफ एटर्ॉसिटीज, (एस.एस.टी)

cs80

हिंदी की स्त्रीवादी आलोचना के विकास में महिला आलोचकों का योगदान

शिवानी*
कल्पना**

शोध सार

आलोचना किसी भी रचना को उसकी समग्रता, उसके गुण-दोष के आधार पर देखना हैं। आलोचक रचना में छिपे मर्म , मुख्य संकेतो को पहचानता है। आलोचना समीक्षा भी नहीं है, न वह व्याख्या हैं। यह अवधारणाओं की खोज है ,और उसमें वस्तुओं, घटनाओं इन सभी को एक निश्चित परिप्रेक्ष्य और प्रक्रिया में रखकर देखने की जरूरत होती हैं। इसके जरिए अवधारणाओं का निर्माण होता हैं, नई अवधारणाएं बनती हैं, पुरानी धारणाओं को अपनी जरूरत के अनुसार ढूंढते हैं। इस पूरे क्रम में कई बार ऐसा होता हैं कि जिस साहित्य को पाठ्यक्रम के तौर पर आलोचना इस्तेमाल करती है, उस साहित्य के डामाडोल स्थिति को सही क्रम में व्यवस्थित करते हैं। साहित्य को आलोचना के जरिए धार और गति मिलती हैं। हिंदी साहित्य में आलोचना एक महत्वपूर्ण विधा रही हैं। परंतु इस आलोचना-परंपरा में स्त्रियों की उपस्थिति अपेक्षाकृत सीमित रही हैं। जहां महिला रचनाकारों ने उपन्यास, कविता, और कहानी में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई, वहीं आलोचना के क्षेत्र में उनकी भागीदारी को अक्सर नजरअंदाज किया गया हैं। महिला आलोचकों ने हिंदी साहित्य को कैसे समृद्ध किया, उन्होंने किन-किन समस्याओं का सामना किया और उन्होंने समाज को देखने की एक नई दृष्टि क्यों और कैसे दी, यह जानना न सिर्फ साहित्य के लिए, बल्कि समाज के लिए भी एक जरूरी कदम है।
बीज शब्द : स्त्रीवादी साहित्य, महिला आलोचना, स्वांतत्र्योत्तर हिंदी आलोचक पितृसत्ता, स्त्री-विमर्श, लैंगिक अस्मिता, सामाजिक यथार्थ, साहित्यिक पुनर्मूल्यांकन

हिंदी की स्त्रीवादी आलोचना का आरम्भ बहुत बाद में चलकर महादेवी वर्मा से माना गया हैं। आज जब हम महादेवी की बात करते हैं तो लोग सीधे "श्रंखला की कड़ियाँ"पहले बोलते हैं। स्त्री को लेकर 'सिमोन-द-बोउआर के सेकेंड सेक्स" के ही एक साल पहले उनकी 'श्रृंखला की कड़ियाँ आई और लगभग उनके बिंदुओं में भी बहुत कुछ समानता पायी जाती हैं। जो स्त्री सशक्तिकरण इस बीच हुआ उसने वो स्थितियाँ पकाई, अब यह और पकने की जरूरत है। "महादेवी वर्मा लिखती हैं, स्त्री न घर का अन्धकार मात्र बनकर जीवित रहना चाहती है, न देवता की मूर्ति बनकर प्राण प्रतिष्ठा चाहती है। कारण वह जान गई है कि एक का अर्थ अन्य की शोभा बढ़ाना है तथा उपयोग न रहने पर फेंक दिया जाता है।" सामाजिक विकास की प्रक्रिया में सक्रिय प्रागैतिहास कालीन, वैदिक कालीन, ब्राहमण कालीन सामाजिक व्यवस्था से लेकर अब के समय तक जब भी हम स्त्री के परिप्रेक्ष्य में बात करते हैं तो उसे पराधीन व सेक्स आन्जेक्ट के रूप में व्याख्यत करने या देवत्व के बोझ तले खुद के अस्तित्व को दम तोड़ते हुए देखते हैं। इस तरह स्त्री अस्मिता का प्रश्न स्त्री होने के साथ ही कहीं गौण होता गया हैं।

"रोहिणी अग्रवाल ने अपनी आलोचना में स्त्री विमर्श को मुख्य रूप से महत्व दिया है। उनकी आलोचना स्त्री के नजरिये स्त्री-लेखन के पाठ उसकी क्षमताओं, सीमाओं और अंतर्विरोधों का आकलन करती है। उनकी आलोचना इस तथ्य को रेखांकित करती है कि स्त्री-विमर्श का लक्ष्य पाठक में अब तक के अनदेखे को

* शोधार्थी– हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
** हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

देखने और गुनने की संवेदनशीलता विकसित करती है ताकि लैंगिक विभाजन से मुक्त मनुष्य और समाज की रचना के स्वप्न को साकार किया जा सके।"

"निर्मला जैन का साहित्यिक कर्म नव आलोचकों को भ्रमित होने से रक्षा करने में लगा हुआ है। उन्होंने ने ठीक लक्षित किया है कि 'आज के युवा आलोचक समसामयिक लेखन से इतने आक्रान्त हैं कि उनकी दृष्टि सुदूर अतीत तो क्या निकट अतीत के लेखकों पर भी नहीं जाती।' आज जहाँ समसामयिकता के प्रति अतिशय सजगता हमें आश्वस्त कर रही है, वहीं परम्परा से सम्बन्ध विच्छेद हमारी चिन्ता का कारण भी बन रहा है।"

मेरी चिंता भारतीय स्तर की हैं, भारतीय स्त्रीवाद पर बहुत अधिक क्रमबद्ध तरीके से नहीं मिलता। हिंदी साहित्य की दुनिया में लंबे समय तक पुरुष आलोचकों का बोलबाला रहा। महिला लेखिकाएँ भले ही रचनात्मक लेखन कर रही थीं, लेकिन आलोचना यानी साहित्य की गहराई से पड़ताल करने वाले क्षेत्र में उनकी आवाज़ कम सुनाई देती थी। धीरे-धीरे समय बदला 1950 के बाद महिलाओं ने इस क्षेत्र में भी कदम रखा और अपनी सोच, अनुभव और दृष्टिकोण के साथ हिंदी आलोचना को नया रूप देना शुरू किया।
महिला आलोचकों ने सिर्फ यह नहीं बताया कि कोई रचना अच्छी है या बुरी, बल्कि उन्होंने यह भी दिखाया कि समाज में स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार होता है, यह साहित्य में कैसे झलकता है, और क्या कुछ बदलने की ज़रूरत है। निर्मला जैन, साधना अग्रवाल, रोहिणी अग्रवाल, शशिकला त्रिपाठी, शशिकला राय जैसी महिला आलोचकों ने स्त्री-अनुभवों को आलोचना का हिस्सा बनाया। उन्होंने स्त्रियों की बात, उनकी पीड़ा, उनकी सोच को साहित्यिक चर्चा में शामिल किया। हालांकि, इस सफर में उन्हें कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा। कई बार उनके विचारों को गंभीरता से नहीं लिया गया, उन्हें भावुक या पक्षपाती कहा गया। लेकिन इन सबके बावजूद उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई और यह साबित किया कि स्त्री-दृष्टि भी उतनी ही जरूरी और मूल्यवान है जितनी पुरुषों की दृष्टि। आज जब हम हिंदी आलोचना की बात करते हैं, महिला आलोचकों का योगदान अनदेखा नहीं किया जा सकता। उन्होंने साहित्य को सिर्फ शब्दों का खेल न मानकर, उसे समाज और जीवन से जोड़कर देखा। उनकी वजह से आलोचना अब ज्यादा संवेदनशील, न्यायपूर्ण और समाज के हर वर्ग की बात कहने वाली बनती जा रही हैं।

निष्कर्ष

महिला आलोचकों के इस निरंतर चल रहे संघर्ष और बौद्धिक हस्तक्षेप के कारण आज हिंदी आलोचना अधिक समावेशी, संवेदनशील और यथार्थवादी बन पाई है। साहित्य में हुए अनेक प्रयासों के कारण नारी केवल एक वस्तु या पात्र मात्र न रहकर, अपने अधिकारों, स्वतंत्रता और गरिमा के साथ एक सशक्त रचनाकार और पाठक के रूप में स्थापित हो रही हैं।

संदर्भ

1- अग्रवाल, रोहिणी, स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प, २०११, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

2- जैन, निमर्ला, हिन्दी आलोचना की बसिवीं सदी, २००६, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

3- सुजाता, आलोचना का स्त्री पक्ष, २०२१, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

4- वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कडियाँ, १९४२, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

5- अग्रवाल, साधना, वर्तमान हिंदी महिला कथा लेखन और दांपत्य जीवन, १९९५, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

6- त्रिपाठी, शशिकला, उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, २०१७, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

7- राय, शशिकला, इस्पात में ढलती स्त्री, २०१२, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

8- शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, २०११, मेधा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,

9- अग्रवाल, रोहिणी, स्त्रीवादी आलोचना का श्वेत पत्र, समालोचना प्रकाशन,

10- सेठी, रेखा, स्त्री कविता पहचान और द्वंद्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१९
11- सिंह, मोनिका, अनुवादक, सिमोन द बोउआर, द सेकेंड सेक्स, नयी बहार, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, २०२४
12- सिंह, नामवर, इतिहास और आलोचना, राजकम प्रकाशन, नई दिल्ली, २०२५
13- सहाय, संजय, हंस (मासिक पत्रिका), अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१४
14- सिंह, नामवर, आलोचना (त्रैमासिक पत्रिका), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१४

परम्परागत इतिहास लेखन 'भाट की पोथी' में वर्णित चुचैला कलां का स्थानीय इतिहासः एक पुनरावलोकन

काजल*

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत समाविष्ट उत्तर प्रदेश के 6 मण्डलों में मुरादाबाद मण्डल अपना विशिष्ट स्थान रखता है।** ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि उत्तर वैदिक कालीन 16 महाजनपदों में से दो क्रमशः कुरु[1] एवं पंचाल का सीमान्त प्रायः इसी मण्डल की सीमा-रेखा[2] निर्मित करता है। उल्लेखनीय है कि प्रायः अमरोहा जिले से गंगा इनकी सीमा बनाती है।[3] चौथी शताब्दी ईसा पूर्व जब नन्द सम्राट की सेनाओं ने कुरु और पंचाल समेत अन्यान्य भूभाग मगध साम्राज्य में मिला लिए थे[4] तो स्वतः ही मुरादाबाद मण्डल का परिक्षेत्र उसी साम्राज्य का अंग हो गया।[5] अधिक विस्तार में न जाते हुए यहाँ अमरोहा[6] जिले के ऐतिहासिक महत्त्व वाले ग्राम चुचैला कलाँ पर संदर्भित प्रकाश में ध्यान केन्द्रित करना ही अभीष्ट होगा।

सम्राट पृथ्वीराज चौहान के सेनापति राजा बच्छराज त्यागी, जो अमरोहा का तत्कालीन गवर्नर था के नाम पर आबाद चले आ रहे बछराऊँ कस्बे को मुगल सम्राट् अकबर के काल में परगना मुख्यालय बनाया गया था। अबुल फज़ल कृत *'आइने अकबरी'* में बछराऊँ कस्बे (परगने) का विशद वर्णन मिलता है।[7]इसके समीपवर्ती परगने आजमपुर[8] को भी इसी ग्रन्थ में सूचीबद्ध किया गया है। *'भाट की पोथी'* से इसी परगने के डींगरा और चुचैला इत्यादि ग्रामों की महत्त्वपूर्ण सूची का भान होता है।[9]

प्रायः मध्यकाल में निरपवाद ऐसी स्थिति का भान होता है, कि उच्च आर्थिक स्थिति वाले सामन्तवर्ग अपने निवास स्थानों के रूप में पकी ईटों से बनायी गयी भवन संरचनाओं का स्वामित्व रखते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ऊँचे–ऊँचे सुदृढ भवन, महल, गढ़ी आदि उनके जीवन और सम्पत्ति तथा किसी भी प्रकार के सैन्य अभियान से उक्त दोनों की सुरक्षा की गारण्टी देते थे।[10] वस्तुतः मध्यकाल में उच्च जागीरदार वर्ग अत्यधिक सम्मान का पात्र तो था ही; साथ ही, उससे उसके अधीन विभिन्न प्रकार के प्रजागत वर्गों के जीवन और सम्मान की गारण्टी की न केवल अपेक्षा ही की जाती थी, वरन् यह उसका पितृ तुल्य कर्तव्य भी माना जाता था।[11]

समकालीन समाज की विविध मान्यताओं के मानक पूरा करने वाले जागीरदारों जमींदारों को सामान्य जनता अपने बहुविध रक्षक के रूप में देखती और मानती थी, यद्यपि कहीं-कहीं इसके अपवाद दीख पडते हैं।

मध्यकाल के प्रारम्भिक चरण अर्थात् सल्तनत युग के आरम्भ में वर्तमान अमरोहा जिले में अवस्थित ऐसा ही एक गाँव विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें भारद्वाज गोत्र के त्यागी उपजाति का प्रभावशाली जमींदार वर्ग निवास करता आ रहा है। 1952 ई० में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के लागू होने के पूर्व चुचैले के चौधरियों की जमींदारी में अनेक गाँव थे।[12] चौधरी दोधराज सिंह के पुत्र चौधरी रघुवीर सिंह तथा इसी परिवार के पूर्वपुरुष बीजलदेव के वंशज चौधरी निजामतुल्ला अमरोहा जिला ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मुरादाबाद मण्डल में बड़े प्रतिष्ठित जमींदारों में गिने जाते थे।[13] संवत् 1365 विक्रमी में निर्मित कराया गया उनके पैतृक भव्य महल का सिंह द्वार आज भी विद्यमान है।[14]

---

* इतिहास विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ kv19.kajal@gmail.com

** एम के एस, अर्थात् मीटर किलो सेकेन्ड पद्धति के सरकारी स्तर से लागू किये जाने से पूर्व वजन के लिए प्रचलित भारतीय इकाई निम्नवत् थी–

तौला, माशा, छटांक, सेर, मन

16 छटांक –1 सेर

40 सेर – 1 मन

1 किलो में 14 छटांक होती थीं (यद्यपि अलग–अलग इलाकों में इसमें भिन्नता भी थी)।

'भाट की पोथी'[15] से इस परिवार के इतिहास पर यथौचित्यपूर्ण प्रकाश पड़ता है, जिससे विदित होता है कि इस परिवार के पूर्वज हरियाणा के गढ़ी गन्नौर से चलकर वर्तमान गौतम बुद्धनगर (नोएडा) जिले के अन्तर्गत पड़ने वाले किसी ग्राम से होते हुए यहाँ आ बसे थे।[16] उसी पीढ़ी के चौधरी पहराज सिंह[8] ने गंगा पार करके तत्कालीन अमरोहा और बछराऊँ[17] के मध्य एक ऐसे स्थान पर अपना डेरा डाला, जो चारों ओर से जल से घिरा था। वस्तुतः यह अपेक्षाकृत कुछ ऊँचा स्थल था जिसके चारों ओर तालाब थे। इनके साथ इनकी पत्नी हम्मीर दे[11] थी जो सोनीपत के चौधरी 'ज्ञानचन्द' की बेटी थी।[18] इनके पुत्र किशोरवय ज्ञानराज इनके साथ थे। अभी कुछ ही दिन हुए थे कि समीपस्थ ग्राम डींगरा के राजा बहादुर सिंह अपने इलाके में घूमते हुए उधर से निकले और डेरे का संज्ञान लेते हुए आगन्तुकों से बातचीत की।[19] राजा की दृष्टि सुन्दर, स्वस्थ और तेजस्वी किशोर पर पड़ी तो उनके मन में तत्काल उससे अपनी पुत्री का विवाह कर देने का विचार आया। कुछ दिनों बाद उन्होंने इस विचार को क्रियान्वित कर दिया और 92000 बीघा जमीन दहेज में दान दी।[20]

'भाट की पोथी' से पता चलता है कि कुछ दिन बाद वह डेरा 'एक नव स्थापित आबादी में बदल गया और चारों ओर तालाब होने के कारण उस आबादी का नाम 'चहुँचैला' प्रसिद्ध हो गया।[21]'चहुँचैला' का फारसी में अर्थ होता है—एक ऐसा स्थान जिसके चारों ओर तालाब हो।[22], कालान्तर में उच्चारण की सरलता की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर 'चहुँचैला' शब्द'चुचैला' शब्द में व्यवहृत होने लगा।[23] राजस्व अभिलेखों में इस के साथ 'कलां' शब्द और जुड़ गया। इस प्रकार इस गाँव का नाम 'चुचैला कलां' प्रसिद्ध हुआ।

चौधरी पहराज सिंह के पुत्र चौधरी ज्ञानराज ही वह किशोर थे जिनका उक्त प्रकार विवाह सम्पन्न हुआ था। डींगरा के राजा बहादुर सिंह की पुत्री अर्थात् इनकी पत्नी का नाम 'शारदा था।[24] इनके पुत्र चौधरी डहाड़ी सिंह हुए[25] जिनका विवाह 'पेली' के चौधरी मणिराम की पुत्री 'श्यामवती' के साथ सम्पन्न हुआ।[26] इनके पुत्र थे चौधरी श्रीराम। चौधरी श्रीराम की पत्नी अशर्फी देवी थीं[22] जो ग्राम मंडैयों के चौधरी जयमल सिंह की पुत्री थी।[27]

'भाट की पोथी' से पता चलता है कि चौधरी श्रीराम व अशर्फी देवी के पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः रणदेव, बीजलदेव, विजयदेव, भावदेव एवं महलकदेव थे। इनका दूसरा नाम काले खाँ था।[28] विजयदेव और भावदेव किसी युद्ध में लड़ते हुए मारे गये। इन दोनों की पत्नियाँ आपसमें सगी बहनें भी थीं।वे चिड़ीचाँदी के चौधरी अमीरचन्द की पुत्रियाँ थी जिनके नाम मलंदा व प्रेमदा थे।[29] पोथी में उल्लिखित वर्णन के अनुसार चुचैले में **उत्तर की ओर 'सावन' के महीने में तिथि 'दोज' दिन 'सोमवार'** को वीरगति को प्राप्त अपने पतियों के शवों के साथ सती हुई।[30] पहले विजयदेव का शव महल के दरवाजे पर आ गया था, अतः मलंदा ने वहीं चिता तैयार की और पति के शव के साथ सती हो गयी। भावदेव की पत्नी महल से निकलकर पति के शव की ओर दौड़ी तब तक उसके पति का शव महल के दरवाजे तक नहीं आया था, वह दौड़कर शव के साथ विलाप करती हुई लिफ्ट गयी और वहीं अर्थात् महल के सिंह द्वार से दाहिने हाथ पर पति के शव के साथ सती हुई।[31]

गाँव में तीन मन्दिर हैं, जिनमें से एक स्वयंभू शिवलिंग वाला मन्दिर है। इस मन्दिर के साथ लगे खसरा नम्बरखेत को चौधरी परिवार ने दान में मिसर जी पण्डित जी को दे दिया था[32] किन्तु उनके निःसन्तान मर जाने के पश्चात् अंग्रेजी काल में लागू नियमों के अन्तर्गत उत्तराधिकारी न होने पर दान की हुई भूमि जमींदार के नाम वापस आ जाती थी। ऐसा ही 'मिसर जी की बगिया'[33] कहे जाने वाले इस खेत के साथ हुआ, जिसमें मन्दिर अवस्थित है।

ऐसी स्थिति मे जो विषय वस्तु स्पष्ट होती है उससे इस ओर ध्यान जाता है कि संभव है कि विगत में इस गाँव पर अथवा इस इलाके पर कोई बड़ा सैन्य अभियान हुआ हो जिसका सशस्त्र प्रतिरोध करने के लिए ग्रामवासियों ने युद्ध किया हो, जिसमें बहुत सारे लोगों या अन्य लोगों के साथ इस सामन्ती परिवार के उक्त दोनों सदस्य लड़ते हुए खेत रहे हों।

चाहे युद्ध ग्राम अथवा इलाके में लड़ा गया हो अथवा कुछ दूरी पर किन्तु यह ऐतिहासिक महत्त्व का साक्ष्य है कि युद्ध में मारे जाने वाले विजयदेव और भावदेव के शव गाँव तक लाये गये थे जिनके साथ उनकी पत्नियाँ सती हुई थीं।

किन्तु अत्यन्त चौंकाने वाला एक अन्य साक्ष्य भी इसमें छुपा हुआ दिखाई पड़ता है और वह है बीजलदेव और महलकदेव का जीवित बच जाना और उन दोनों का पूरे जीवन साथ–साथ रहना। उपर्युक्त दोनों भाई जीवित ही नहीं बचे अपितु सबसे बड़ा भाई रणदेव भी जीवित रहा। *'भाट की पोथी'* के अतिरिक्त गाँव में विद्यमान वंशज परम्परा में दो धाराएँ दिखती हैं–एक वंश परम्परा रणदेव से उत्पन्न है तो दूसरी बीजलदेव से। किन्तु महलकदेव का आजीवन अविवाहित रहना सर्वज्ञात है। इसलिए उनकी वंश परम्परा शून्य ही रही। महलकदेव ने बाद में उत्तर दिशा की ओर समाधि ली, जो आज भी 'पीर' के नाम से वहाँ विद्यमान है और हिन्दु–मुस्लिम दोनो धर्मों के सगे भतीजों के वंशजों द्वारा उसे पूजा जाता है।[34]

रणदेव के वंशजों में सभी नाम यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त हैं कि वे मूल परम्परा के वाहक अर्थात् पूर्वजों की भाँति हिन्दू ही बने रहे। रणदेव सिंह का विवाह खटाई (वर्तमान जिला–बिजनौर) के चौधरी शेर सिंह की पुत्री 'शरमा' के साथ हुआ था और उनके दो पुत्र क्रमशः घनश्याम सिंह और कंवर सिंह हुए।[35] किन्तु बीजलदेव के वंशजों के साथ ऐसा नहीं हुआ,क्योंकि वे मुसलमान बन गए अथवा बना दिए गए थे। *'भाट की पोथी'* में अंकित है कि बीजलदेव **संवत् 1725 'जेठ' मास की तिथि 'दोज' दिन 'बृहस्पतिवार'** को मुसलमान बने अथवा बनाये गये।[36]

यह ऐतिहासिक रूप से अत्यन्त महत्त्व का प्रकरण दिखाई पड़ता है जो किसी भी शोधार्थी के लिए अत्यन्त महत्त्व का द्योतक है। इस संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस वंश ने परिस्थितियों वश युद्धबन्दी होने की स्थिति में इस्लाम धर्मान्तरण किया। इस दिशा में आगे बढ़ने पर जो कथानक उभरता है वह इस प्रकार है–मध्यकाल के किसी भी खण्ड में सैन्य अभियान का शिकार बनने पर और उसमें वीरता पूर्वक प्रतिरोध करते हुए अपने दो योद्धा खो दिए हों और शेष सेना पराजित करके बन्दी बना ली गयी हो। प्रचलित नियमों के अनुसार युद्ध बन्दियों का या तो निर्ममता पूर्वक वध कर दिया जाता था अथवा बिना मुसलमान बने जीवित नहीं छोड़ने की परम्परा थी। ऐसी स्थिति में यह संभावना प्रबल दिखाई पड़ती है कि विजयदेव, भावदेव के साथ ही रणदेव भी मारे गए हों, जिनकी पत्नी सती नहीं हुई हो और दोनों छोटे भाई मृतक योद्धाओं की पत्नी सती हो गई हों, बन्दी योद्धाओं क्रमशः बीजलदेव और महलकदेव को मुसलमान बनने की शर्त पर जीवित रहने दिया हो। यह सत्य है कि केवल बीजलदेव ही मुसलमान बना। महलकदेव सबसे छोटे थे किन्तु इस धटना के पश्चात् इन्होंने विवाह नहीं किया और नही मुसलमान बने। यद्यपि वे बीजलदेव के साथ ही रहते रहे और उन्हीं के साथ रहते हुए उनकी मृत्यु हुई।

'भाट की पोथी' में जो वर्णन अंकित हैं उनमें उक्त पीढ़ियों का वर्णन निम्न प्रकार अंकित हैं–

संवत् 1345 विक्रमी महीना 'अगहन' दिन 'सोमवार' तिथि 'पंचमी' को चौधरी पहराज सिंह इस स्थान पर आकर बसे, जिसे बाद में चुचैला कहा जाने लगा।[37] चौधरी पहराज सिंह का विवाह सोनीपत के ज्ञानचन्द की पुत्री हमीर दे के साथ सम्पन्न हुआ जिनके पुत्र ज्ञानराज हुए। ज्ञानराज का विवाह डींगरा के राजा बहादुर सिंह की पुत्री शारदा से हुआ, राजा बहादुर सिहं ने 'बान' की रस्म में शगुन के तौर पर अपनी बेटी शारदा को 1000 बीघा जमीन दान में दी तथा विवाह में 92000 बीघा रकबा दान में दिया।[38] इनके पुत्र डहाड़ी सिंह हुए। उनका विवाह गंगापार ग्राम पेली के चौधरी मणिराम की पुत्री श्यामवती के साथ सम्पन्न हुआ, जिनके पुत्र हुए चौधरी शादीराम। शादीराम सिंह के पुत्र थे सरदार सिंह। सरदार सिंह के पुत्र थे चौधरी बिसम्भर सिंह जिनके पुत्र तुलाराम हुए। तुलाराम के पुत्र हुए गनेशी और गनेशी के पुत्र श्रीराम।

चौधरी श्रीराम के पाँच पुत्र हुए। 'भाट की पोथी' के अनुसार इनका विवाह मंडैयों के जयमल सिंह की पुत्री अशर्फी के साथ सम्पन हुआ था श्रीराम व अशर्फी के पांच पुत्रों के नाम क्रमशः निम्नप्रकार है–

रणदेव, बीजलदेव, विजयदेव, भावदेव और महलकदेव।[39]

रणदेव का विवाह जिला बिजनौर के ग्राम खटाई के चौधरी शेरसिंह की पुत्री सरमा के साथ हुआ था। इनके दो पुत्र हुए चौधरी हरि सिंह और कंवर सिंह। हरि सिंह का विवाह सरधना के चौधरी चुन्नी सिंह

की पुत्री हुशियारी के साथ हुआ था।[40] इनके दो पुत्र हुए रामनाथ और लखपत। लखपत का विवाह पवसरा के चौधरी नत्थु सिंह की पुत्री चमेली के साथ हुआ था। इनके दो पुत्र हुए राघवदास और रामानन्द।

रामानन्द का विवाह स्याना के चौधरी लेखा सिंह की पुत्री ज्ञानवती के साथ हुआ। इनके पुत्र हुए जयकिशन। जयकिशन का विवाह खरखौदा के रामसिंह की पुत्री श्यामो के साथ हुआ। इनके दो पुत्र भागमल और घनश्याम हुए। घनश्याम का विवाह भूपरा के चौधरी तुलाराम की पुत्री हरदेई के साथ हुआ था। कँवर सिंह का विवाह खिलवाई के चौधरी दीवान सिंह की पुत्री बालेशिया के साथ सम्पन्न हुआ था। इनके दो पुत्र क्रमशः उदय सिंह और बूलचन्द हुए।

बूलचन्द के वंशज गाँव में 'रुहेले' के नाम से जाने जाते हैं। इनके वंशज दसवें त्यागी कहलाये।

बडे भाई चौधरी उदय सिंह के दो पुत्र हुए–मायाराम व दयाराम। दयाराम का विवाह गणेशपुर के चौधरी कैलाश की पुत्री जानकी के साथ सम्पन्न हुआ, जिनके दो पुत्र हुए जहाँगीर सिंह और मोतीराम। आगे चलकर चौधरी जहाँगीर सिंह के वंशज 'चुचैला के चौधरी' कहलाये जबकि मोतीराम के वंशजों में 'चुचैला के सिंह, गनौरा, रामपुर, तगा, और कपसवा' के चौधरी' कहलाये।[41] जहाँगीर सिंह के दो पुत्र हुए प्रतापसिंह और पतराम सिंह। पतराम सिंह के वंशजों में 'सतबीर हर' एवं 'राजबल हर' हैं।

बड़े भाई प्रताप सिंह के पुत्र हुए भवानी सिंह। इनका विवाह नसीरपुर के चौधरी हरि सिंह की पुत्री सरदारी से हुआ। चुचैले का प्रसिद्ध महल इन्होंने ही बनवाया था। इनके चार पुत्र हुए, जिनके नाम हैं पूरन सिंह, घासीराम, इस्सरमल और भगीरथ।

बड़े भाई पूरन सिह की वंश परम्परा में उनके दो पुत्र बख्तावर सिंह और हरि सिंह हुए। बख्तावर सिंह के तीन पुत्र हुए–नारायण, दौलत, और रामचरण सिंह; जबकि चौधरी हरी सिंह की दो शादियाँ हुईं।

उनकी पहली पत्नी पिलाना जिला बिजनौर के निवासी चौधरी रामप्रसाद की पुत्री शिवदेई के साथ हुआ जिनके पुत्र दोधराज सिंह हुए।[42] शैशावस्था में ही इस एक मात्र सन्तान के सिर से माँ का साया उठ गया। पत्नी की मृत्यु हो जाने पर चौधरी हरि सिंह का दूसरा विवाह कोराल, जिला अमरोहा के चौधरी गुलाब सिंह की पुत्री आनन्दी के साथ हुआ। इनके दो पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः चौधरी जगन सिंह और चौधरी रगराज सिंह हैं। इनके दो पुत्रियाँ भी उत्पन्न हुईं।[43]

चौधरी दोधराज सिंह प्राय सवा 6 फुट लम्बे अत्यधिक सुदर्शन व्यक्तित्व के स्वामी बताये जाते हैं।[44] इनकी एकमात्र सन्तान चौधरी रघुवीर सिंह थे। यह लोक प्रचलित कथा है कि चौधरी दोधराज सिंह जब कोटा महाराज के दरबार में पहली बार मिलने गये तो उनके भव्य व्यक्तित्त्व के कारण ही किसी भी अफसर ने उनसे आवश्यक पूछताछ तक नहीं की, यहाँ तक कि दरबान ने बड़े अदब से झुककर उन्हें अभिवादन किया। कहा जाता है कि दरबान ने यह समझते हुए कि–वह कोटा नरेश के कोई निजी संबंधी और बड़े सामन्त थे–उनके सम्मान में राज्योचित रिवाज से अभ्यर्थना की थी।[45] इन्होंने कोटा महाराज की सेवा में नौकरी की और किसी बीमारी में राजकीय कार्य सम्पन्न करते हुए उनकी मृत्यु हो गई। कोटा महाराज उनसे इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपनी निजी राजकीय कार में उनके शव को कोटा से दिल्ली होकर उनके पैतृक गाँव चुचैला पहुँचवाया था जो कि उन पुराने दिनों में बहुत ही बड़ी और असम्भव–सी बात मानी जाती थी।[46]

चौधरी जगन सिंह की दो पुत्रियाँ तथा एक पुत्र चौधरी प्रताप महेन्द्र सिंह हुए। प्रताप महेन्द्र सिंह चौधरी जगन सिंह के अकेले पुत्र थे।[48] उनके पिता चौधरी जगन सिंह की मृत्यु के समय वह अल्पव्यस्क ही थे और उनकी माता ढवारसी कस्बे की चौधरी हरनाम सिंह की पुत्री चम्पा थी जिनकी मानसिक स्थिति असामान्य थी। चौधरी प्रताप महेन्द्र सिंह का विवाह बिजनौर जिले के ग्राम नायक नंगला के चौधरी वेदप्रकाश सिंह की पुत्री निर्मला देवी के साथ सम्पन्न हुआ।[49]चौधरी वेदप्रकाश सिंह हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग के सबल हस्ताक्षर कहे जानेवाले प्रख्यात आलोचक पंडित पदम सिंह शर्मा के भतीजे थे। पंडित पदम सिंह शर्मा ने इलाहाबाद में रहकर *सरस्वती* पत्रिका का सम्पादन किया था। वह हिन्दी में बाल साहित्य के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके घनिष्ठ मित्रों में अकबर इलाहाबादी, मुंशी प्रेमचन्द, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। अपने मित्र मुंशी प्रेमचन्द के *'निर्मला'* उपन्यास के प्रकाशन वर्ष में भतीजे की नवजात पुत्री के

उत्पन्न होने पर उसका नाम निर्मला ही रख दिया।[50]चौधरी प्रताप महेन्द्र सिंह की सन्तानों के नाम क्रमशः चौधरी दुष्यंत त्यागी, लता और विनीता है।[51] चौधरी दुष्यंत कुमार का विवाह सतूपुरा के चौधरी रघुनाथ सिंह की पुत्री श्रीमती सुधारानी के साथ सम्पन्न हुआ। इनके दो पुत्र हुए जिनके नाम कुँवर हर्षवर्द्धन तथा जयवर्द्धन हैं। जयवर्द्धन *'मस्क्युलर डिसट्राफी'* नामक असाध्य रोग से पीड़ित थे और मात्र 16 वर्ष की आयु में काल–कवलित हो गए, जबकि बड़े पुत्र का विवाह गाजियाबाद के श्री सुनील कुमार की पुत्री नीलू के साथ सम्पन्न हुआ। इनके दो पुत्र क्रमशः राघव व अंगद हैं।

चौधरी दोधराज के पुत्र चौधरी रघुबीर सिंह हुए। चौधरी रघुबीर सिंह मुरादाबाद मण्डल के जमींदारों में अत्यधिक जाना-माना नाम है। ये नृत्य और संगीत के बहुत बड़े संरक्षक के रूप में जाने जाते थे। वर्ष में 8–8 महीने शास्त्रीय संगीत और नृत्य में प्रवीण नृत्यांगनाओं के खेमें इन्हीं के संरक्षण में महल के सामने दूसरी ओर जमे रहते थे। इनके भी दो विवाह हुए। पहली पत्नी शांति देवी थी जो सिसौना, जिला बिजनौर के चौधरी हरदयाल सिंह की बेटी थी। एक पुत्री के जन्म के पश्चात् इनकी मृत्यु हो गयी।[52]चौधरी रघुबीर सिंह का दूसरा विवाह दतियाना के चौधरी रामचन्द्र सिंह की पुत्री के साथ हुआ। संयोग से इनकी दूसरी पत्नी का नाम श्री शांति देवी ही था। इनके तीन पुत्र हुए जिनके नाम क्रमशः श्रीराजकुमार त्यागी उर्फ 'राजू बाबू,' श्री रविन्द्र कुमार त्यागी उर्फ 'रवि बाबू' तथा कर्नल 'सूरज कुमार' हैं। श्रीराजकुमार त्यागी[53] का विवाह ग्राम अच्छेजा के चौधरी उदल सिंह की पुत्री किरन देवी के साथ सम्पन्न हुआ। इनके एक मात्र पुत्र अमरदीप त्यागी एडवोकेट हैं जबकि रवि बाबू का विवाह मलकपुर के चौधरी भगवत सिंह की पुत्री राजबाला के साथ सम्पन्न हुआ। इनके दो पुत्र क्रमशः नीरज व दीपक हुए, जबकि मझली संतान पुत्री बंटी हुई। चौधरी रघुबीर सिंह के तीसरे एवं सबसे छोटे पुत्र और तत्कालीन लेफ्टिनेंट के पद पर तैनात श्री सूरज कुमार अपने पिता की सामन्ती प्रवृत्ति तथा बेतहाशा खर्च करते रहने की राजसी आदत और रंगकर्मियों और कलाकारों पर न्यौछावर करते रहने की वृत्ति से भयंकर रुष्ट रहते थे, क्योंकि इससे उनका पुराना खानदानी घर नष्ट होने की कगार पर था। सन् 1952 ई0 में भारत सरकार द्वारा जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के पारित हो जाने से उन्हें पिता की वे प्रवृत्तियाँ सम्पूर्ण परिवार के लिए आत्मघाती लगती थीं, अतः उस आज्ञाकारी और अंतर्मुखी नवयुवक ने पितृद्रोह करते हुए दिल्ली की एक पंजाबी लड़की से प्रेम विवाह किया। इनकी दो पुत्रियाँ हैं।[54]

'भाट की पोथी' में प्रायः प्रत्येक पोथी में दिए गए दान का इस प्रकार वर्णन अंकित है कि उससे दान में दिये गये या प्राप्त की गई वस्तु *'सोने की अशर्फी'* या *'चाँदी के सिक्के'* की संख्या या वजन तथा अन्न व वस्तु के विषय में सूचनाएँ दर्ज हैं।[55] अन्न का वजन उल्लिखित है जिसे 'मन'''' की इकाई में दर्ज किया गया है। यह विशेष रूप से उल्लेखीय है जो 'अन्न' अंकित हैं कि उनमें 'गेहूँ' के नाम का उल्लेख नहीं है। साथ ही ''चना'' ऐसी वस्तु के रूप में उलिखित है जिसे हर बार 'सवा मन' चने की मात्रा में दिया गया है। दूसरी वस्तु 'गुड़' है। तीसरी 'चावल', दर्ज है। गेहूँ–जौ, बाजरा, मक्का, उड़द, अरहर, मूँग, मसूर, तौर, मटर जैसी जिन्सों का कतई नामोल्लेख नहीं है।

चुचैला कलाँ में चौधरी अर्थात् त्यागी वंश
गोत्र भारद्वाज
कुलदेवी चंडिका, इष्ट देव गणेश भगवान
(गंगापार, जिला अमरोहा गजरौला चाँदपुर रोड पर स्थित)
↓
चौधरी पहराज सिंह + हमीर देय पुत्री चौ० ज्ञानचन्द, सोनीपत
निकास गढ़ी गन्नौर हरियाणा

*** ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल (1804–4 नवम्बर, 1854) तक मुरादाबाद मण्डल Third Division Rohilkhand के अन्तर्गत समाहित था। तत्पश्चात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् अलग मण्डल के गठन से पूर्व तक इसी में रहा।

चौधरी पहराज सिंह
+
(हमीर देय पुत्री चौधरी ज्ञानचन्द, सोनीपत)
↓
ज्ञानराज सिंह
+
(शारदा पुत्री राजा बहादुर सिंह, डींगरा)
↓
डहाड़ी सिंह
+
(सामवती पुत्री श्री मणिराम, पेली गंगापार)
↓
शादीराम
+
(बीना पुत्री श्री राजाराम, किवाड़)
↓
सरदार सिंह
↓
बिसम्भर सिंह
+
(शान्ति पुत्री श्री टीकाराम, पेली गंगाचार)
↓
तुलाराम
+
(बिजयवती पुत्री श्री धर्म सिंह, सरौली)
↓
गनेशी सिंह
+
(मनसावती पुत्री श्री बाले सिंह, किवाड़)
↓
श्रीराम

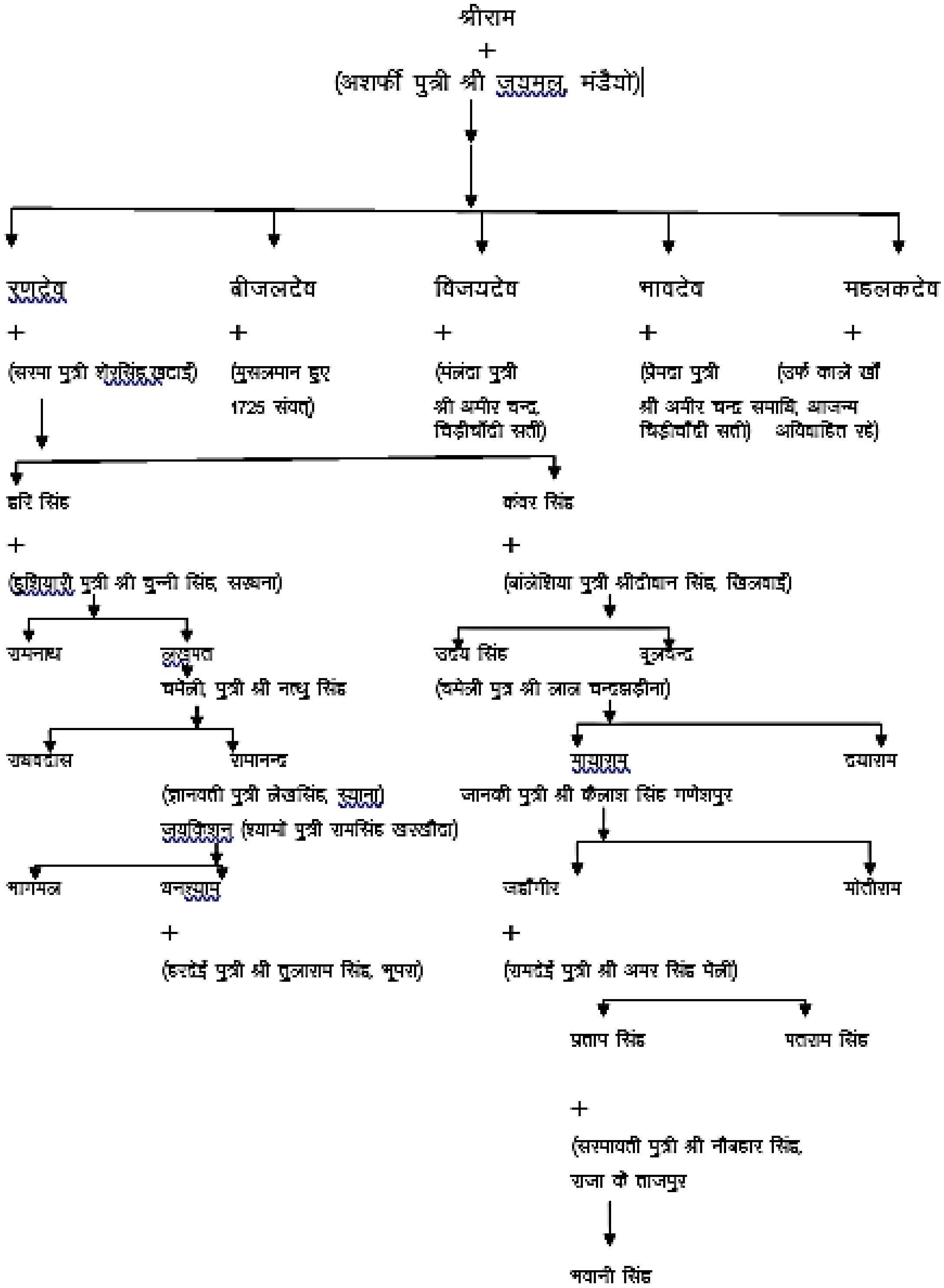
श्रीराम
+
(अशर्फी पुत्री श्री जयमल, मंडैयो)
रणदेव
+
(सरमा पुत्री शेरसिंह खटाई)
बीजलदेव
+
(मुसलमान हुए
1725 संवत)
विजयदेव
+
(मलंदा पुत्री
श्री अमीर चन्द,
पिढ़ीयाँदी सती)
भावदेव
+
(प्रेमदा पुत्री
श्री अमीर चन्द समाधि,
पिढ़ीयाँदी सती)
महलकदेव
+
(उर्फ काले खाँ
आजन्म
अविवाहित रहे)
हरि सिंह
+
(हुशियारी पुत्री श्री चुन्नी सिंह, सखना)
कंवर सिंह
+
(बांलेशिया पुत्री श्रीदीवान सिंह, खिलवाई)
रामनाथ
लखपत
चमेली, पुत्री श्री नत्थु सिंह
उदय सिंह
बुलचन्द
(चमेली पुत्र श्री लाल चन्दझड़ीना)
राघवदास
रामानन्द
(ज्ञानवती पुत्री लेखसिंह, रूपाना)
जयकिशन (श्यामो पुत्री रामसिंह खरखौदा)
मायाराम
जानकी पुत्री श्री कैलाश सिंह गणेशपुर
दयाराम
भागमल
घनश्याम
+
(छनदेई पुत्री श्री तुलाराम सिंह, भूपरा)
जहाँगीर
+
(रामदेई पुत्री श्री अमर सिंह पेली)
मोतीराम
प्रताप सिंह
+
(सरमावती पुत्री श्री नौबहार सिंह,
राजा की ताजपुर
पतराम सिंह
भवानी सिंह

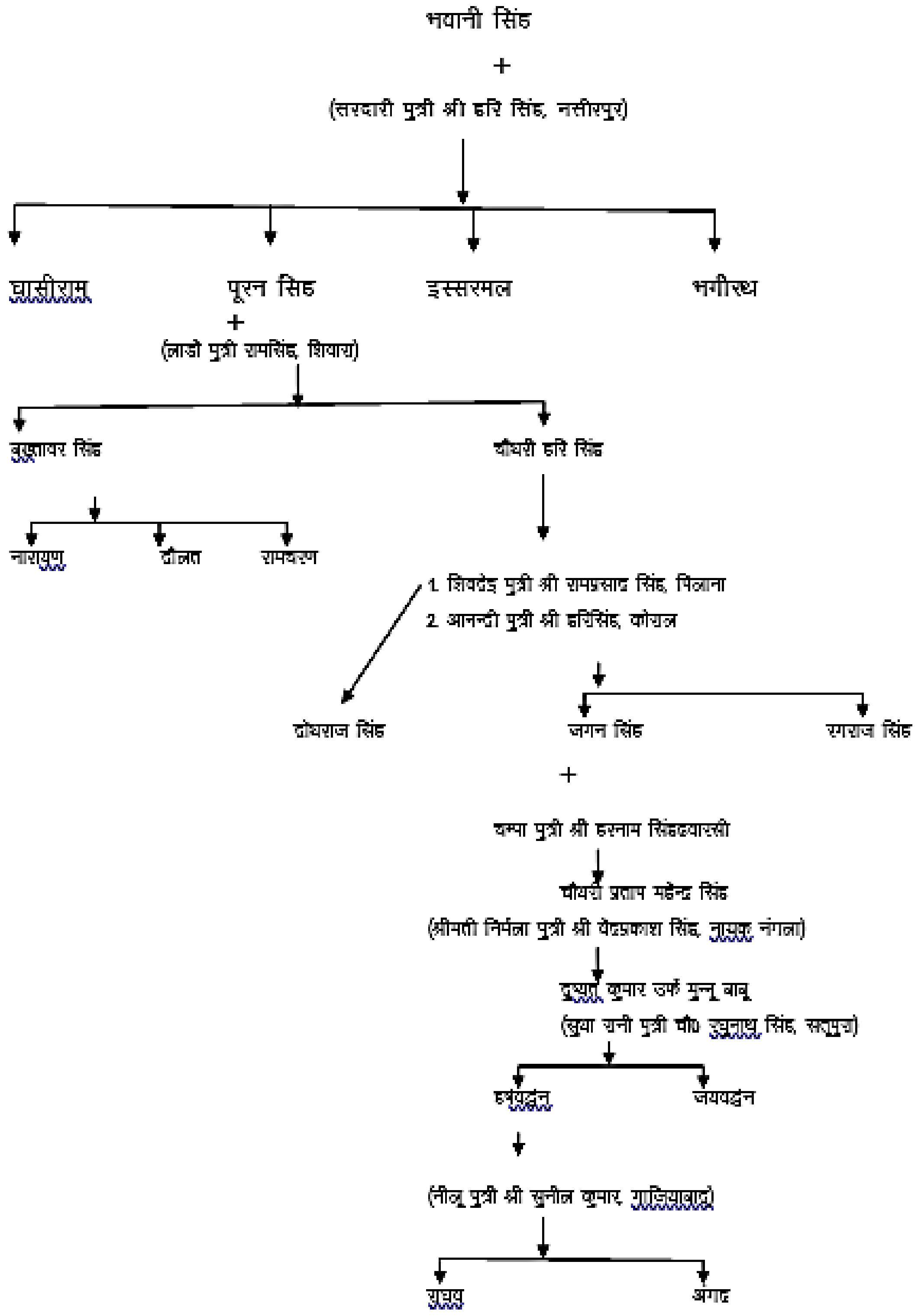
भवानी सिंह
+
(सरदारी पुत्री श्री हरि सिंह, नसीरपुर)
घासीराम
पूरन सिंह
इस्सरमल
भगीरथ
+
(लाडो पुत्री रामसिंह, शियारा)
बुख्तावर सिंह
चौधरी हरि सिंह
नारायण
दौलत
रामचरण
1. शिवदेइ पुत्री श्री रामप्रसाद सिंह, पिलाना
2. आनन्दी पुत्री श्री हरिसिंह, कोयल
चौधराज सिंह
जगन सिंह
रगराज सिंह
+
चम्पा पुत्री श्री हरनाम सिंहछपारसी
चौधरी प्रताप महेन्द्र सिंह
(श्रीमती निर्मला पुत्री श्री वेदप्रकाश सिंह, नायक नंगला)
दुष्यंत कुमार उर्फ मुन्नू बाबू
(सुधा रानी पुत्री चौ0 रघुनाथ सिंह, सरापुरा)
हर्षवर्द्धन
जयवर्द्धन
(नीलू पुत्री श्री सुनील कुमार, गाजियाबाद)
राघव
अंगद

दान के रूप में उल्लिखित सामग्री

1. घोड़ी, सोने के कुडलौं की जोड़ी, पाँच वस्त्र, सवा किलो अशर्फी, 'सवा मन' चना
2. घोड़ी, पाँच वस्त्र, हसली, कडुलै, 25 अशर्फी, 'सवा मन' चना
3. घोड़ी, पाँच वस्त्र, गरम बिस्तर, ठण्डा बिस्तर, 'सवा मन''गुड़''चावल'
4. कडुलै, घोड़ी, पाँच वस्त्र, 71 रूपये, 2 अशर्फी
5. 125 अशर्फी, पाँच वस्त्र गरम बिस्तर, 'सवा मन अन्न'

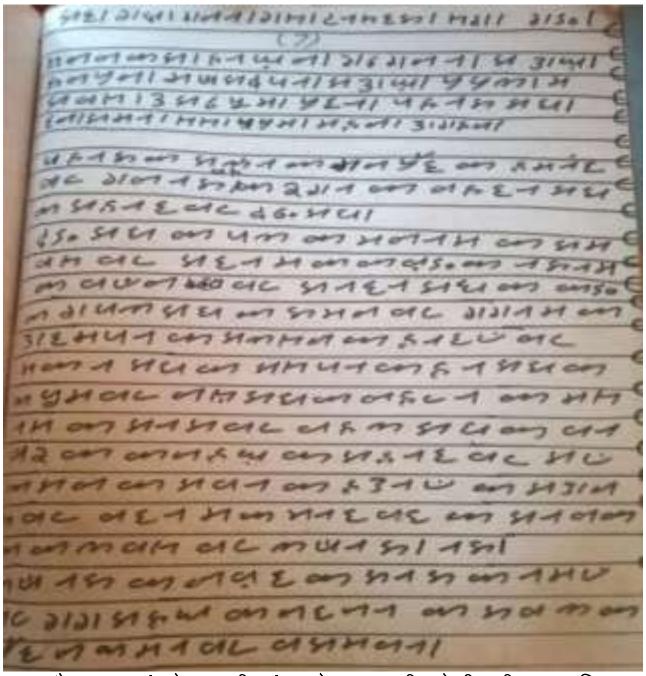

चुचौला कलां के त्यागी वंश के भाट की पोथी की छायाचित्र

सन्दर्भ तथा टिप्पणियाँ

1. शतपथ ब्राह्मण 5-5-2-5।
2. काजल, *पश्चिमी उत्तर प्रदेश में परम्परागत इतिहास लेखन की विधा : भाट की पोथी,* चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ की इतिहास विषय में दर्शन–निष्णात् (एम०फिल्०) की उपाधि हेतु प्रो0 विघ्नेश कुमार के शोध निर्देशन में प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध, इतिहास विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय परिसर, मेरठ 2018–2019, (अप्रकाशित), पृ. 23।
3. सुरेश चन्द्र शर्मा 'सारस्वत', *अमरोहा नगर का प्राचीन इतिहास,* ध्वनि प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण, 2017।
4. *The History and Culture of the Indian people*, vol.II pp. 23-33,
   H.C. Rai chaudhary, *Political History of Inida*, vol VI, pp 12-13,
   James mill, *The History of British India*, vol I, Atlantic Publishers & Distributors, New Delhi, Reprint 1990.
   विघ्नेश कुमार, *युगयुगीन सम्भल,* हस्तिनापुर शोध संस्थान, मेरठ, प्रथम संस्करण–2015, पृ.11
5. *वही।*
6. E.B. Joshi, *District Gazetteers of Uttar Pradesh Maradabad*, Department of District Gazetters, Govt. of U.P. 1968, p. 314.
7. Ibid,p 314;
8. *Itivritta : An International Journal of Histroy and Culture*, Volume-8, Part-I Summer, 2020, Vighnesh kumar- "Azampur the Old House of the Tajpur Riyasat : A Reappraisal, pp.3,4.
9. भाट की पोथी, साक्षात्कार श्री शिवकुमार वशिष्ट, भाट, पुत्र श्री फूल आयु 53/ वर्ष, सिंह, गोत्र-वशिष्ठ, ग्राम-रछौती, पोस्ट-रछौती, ब्लाक-माछरा, तहसील-मवाना, जिला–मेरठ, उ०प्र०।
10. काजल, *वही,* पृ. 24।

11. काजल, *वही,* पृ० 24।
12. *वही*।
13. भाट की पोथी, साक्षात्कार, श्री सुनील कुमारभाट पुत्र स्व० श्री फूल आयु 55/वर्ष, सिंह, गोत्र-वशिष्ठ, ग्राम-रछौती, पोस्ट-रछौती, ब्लाक–माछरा, तहसील-मवाना, जिला–मेरठ, उ०प्र०।
14. *वही*।
15. Esha Basanti Joshi, *op.cit*.
16. भाट की पोथी, साक्षात्कार श्री शिवकुमार, उक्त।
17. *वही।*
18. *वही।*
19. साक्षात्कार, 17.02.2020, श्री दुष्यन्त कुमार त्यागी (64 वर्ष) पुत्र स्व० चौधरी प्रताप महेन्द्र सिंह पौत्र चौधरी जगन सिंह प्रपौत्र चौधरी हरि सिंह, चुचैला कलाँ, अमरोहा, हाल निवासी D–104, शास्त्रीनगर, मेरठ।
20. *वही।*
21. *वही।*
22. *वही।*
23. *वही।*
24. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
25. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
26. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
27. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
28. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
29. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
30. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
31. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
32. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
33. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
34. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
35. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
36. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
37. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
38. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
39. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
40. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
41. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
42. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
43. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
44. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
45. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
46. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
47. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
48. *भाट की पोथी* में अंकित विवरण, उक्त।
49. *साक्षात्कार,* 15.04.2019 श्रीमती निर्मला देवी धर्मपत्नी स्व० चौधरी प्रताप महेन्द्र सिंह, मूल निवासी ग्राम चुचैला कलां, धनौरा, जिला अमरोहा, उ.प्र., हाल निवासी डी–104, शास्त्रीनगर, मेरठ, उ.प्र.।
50. *साक्षात्कार,* 15.04.2019 श्रीमती निर्मला देवी धर्मपत्नी स्व० चौधरी प्रताप महेन्द्र सिंह, मूल निवासी ग्राम चुचैला कलां, धनौरा, जिला अमरोहा, उ.प्र., हाल निवासी डी–104, शास्त्रीनगर, मेरठ, उ.प्र.।
51. *भाट की पोथी* में *वही*।
52. *भाट की पोथी* में *वही*।
53. *भाट की पोथी* में *वही*।
54. *भाट की पोथी* में *वही*।
55. *भाट की पोथी* में *वही*।

किशोरियों में एनीमिया का कारणः असंतुलित भोजन और जंक फूड का प्रभाव

डॉ. प्रियादर्शनी कुमारी*

सार–

यह शोध पत्र किशोरियों में एनीमिया (रक्ताल्पता) की समस्या के बढ़ते मामलों की जाँच करता है, विशेष रूप से असंतुलित आहार और जंक फूड (जर्म फूड) की भूमिका के संदर्भ में। किशोरावस्था एक संवेदनशील अवस्था होती है जहाँ पोषण की आवश्यकता अधिक होती है। लेकिन आज के दौर में अधिकांश किशोरियाँ पौष्टिक आहार के स्थान पर फास्ट फूड और जंक फूड का अधिक सेवन कर रही हैं, जिससे आयरन की कमी व अन्य पोषक तत्वों की घातक कमी उत्पन्न हो रही है। इस शोध में विभिन्न अध्ययनों, आँकड़ों एवं साक्षात्कारों के माध्यम से यह सिद्ध किया गया है कि असंतुलित भोजन और जंक फूड का अत्यधिक सेवन किशोरियों में एनीमिया की एक प्रमुख वजह है।

विशिष्ट शब्द– एनीमिया, किशोरियाँ, असंतुलित भोजन, जंक फूड, आयरन की कमी, पोषण।

किशोरावस्था जीवन का एक महत्वपूर्ण चरण होता है, जहाँ शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास तेजी से होता है। इस अवस्था में शरीर को संपूर्ण पोषण की आवश्यकता होती है ताकि विकास सुचारू रूप से हो सके। परंतु भारत जैसे विकासशील देशों में आज भी किशोरियों में कुपोषण और एनीमिया की समस्या व्यापक रूप से देखी जाती है। एनीमिया, जिसे सामान्यतः रक्त की कमी के रूप में जाना जाता है, एक ऐसी स्थिति है जिसमें शरीर में हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य से कम हो जाता है। इसका सीधा प्रभाव शरीर की कार्यक्षमता, प्रतिरक्षा तंत्र और मानसिक स्थिति पर पड़ता है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5) के अनुसार, भारत की लगभग 59% किशोरियाँ किसी न किसी रूप में एनीमिया से पीड़ित हैं। इस स्थिति के पीछे कई कारण हैं, जिनमें प्रमुख है– असंतुलित आहार और जंक फूड का अत्यधिक सेवन। आज की किशोरियाँ स्वाद और आधुनिक जीवनशैली की ओर अधिक आकर्षित हो रही हैं, जिससे हरी सब्जियाँ, दालें, फल और आयरन युक्त खाद्य पदार्थों का सेवन कम हो गया है। इसके विपरीत, पिज़्ज़ा, बर्गर, चिप्स और कोल्ड ड्रिंक्स जैसे खाद्य पदार्थों का अत्यधिक सेवन बढ़ता जा रहा है, जो न केवल पोषणहीन हैं बल्कि शरीर में आवश्यक पोषक तत्वों के अवशोषण में भी बाधा डालते हैं।

साथ ही, अनियमित खानपान और शारीरिक गतिविधियों की कमी ने भी एनीमिया की समस्या को और बढ़ाया है। यह शोध लेख किशोरियों में एनीमिया के इन प्रमुख कारणों की पड़ताल करता है और यह समझने का प्रयास करता है कि कैसे असंतुलित भोजन और जंक फूड की आदतें इस गंभीर स्वास्थ्य समस्या को जन्म दे रही हैं। यूनिसेफ और NFHS–5 (राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण) की रिपोर्ट के अनुसार, भारत की लगभग 59.00% किशोरियाँ किसी न किसी प्रकार की एनीमिया से पीड़ित हैं।[1] यह समस्या तब और गहरी हो जाती है जब उनका आहार पौष्टिक नहीं होता और जंक फूड की प्रवृत्ति बढ़ती है।

एनीमिया वह स्थिति है जब शरीर में हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य से कम हो जाता है। यह शरीर में ऑक्सीजन के प्रवाह को बाधित करता है, जिससे थकान, चक्कर आना, कमजोरी आदि लक्षण दिखाई देते हैं। आयरन, फोलिक एसिड, विटामिन B_{12} की कमी इसके प्रमुख कारण होते हैं।

किशोरियों में एनीमिया के प्रमुख कारण– किशोरावस्था में शरीर तीव्र विकास के दौर से गुजरता है, जिसमें पोषण की आवश्यकता अधिक होती है। परंतु इस उम्र की लड़कियाँ अक्सर स्वाद के कारण पौष्टिक भोजन से दूरी बना लेती हैं, जिससे पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ (जैसे पालक, मेथी), दालें और मौसमी फल आयरन, फोलिक एसिड, विटामिन्स और फाइबर के अच्छे स्रोत होते हैं। इनका सेवन न करने से शरीर को आवश्यक पोषण नहीं मिल पाता और हीमोग्लोबिन स्तर में गिरावट आती है, जो एनीमिया को जन्म देता है। लाल चावल, अंडा, गुड़, अनार, सूखे मेवे (जैसे खजूर, किशमिश) आदि आयरन के अच्छे स्रोत हैं। इनके सेवन में कमी होने से शरीर में आयरन का स्तर घटता है, जिससे लाल रक्त कोशिकाएँ पर्याप्त मात्रा में नहीं बन पातीं और एनीमिया हो जाता है।[2]

* पी–एच0डी0, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

कैल्शियम हड्डियों की मजबूती और प्रोटीन शरीर के ऊतकों के विकास के लिए आवश्यक होते हैं। इनकी कमी से शरीर की कार्यक्षमता कम हो जाती है, जिससे थकान, चक्कर, और कमजोरी जैसे एनीमिया के लक्षण प्रकट होते हैं। आज के समय में किशोरियों में जंक फूड खाने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। ये खाद्य पदार्थ स्वादिष्ट तो होते हैं, लेकिन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक। पिज्जा, बर्गर, चिप्स, कोल्ड ड्रिंक्स जैसे खाद्य पदार्थों का सेवन खाद्य पदार्थ कैलोरी से भरपूर होते हैं लेकिन इनमें आयरन, विटामिन्स और मिनरल्स की मात्रा नगण्य होती है। जब किशोरियाँ रोजाना ऐसे खाद्य पदार्थों का सेवन करती हैं, तो उनका पोषण स्तर गिरता जाता है। इन खाद्य पदार्थों में पोषण तत्वों की कमी और ट्रांस फैट्स की अधिकता से जंक फूड में पोषण की कमी के साथ–साथ ट्रांस फैट्स, रिफाइंड आटा, अतिरिक्त नमक और चीनी की अधिकता होती है। ये शरीर में सूजन, पाचन समस्या और पोषण अवशोषण की कमी उत्पन्न करते हैं, जिससे एनीमिया की संभावना बढ़ती है।

जंक क फूड आयरन के अवशोषण जैसे कोल्ड ड्रिंक्स और कैफीन युक्त पेय पदार्थ (जैसे सोडा, एनर्जी ड्रिंक्स) शरीर में आयरन के अवशोषण को रोकते हैं। इससे भले ही आयरन युक्त भोजन लिया जाए, शरीर उसे सही से ग्रहण नहीं कर पाता। आधुनिक जीवनशैली में किशोरियाँ देर रात तक मोबाइल चलाना, खाना स्किप करना या अनियमित रूप से खाना खाना जैसी आदतों का शिकार हो रही हैं।

अनियमित खानपान– भोजन के समय में अनियमितता, सुबह का नाश्ता छोड़ देना या सिर्फ स्नैक्स पर निर्भर रहना, शरीर को आवश्यक पोषक तत्व नहीं देता। इससे पाचन प्रणाली पर भी नकारात्मक असर पड़ता है, जो पोषक तत्वों के सही अवशोषण को बाधित करता है। भोजन के समय में अनियमितता, सुबह का नाश्ता छोड़ देना या सिर्फ स्नैक्स पर निर्भर रहना, शरीर को आवश्यक पोषक तत्व नहीं देता। इससे पाचन प्रणाली पर भी नकारात्मक असर पड़ता है, जो पोषक तत्वों के सही अवशोषण को बाधित करता है। किशोरियों में एनीमिया की समस्या केवल एक शारीरिक समस्या नहीं है, बल्कि यह असंतुलित आहार, जंक फूड की प्रवृत्ति और निष्क्रिय जीवनशैली का परिणाम है। यदि इन आदतों में समय रहते सुधार न किया जाए तो यह समस्या गंभीर रूप ले सकती है। अतः संतुलित आहार, पोषण शिक्षा, और नियमित व्यायाम के माध्यम से इस स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

किशोरियों में एनीमिया की समस्या पर कई शोध और सर्वेक्षण हुए हैं, जिनमें यह स्पष्ट रूप से सामने आया है कि पोषण की कमी, असंतुलित आहार और गलत जीवनशैली इसके प्रमुख कारण हैं।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5) द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार भारत की 15–19 वर्ष की आयु वर्ग की लगभग 59% किशोरियाँ एनीमिया से पीड़ित हैं। यह दर्शाता है कि यह समस्या कितनी व्यापक और गम्भीर है।[3] यूनिसेफ (UNICEF) की रिपोर्ट (2021) के अनुसार, किशोर लड़कियों को आयरन, फोलिक एसिड और विटामिन–B_{12} की कमी के कारण न केवल एनीमिया होता है, बल्कि यह उनकी संज्ञानात्मक क्षमता और भविष्य की मातृत्व स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है।[4] इंडियन जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन (IJCM) में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, स्कूलों और कॉलेजों में जंक फूड की आसान उपलब्धता और इसके प्रति आकर्षण ने किशोरियों में पोषण की कमी को और गंभीर बना दिया है।[5] एक क्षेत्रीय अध्ययन (2020) में पाया गया कि जिन किशोरियों का आहार पौष्टिक था और जो नियमित रूप से शारीरिक गतिविधि करती थीं, उनमें एनीमिया की दर बहुत कम थी।[6] इसके विपरीत, जो किशोरियाँ अधिकतर बाहर का तला–भुना और प्रोसेस्ड फूड खाती थीं, उनमें हीमोग्लोबिन का स्तर चिंताजनक रूप से कम था।[7]

इस प्रकार, उपलब्ध साहित्य इस तथ्य की पुष्टि करता है कि किशोरियों में एनीमिया की समस्या का गहरा संबंध उनके आहार और जीवनशैली से है, और समय रहते इस पर ध्यान न दिया जाए, तो यह एक सार्वजनिक स्वास्थ्य आपदा का रूप ले सकती है।

अध्ययन की आवश्यकता– किशोरावस्था एक ऐसा चरण है जहाँ शारीरिक और मानसिक विकास तीव्र गति से होता है। इस अवस्था में पर्याप्त पोषण की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से आयरन, कैल्शियम, प्रोटीन और विटामिन्स की।

हालांकि, वर्तमान समय में किशोरियाँ असंतुलित आहार ले रही हैं और जंक फूड की ओर तेजी से आकर्षित हो रही हैं। इससे उनमें एनीमिया की समस्या तेजी से बढ़ रही है, जिससे भविष्य में स्वास्थ्य, शिक्षा, और मातृत्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

गया जिला, बिहार का एक महत्वपूर्ण जिला है, जहाँ ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों की किशोरियों में एनीमिया की स्थिति में अंतर देखने को मिलता है। इस शोध का उद्देश्य इस अंतर को समझना और इसके कारणों की गहराई से पड़ताल करना है, जिससे स्थानीय स्वास्थ्य नीतियों में सुधार किया जा सके।

अध्ययन के उद्देश्य–

1. गया जिले की शहरी और ग्रामीण किशोरियों में एनीमिया की स्थिति का मूल्यांकन करना।
2. किशोरियों के आहार संबंधी व्यवहार (ठंसंदबमक अे श्रनदा थ्वक ब्वदेनउचजपवद) का विश्लेषण करना।
3. असंतुलित आहार और जंक फूड के सेवन का एनीमिया पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
4. शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण संबंधित जानकारी और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता की तुलना करना।
5. एनीमिया की रोकथाम हेतु सुझाव एवं नीतिगत सिफारिशें प्रस्तुत करना।

परिकल्पना–

1. गया जिले की किशोरियों में असंतुलित आहार और जंक फूड का सेवन एनीमिया को बढ़ाने वाला प्रमुख कारक है।
2. शहरी किशोरियों में जंक फूड का सेवन ग्रामीण किशोरियों की तुलना में अधिक है।
3. ग्रामीण किशोरियों में एनीमिया की दर शहरी किशोरियों की तुलना में अधिक है, मुख्यतः पोषण जागरूकता की कमी के कारण।
4. संतुलित आहार लेने वाली किशोरियों में एनीमिया की संभावना कम होती

अध्ययन की सामग्री– यह अध्ययन बिहार राज्य के गया जिले में किया गया है। गया जिले को इसलिए चुना गया क्योंकि यह क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक और पोषण स्तर पर विविधता प्रदान करता है; जहाँ एक ओर विकसित शहरी क्षेत्र हैं, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्र पोषण और स्वास्थ्य सेवाओं की दृष्टि से पिछड़े हैं। इससे दोनों क्षेत्रों की तुलना संभव हो पाई।

नमूना– कुल प्रतिभागीरू 240 किशोरियाँ को रखा गया है। जिसमें यादृच्छिक नमूना चयन विधि 120 शहरी 120 ग्रामीण क्षेत्र की थीं जिनकी आयु सीमा 13 से 19 वर्ष थी। जिससे पूर्वाग्रह की संभावना न्यूनतम हो सके।

उपकरण–

प्रश्नावली– एक सुव्यवस्थित, अर्द्ध–संरचित प्रश्नावली तैयार की गई जिसमें निम्नलिखित विषयों को शामिल किया गया, जिसमें–दैनिक आहार का प्रकार (हरी सब्जियाँ, दालें, फल आदि का सेवन)

जंक फूड का सेवन (आवृत्ति, प्रकार), खानपान की आदतें (नियमितता, भोजन छोड़ने की प्रवृत्ति), शारीरिक गतिविधियाँ और व्यायाम की आदतें, मासिक धर्म की स्थिति और उससे संबंधित लक्षण, और स्वास्थ्य शिक्षा/जानकारी का स्रोत शामिल हैं।

हीमोग्लोबिन जाँच उपकरण– हीमोग्लोबिन की मात्रा मापने के लिए पोर्टेबल हीमोग्लोबिन जाँच किट का प्रयोग किया गया। इससे एनीमिया की गंभीरता को मापा गया।

व्यक्तिगत साक्षात्कार– प्रतिभागियों के साथ व्यक्तिगत रूप से बातचीत की गई, ताकि उत्तरों की स्पष्टता और सटीकता सुनिश्चित की जा सके।

स्वास्थ्य रिकॉर्ड द्वारा भी विद्यालयों और आँगनवाड़ियों से किशोरियों के आयरन टैबलेट सेवन, टीकाकरण, ठडप आदि से संबंधित जानकारी एकत्रित की गई।

परिणाम–

अध्ययन में गया जिले की कुल 240 किशोरियाँ शामिल की गईं जिनमें से 120 शहरी क्षेत्र और 120 ग्रामीण क्षेत्र की थीं। इन किशोरियों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित

1. हीमोग्लोबिन स्तर से संबंधित निष्कर्षः

क्षेत्र	**सामान्य Hb (12.0 g/dl)**	**हल्का एनीमिया (10–11.9)**	**मध्यम एनीमिया (7–9.9)**	**गंभीर एनीमिया (<7.0)**
शहरी (120)	42 (35.00%)	51 (42.5.00%)	23 (19.2.00%)	4 (3.3.00%)
ग्रामीण (120)	26 (21.7.00%)	58 (48.3.00%)	30 (25.00%)	6 (5.00%)

ग्रामीण किशोरियों में एनीमिया की दर अधिक पाई गई (78.30%) बनाम शहरी किशोरियों में (65. 00%)। मध्यम और गंभीर एनीमिया का प्रतिशत भी ग्रामीण क्षेत्र में अधिक था।

आहार संबंधी आदतों का विश्लेषण–

आदत/खानपान तत्व	**शहरी (%)**	**ग्रामीण (%)**
प्रतिदिन हरी सब्जी का सेवन	45.00%	42.00%
दाल/प्रोटीन का नियमित सेवन	58.00%	27.00%
फल का सप्ताह में $\geq$3 बार सेवन	40.00%	33.00%
दूध व दूध उत्पादों का सेवन	52.00%	38.00%

शहरी किशोरियाँ पोषण के प्रति थोड़ी अधिक सजग थीं, लेकिन फिर भी दोनों क्षेत्रों में संतुलित आहार की कमी पाई गई।

जंक फूड सेवन का स्तर–

प्रकार	**शहरी किशोरियाँ (%)**	**ग्रामीण किशोरियाँ (%)**
सप्ताह में $\geq$3 बार जंक फूड	68.00%	42.00%
कोल्ड ड्रिंक/सॉफ्ट ड्रिंक	55.00%	27.00%
स्कूल के बाहर से खाने की आदत	61.00%	33.00%

शहरी किशोरियों में जंक फूड की प्रवृत्ति अधिक देखी गई, जिससे उनके पोषण स्तर पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

शारीरिक गतिविधियाँ और जीवनशैली–

आदत	**शहरी (%)**	**ग्रामीण (%)**
नियमित व्यायाम/खेलकूद	38.00%	50.00%
अनियमित भोजन (भोजन छोड़ना)	62.00%	47.00%
रात को देर तक जागने की आदत	71.00%	46.00%

शहरी किशोरियों में शारीरिक निष्क्रियता और अनियमित जीवनशैली अधिक देखी गई, जिससे पोषण स्तर पर नकारात्मक असर पड़ा।

परीक्षणों के आधार पर यह पाया गया कि एनीमिया की स्थिति और आहार/जंक फूड सेवन के बीच सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण संबंध है। शहरी और ग्रामीण किशोरियों के बीच आहार एवं स्वास्थ्य स्थिति में भी महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।

गया जिले की किशोरियों में एनीमिया की समस्या गंभीर है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में। असंतुलित भोजन और जंक फूड का अत्यधिक सेवन एनीमिया का प्रमुख कारण सिद्ध हुआ। शहरी किशोरियाँ जंक फूड के प्रति अधिक आकर्षित थीं, वहीं ग्रामीण किशोरियों में पोषण की कमी और स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच का अभाव अधिक देखा गया। शारीरिक गतिविधियों की कमी, अनियमित जीवनशैली और पोषण शिक्षा की कमी भी एनीमिया को बढ़ाने वाले कारक हैं।

चर्चा– अध्ययन का उद्देश्य गया जिले की शहरी और ग्रामीण किशोरियों में एनीमिया की स्थिति का मूल्यांकन करना और यह जानना था कि असंतुलित आहार तथा जंक फूड का सेवन इस पर कैसे प्रभाव डालता है। परिणामों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि दोनों क्षेत्रों की किशोरियाँ एनीमिया से प्रभावित हैं, किंतु इसकी तीव्रता और कारणों में कुछ भिन्नताएँ हैं।

शोध में यह पाया गया कि शहरी किशोरियों में एनीमिया की दर 65% थी, जबकि ग्रामीण किशोरियों में यह दर 78.3% रही। यह अंतर दर्शाता है कि पोषण और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में क्षेत्रीय असमानता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

ग्रामीण किशोरियाँ अक्सर आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों से आती हैं, जहाँ संतुलित आहार की उपलब्धता सीमित होती है। वहीं शहरी किशोरियाँ अपेक्षाकृत संसाधन–सम्पन्न होने के बावजूद भी एनीमिया से पीड़ित हैं, जिसका मुख्य कारण जंक फूड का अत्यधिक सेवन और अनियमित जीवनशैली है।

आहार की गुणवत्ता और व्यवहारः अधिकांश किशोरियाँ हरी सब्जियाँ, दालें और फल जैसी आयरन युक्त चीजों का नियमित सेवन नहीं कर रही थीं। शहरी किशोरियाँ, भोजन के स्थान पर बर्गर, पिज्ज़ा, चिप्स, कोल्ड ड्रिंक्स जैसे प्रोसेस्ड और पोषणहीन खाद्य पदार्थों को अधिक पसंद कर रही थीं। इन खाद्य पदार्थों में मौजूद

ट्रांस फैट्स और अत्यधिक नमक–चीनी न केवल शरीर को नुकसान पहुँचाते हैं, बल्कि आयरन के अवशोषण को भी रोकते हैं, जिससे एनीमिया की संभावना बढ़ जाती है।

अध्ययन में यह भी सामने आया कि अधिकांश किशोरियाँ शारीरिक रूप से सक्रिय नहीं हैं। शहरी किशोरियों में मोबाइल और सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग, देर रात तक जागना और नाश्ता छोड़ना जैसी आदतें आम थीं। ग्रामीण किशोरियों में कार्य की अधिकता के बावजूद पोषण की कमी, जानकारी की अनुपलब्धता और मासिक धर्म के दौरान उपेक्षा जैसे कारण एनीमिया को जन्म दे रहे हैं। नीमिया का असर केवल शारीरिक नहीं, बल्कि शैक्षणिक प्रदर्शन, ध्यान केंद्रित करने की क्षमता, और मानसिक स्वास्थ्य पर भी देखा गया। कई किशोरियों ने पढ़ाई में कमजोरी, चक्कर, थकान और मासिक धर्म में अनियमितता की शिकायत की, जो एनीमिया के सामान्य लक्षण हैं। अतः यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि किशोरियों में एनीमिया का प्रमुख कारण या तो असंतुलित आहार की मजबूरी है (ग्रामीण क्षेत्रों में), या फिर स्वाद व आधुनिक जीवनशैली के कारण पोषण की उपेक्षा (शहरी क्षेत्रों में)। दोनों ही परिस्थितियों में जंक फूड की बढ़ती प्रवृत्ति और पोषण शिक्षा की कमी एनीमिया की गंभीरता को बढ़ा रही है।

निष्कर्ष– अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से सामने आया कि गया जिले की किशोरियों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली किशोरियाँ, एनीमिया की गंभीर समस्या से ग्रसित हैं।

भले ही शहरी किशोरियों को अपेक्षाकृत बेहतर सुविधाएँ, शिक्षा और भोजन की उपलब्धता प्राप्त है, फिर भी असंतुलित आहार, जंक फूड की लत और निष्क्रिय जीवनशैली के कारण वे भी एनीमिया से अछूती नहीं हैं।

किशोरियों में हीमोग्लोबिन की कमी एक व्यापक स्वास्थ्य समस्या है, जो शारीरिक विकास, मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करती है।

असंतुलित आहार, जैसे हरी सब्जियाँ, दालें, फल, दूध आदि का नियमित सेवन न करना, एनीमिया का प्रमुख कारण है।

जंक फूड जैसे पिज़्ज़ा, बर्गर, चिप्स, कोल्ड ड्रिंक्स आदि के अत्यधिक सेवन से न केवल पोषण की कमी होती है, बल्कि शरीर में आयरन के अवशोषण की प्रक्रिया भी बाधित होती है।

अनियमित जीवनशैली, जैसे देर रात तक जागना, भोजन छोड़ना, और व्यायाम की कमी, इस समस्या को और बढ़ाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण के प्रति जागरूकता की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच और आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण एनीमिया की स्थिति अधिक गंभीर है।

सुझाव– किशोरियों को संतुलित आहार, आयरन युक्त भोजन और पोषण के महत्व के बारे में विद्यालय स्तर पर नियमित रूप से जानकारी दी जानी चाहिए। अभिभावकों को भी पोषण संबंधी जागरूकता शिविरों के माध्यम से शिक्षित किया जाना चाहिए।

विद्यालयों के पास जंक फूड की बिक्री पर नियंत्रण लगाया जाए। मीडिया व सोशल मीडिया के माध्यम से जंक फूड के दुष्प्रभावों पर जन–जागरूकता अभियान चलाए जाएँ। विद्यालयों और आँगनवाड़ी केंद्रों के माध्यम से किशोरियों को साप्ताहिक आयरन–फोलिक एसिड (IFA) टैबलेट दिए जाएँ। एनीमिया से पीड़ित किशोरियों का हीमोग्लोबिन स्तर की नियमित जाँच सुनिश्चित की जाए। स्कूलों में दी जाने वाली मिड–डे मील में आयरन, प्रोटीन और विटामिन्स से भरपूर खाद्य पदार्थों को शामिल किया जाए। स्थानीय स्तर पर पोषक रेसिपी प्रतियोगिता और कुकिंग कार्यशालाओं का आयोजन किया जाए।

किशोरियों को खेलकूद, योग और व्यायाम के लिए प्रोत्साहित किया जाए, जिससे उनका समग्र स्वास्थ्य बेहतर हो। सरकार और NGOs को मिलकर किशोरियों के पोषण सुधार हेतु जागरूकता अभियान, निःशुल्क पोषण शिविर, और परामर्श सेवाएँ शुरू करनी चाहिए।

एनीमिया जैसी समस्या केवल एक चिकित्सा मुद्दा नहीं, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक चुनौती भी है। किशोरियों में यह समस्या उनके वर्तमान और भविष्य दोनों को प्रभावित करती है।

इसलिए, समय रहते इस ओर जागरूकता, पोषण सुधार, और जीवनशैली में बदलाव अत्यंत आवश्यक है। यह शोध एक छोटी सी पहल है, जो नीति–निर्माताओं, शिक्षकों, अभिभावकों और स्वयं किशोरियों को एक सतर्क संदेश देता है कृ ष्स्वस्थ किशोरी, समृद्ध समाज की नींव है।

संदर्भ सूची

1. रेड्डी, के.एस. एट अल. (2020), किशोरों के पोषण संबंधी स्वास्थ्य पर जंक फूड के सेवन का प्रभाव – एक सर्वेक्षण–आधारित अध्ययन।
2. स्थानीय स्वास्थ्य विभाग की रिपोर्ट – जिला स्तरीय किशोर स्वास्थ्य सर्वेक्षण (2019–2021)।
3. एनएफएचएस–5 (2021–22), राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण – स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत।
4. यूनिसेफ इंडिया (2021), किशोर पोषण – लड़कियों में आयरन की कमी और एनीमिया।
5. इंडियन जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन (आईजेसीएम 2021), भारत में किशोरियों में आहार संबंधी आदतों और एनीमिया पर अध्ययन।
6. विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ, 2020), किशोरों में दैनिक आयरन अनुपूरण पर दिशानिर्देश।
7. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकाररू पोषण अभियान वार्षिक रिपोर्ट (2020–21)।